

हिन्दी उपन्यास  
और  
अमृतलाल नागर



डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी

अमृतलाल नागर स्वाधीन भारत के अत्यंत विशिष्ट उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों ने न केवल हिन्दी साहित्य का बल्कि समग्र भारतीय साहित्य का गौरव बढ़ाया है। इस दृष्टि से उनके उपन्यासों का विधिवत वैज्ञानिक अनुशीलन आवश्यक कर्त्तव्य प्रतीत होता है। डॉ० प्रेमशंकर त्रिपाठी ने पूरे उत्तरदायित्व के साथ अपनी कृति 'हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर' के द्वारा इस कर्त्तव्य का सम्यक् निर्वाह किया है।

अमृतलाल नागर का साहित्य उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। अपने सहज एवं ग्रहणशील स्वभाव के कारण वे समाज के विविध स्तरों के व्यक्तियों के संपर्क में आए। उन्होंने समाज को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखा, उसको समग्र रूप से चित्रित करने का प्रयास किया। उन्होंने अच्छाई और बुराई दोनों को तटस्थ रूप से अंकित किया है किन्तु उसे किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं किया है।

अपनी परंपरा से जीवन रस का संचय करते हुए वे वर्तमान की चुनौतियों से जूझे हैं। सामाजिक विकृतियों का उन्होंने विरोध किया है किन्तु आस्थाहीनता का उन्होंने समर्थन नहीं किया है।

आलोचना का उद्देश्य लेखक और उसकी कृति को समझना-समझाना होना चाहिए आलोचक के दंभ का प्रदर्शन करते हुए उसकी चीर-फाड़ करना नहीं। यह खेद की बात है कि हिन्दी आलोचना में इस वृत्ति को भी कभी-कभी आलोचना का उत्कृष्ट रूप माना जाता है। मैं समझता हूँ कि बड़े कृतिकारों की रचनाओं को सहृदयतापूर्वक समझकर उनके मर्म को उद्घाटित करने को ही आलोचना की उपलब्धि मानना चाहिए।

मैं आश्वस्त हूँ कि प्रेमशंकर त्रिपाठी ने इस कृति में अमृतलाल नागर की विभिन्न विशेषताओं को सप्रमाण निरूपित करने में सफलता प्राप्त की है।

- विष्णुकान्त शास्त्री

हिन्दी उपन्यास  
और  
अमृतलाल नागर





संस्कृत-विज्ञान-संस्थानम्

श्री

संस्कृत-विज्ञान-संस्थानम्





हिन्दी उपन्यास  
और  
अमृतलाल नागर

डॉ. प्रेम शंकर त्रिपाठी

प्रकाशक :

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय

१-सी, मदन मोहन बर्मन स्ट्रीट, कोलकाता-७०० ००७

टेलिफैक्स : २२६८-८२१५

ई-मेल : kumarsabha@vsnl.net

प्रकाशन तिथि :

१७ अगस्त २००३ ई०

(स्व० अमृतलाल नागर के ८१वें जन्म दिवस पर)

११०० प्रतियाँ

●  
मूल्य :

१५०/- रु.

●  
आवरण चित्र के छायाकार :

श्री राकेश सिन्हा

(सौजन्य : डॉ० शरद नागर)

●  
आवरण सज्जा :

श्री श्रीजीव अधिकारी

●  
मुद्रक :

'एस्केज'

८, शोभाराम बैसाक स्ट्रीट

कोलकाता-७०० ००७

दूरभाष : २२१८ ६०८४

---

**Hindi Upanyas Aur Amrit Lal Nagar**

by : Dr. Prem Shanker Tripathi

Price : Rs. 150/-

दिवंगत पिता

पं० राम दुलारे त्रिपाठी

की

पुण्य स्मृति को,

जिनका शुभाशीर्वाद

मेरे जीवन की

अक्षय निधि है।



## प्रस्तावना

अमृतलाल नागर स्वाधीन भारत के अत्यंत विशिष्ट उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों ने न केवल हिन्दी साहित्य का बल्कि समग्र भारतीय साहित्य का गौरव बढ़ाया है। इस दृष्टि से उनके उपन्यासों का विधिवत वैज्ञानिक अनुशीलन आवश्यक कर्तव्य प्रतीत होता है। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने पूरे उत्तरदायित्व के साथ अपनी कृति 'हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर' के द्वारा इस कर्तव्य का सम्यक् निर्वह किया है।

अमृतलाल नागर का साहित्य उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। अपने सहज एवं ग्रहणशील स्वभाव के कारण वे समाज के विविध स्तरों के व्यक्तियों के सम्पर्क में आए। उन्होंने समाज को टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखा, उसको समग्र रूप से चित्रित करने का प्रयास किया। अच्छाई और बुराई दोनों को तटस्थ रूप से उन्होंने अंकित किया है किन्तु उसे किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं किया है। अपनी परम्परा से जीवन रस का संचय करते हुए वे वर्तमान की चुनौतियों से जूझते हैं। सामाजिक विकृतियों का नागरजी ने विरोध किया है किन्तु आस्थाहीनता का कभी समर्थन नहीं किया।

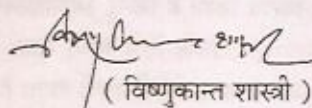
उनके लिए कथ्य मुख्य है, शैली गौण। नागरजी का विश्वास था कि कथ्य अपने साथ अपनी शैली लाता है और इसलिए कथ्य को पूर्ण रूप से उपस्थित करने का प्रयास ही उपन्यासकार का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। वे तुलसीदास से बहुत प्रभावित रहे हैं और तुलसी की ही तरह अपने पाठकों को अपने साथ लेकर ही चलना चाहते हैं। वे पाठकों से अलग किसी कल्पित ऊँचाई पर खड़े होकर प्रयोगशीलता का दंभ नहीं पालते, इसीलिए उनकी कृतियाँ साहित्यिक सद्गुणों से युक्त भी हैं और पर्याप्त लोकप्रिय भी। डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने पूरी सद्भावना के साथ उनकी इस उपलब्धि को अंकित करने में सफलता प्राप्त की है।

आलोचना का उद्देश्य लेखक और उसकी कृति को समझना-समझाना होना चाहिए, आलोचक के दंभ का प्रदर्शन करते हुए उसकी चीर-फाड़ करना नहीं। यह खेद की बात है कि हिन्दी आलोचना में इस वृत्ति को भी कभी-कभी आलोचना का उत्कृष्ट रूप माना जाता है। मैं समझता हूँ कि बड़े कृतिकारों की रचनाओं को सहृदयतापूर्वक समझकर उनके मर्म को उद्घाटित करने को ही आलोचना की उपलब्धि मानना चाहिए। मैं आश्चर्य हूँ कि प्रेमशंकर त्रिपाठी ने इस कृति में अमृतलाल नागर की विभिन्न विशेषताओं को सप्रमाण निरूपित करने का सफल प्रयास किया है।

आंचलिक उपन्यास लेखन का श्रेय प्रायः फणीश्वरनाथ रेणु को दिया जाता है और यह माना जाता है कि ग्रामीण जन-जीवन को विश्वसनीय रूप से प्रतिफलित करना ही आंचलिकता का प्रधान लक्ष्य है। किन्तु आंचलिकता नागरिक भी हो सकती है। प्रत्येक नगर की अपनी विशिष्टता भी होती है— आचार-विचार, व्यवहार और भाषिक प्रयोग में। अमृतलाल नागर ने 'सेठ बाँकेमल' में आगरा के एवं 'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' में लखनऊ के जीवन को जिस बारीकी और प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है उससे इन उपन्यासों को नगरीय आंचलिक उपन्यास माना जा सकता है। प्रेमशंकर त्रिपाठी ने इस विशेषता को भी भली-भाँति विवेचित किया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों के संरचना-कौशल, वैचारिक प्रतिपाद्य आदि तत्त्वों का प्रमाणपुष्ट निरूपण इस ग्रंथ में किया गया है। कृती आलोचक ने नागरजी के समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों के संदर्भ में उनका वैशिष्ट्य भी प्रतिपादित किया है। इस कृति के द्वारा अमृतलाल नागर के औपन्यासिक कृतित्व के संदर्भ में हमारे ज्ञान की परिधि निश्चित रूप से व्यापक हुई है।

मेरा विश्वास है कि डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी की यह पुस्तक हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनायेगी।

  
( विष्णुकान्त शास्त्री )

राजभवन,  
लखनऊ (उ. प्र.)  
गुरु पूर्णिमा, २०६० वि.  
१३ जुलाई, २००३

## प्राक्कथन

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा पर्याप्त परवर्ती होने पर भी उपन्यास ने अन्य साहित्यिक रूपों के मध्य अपना गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है। इसका कारण यह है कि मानव-जीवन को निकट से देखने, उसका विश्लेषण करने, उसकी जटिलता, संवेदनशीलता तथा वास्तविकता को सार्थक एवं समग्र रूप से अंकित करने की सर्वाधिक संभावना उपन्यास में ही है। उपन्यास में मानव के तन और मन को दर्पणवत् प्रस्तुत करने की क्षमता तो है ही, उसके समक्ष विद्यमान विकास के विविध विकल्पों को आलोकित कर अभीष्ट दिशा की ओर संकेत करने की शक्ति भी है। अर्थात् उसमें मानव जीवन के अतीत, वर्तमान और अनागत को समेटने की संभावना है।

इस समर्थ एवं शक्ति-संपन्न विधा का रचनाकार (उपन्यासकार) पात्रों के अंतःकरण के गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन की क्षमता से युक्त होता है, अतः उसका दायित्व बहुत बढ़ जाता है। युग-जीवन की व्यापक संवेदना, इतिहास की विस्तृत जानकारी तथा मानव-मन की तलस्पर्शिता की क्षमता उपन्यासकार के लिए नितान्त आवश्यक है। वह केवल उसकी जड़ प्रस्तुति नहीं करता, उसमें नई शक्ति का संचार कर देता है; इतिहास के 'शव' को 'शिवत्व' से आपूरित कर देता है। ऐसा तभी हो सकता है जब उपन्यासकार का अध्ययन विस्तृत हो, उसकी अनुभूति गहन हो, उसमें तादात्म्य स्थापित करने की शक्ति के साथ-साथ यथार्थवादी चेतना से सम्पन्न भविष्यदर्शिता हो।

इन्हीं विशेषताओं के कारण हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द ने अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया है। प्रेमचन्द की परम्परा का विकास अमृतलाल नागर के उपन्यासों में परिलक्षित होता है। कथानक संबंधी नवीन प्रयोग, भाषा-शैली की विविधता तथा पात्रों की जीवन्तता के कारण नागरजी के उपन्यास प्रेमचन्द की ही भाँति जन-सामान्य से आत्मीय संबंध स्थापित कर लेते हैं। प्रेमचन्द यदि ग्रामीण जीवन के कुशल चितरे हैं तो नागरजी ने नगर जीवन के मध्यवर्ग का बड़ी बारीकी से अध्ययन कर उसे अपने उपन्यासों का प्रमुख विषय बनाया है।

यद्यपि नागरजी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी कलम चलाई है, तथापि यह बात बिना विवाद के कही जा सकती है कि उनका उपन्यासकार रूप ही सर्वाधिक प्रभावशाली है। साहित्य-जगत में वे उपन्यासकार के रूप में ही जाने-पहचाने



जाते हैं। एक भेंटवार्ता में उन्होंने यह बात स्वीकार भी की है— “मेरी सारी दृष्टि शायद उपन्यासकार होने के लिए ही सधी थी।” (दस्तावेज, जनवरी १९८६, पृष्ठ २७)

किसी साहित्यकार के निर्माण में उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण योग होता है। व्यक्ति के जीवन की विविध स्थितियाँ एवं गतिविधियाँ उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रक्षेपित होता है। साहित्य में आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से या पात्रों के चरित्रांकन में अपने अंतःकरण की छाया द्वारा भी सर्जक अपने व्यक्तित्व को आरोपित करता है। कोई भी रचनाकार अपने व्यक्तित्व को कृति से पृथक् रखना चाहकर भी रख नहीं पाता, किसी न किसी रूप में उसमें अंतर्निहित कर देता है।

साहित्य की उपन्यास विधा में चूँकि पात्रों की बहुलता तथा फलक की व्यापकता होती है अतः स्वाभाविक रूप से उपन्यास लेखक को इस विधा में अपने व्यक्तित्व को निक्षिप्त करने का अवकाश अपेक्षाकृत अधिक रहता है।

अत्यंत प्रचलित शब्द होते हुए भी व्यक्तित्व को परिभाषित करना बड़ा कठिन है। इस कठिनाई का एक कारण यह है कि हम प्रायः व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा मान बैठते हैं। इस दृष्टि के अनुसार वह व्यक्ति जो अपनी बातचीत, बाह्य स्वरूप तथा व्यवहार द्वारा दूसरों को प्रभावित कर ले, वही व्यक्तित्व संपन्न है और जो व्यक्ति शर्माली प्रकृतिवाला है वह व्यक्तित्वहीन है। इस प्रकार की विचारधारा एकांगी है।

व्यक्तित्व के प्रति जो दूसरी भ्रांत धारणा है उसके अनुसार व्यक्ति की अपनी अनुभूति, चिंतन तथा विचारधारा से व्यक्तित्व निर्मित होता है। यह परिभाषा भी अपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति के बाह्य-स्वरूप से संबद्ध पक्षों को नकार देती है। व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में उसका बाह्य व्यवहार अत्यंत आवश्यक तत्त्व है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने व्यक्तित्व की स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है— “व्यक्तित्व आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की विशेषताओं — जिनमें अच्छी-बुरी सारी बातें शामिल हैं, का मिश्रित रूप है, जो इनका योगफल नहीं है बल्कि इन सबके मिश्रण से बनी एक ऐसी सजीव वस्तु है, जो किसी व्यक्ति को उसकी अलग इकाई कायम रखने में सहायक होती है, अर्थात् उसे ‘वह’ बनाती है जो ‘वह’ है। इसमें व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक, व्यावसायिक, धार्मिक, वैयक्तिक जीवन का हर पहलू शामिल है। उसके जीवन के प्रेरणा स्रोत, उसकी रुचियाँ, संस्कार, संसर्ग, प्रवृत्ति, आमोद-प्रमोद, प्रेम, आचार-विचार, व्यवहार यहाँ तक कि उसका खान-पान, रीति-रिवाज सब कुछ ज्ञातव्य है क्योंकि इन सबसे मिलकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।” (शिव प्रसाद सिंह : विद्यापति, पृष्ठ ३-४)

जीवन के व्यापक क्षेत्र में केवल वे व्यक्ति महत्ता पा सके हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से अपने जीवन का उन्नयन किया है। श्री अमृतलाल नागर ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से हिन्दी जगत में अपना विशेष स्थान बनाया है।

नागर जी के संपूर्ण जीवन-वृत्त पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उनका साहित्यिक स्वरूप जीवन के घात-प्रतिघातों को झेलकर ही निखार पा सका था। जीवन की कठिनाइयों से जूझने की शक्ति उन्हें कई साहित्यिक विभूतियों के सान्निध्य से प्राप्त हुई थी। उनकी आस्थावादी चेतना ने उन्हें कभी निराश नहीं होने दिया। अपनी बैठक में, अपनी लिखनेवाली चौकी के ऊपर नागरजी ने शिवाजी के गुरु समर्थ स्वामी रामदास की एक उक्ति टाँग रखी थी—

“वह्नि तो चेतवावा रे चेतवीतांच चेततो  
केल्या न होत आहरे आर्धी केलेंच पाहिजे”

अर्थात् “वह्नि (अग्नि) तो चेतओ रे। (वह) चेताते - चेताते ही चेतती है। करने से होता है रे। पहले आरम्भ करना ही चाहिए।

इस प्रेरक उक्ति में अमृतलाल नागर की संपूर्ण साहित्य साधना का मर्म छिपा है। नागर जी के जीवन प्रसंग, साहित्य के प्रति उनकी अदम्य निष्ठा को प्रमाणित करते हैं। जीवन के विविध कार्य-व्यापारों के बीच साहित्य से जुड़े रहने की उनकी व्यग्रता ने अमृतलाल नागर को शीर्ष कथाकार के रूप में स्थापित किया है।

लखनऊ के जिन तीन उपन्यासकारों का नाम हिन्दी साहित्य में अमर है, वे हैं— यशपाल, भगवती चरण वर्मा तथा अमृतलाल नागर। लखनऊ की चर्चा के साथ ही नागर जी का स्मरण हो आता है। इन तीनों में सच्चे लखनवी अमृतलाल नागर ही हैं। यशपाल पर पंजाब का तथा भगवती चरण वर्मा पर इलाहाबाद का पर्याप्त प्रभाव है परन्तु नागरजी की रचनाओं में सच्चा लखनऊ देखा जा सकता है। अमृतलाल नागर लखनऊ, खासकर चौक से, उसके वातावरण और बोली-बानी से इस प्रकार घुल-मिल गए थे कि वे और चौक एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये थे। नागर जी का आवास चौक में रहा है और चौक क्षेत्र के बच्चे, बूढ़े, जवान सभी उनसे परिचित रहे हैं। चौक की उस पतली गली का रास्ता हर कोई बता सकता है जहाँ नागर जी रहते थे।

नागर जी के व्यक्तित्व में जो मोहकता रही है वह हर किसी को सहज ही आकृष्ट कर लेती थी। उनकी आत्मीयता सबको अपना बना लेती थी। अपनी उदार वृत्ति, सहज स्वभाव तथा मस्ती से वे सबके अपने हो जाते थे। वे अत्यन्त सरल, स्पष्टवादी तथा प्रदर्शन से रहित खुले विचार के व्यक्ति रहे हैं। प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री ने उनके बाह्य व्यक्तित्व का रेखांकन इस प्रकार किया है— “गोरा रंग, प्रतिभा-प्रदीप्त चौड़ा माथा, गहरे झँकती हुई किन्तु मैत्री और आत्मीयता से भरी बड़ी आँखें, चश्मा जिनका स्वाभाविक संगी है, तीखी नाक, भरा चेहरा, पान से रचे हुए हँसते से आँठ,



दृढ़तासूचक टुट्टी, कुछ-कुछ घुँघराले बाल, मझोला कद, दोहरा बदन— ऐसे ही तो हैं नागर जी, जो जहाँ बैठ जाएँ वहाँ जीवन लहरा दें।" (स्मरण को पाथेय बनने दो, पृष्ठ ७४)। या अमृतलाल नागर का आत्म परिचय उन्हीं के शब्दों में— "कपाल बहुत चौड़ा नहीं, बहुत सँकरा भी नहीं। कभी पूजा-प्रसंग में रोली या चन्दन का टीका लगाता हूँ तो फबता है। ..... भँवें घनी और काली हैं। अपनी आँखें मुझे अपेक्षाकृत छोटी लगती हैं। मैं बड़ी और रसीली आँखों का आशिक हूँ। ..... गालों की हड्डियाँ उभरी हैं। विद्रोही व्यक्तित्व की सूचक हैं। नाक नुकीली है, देखकर कोई भी समझदार यह मान जायगा कि नाक वाला है और नाक के बालों वाला भी है। होंठ न पतले, न मोटे, मुँह छोटा, निचले होंठ पर एक तिल भी है। अनुभवी लोगों से सुना है कि ऐसे तिल वाले को रसीले भोजन, पानों और रसीले होंठों का सुख मिलता है। मैं अपना अनुभव भी उसमें जोड़ता हूँ। होंठों पर पान की छवि तथा सहज मुस्कान की रेखा प्रायः हर समय अंकित रहती है। ..... कान बड़े हैं, उनकी लयें आगे की ओर झुकी हुई हैं। टोड़ी नुकीली और आगे की ओर उभरी हुई है। मेरे हठी स्वभाव की परिचायक है।" (टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ ११-१२)।

ऐसी मुखाकृति वाला कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से किसी को भी आकर्षित कर सकता है—अतः नागरजी जिस किसी के संपर्क में आये अपने मोहक व्यक्तित्व से उसकी आत्मीयता सहज ही पा ली।

नागर जी में पारंपरिकता और आधुनिकता का समन्वय था। घरेलू संस्कारों से वे शैव, आस्तिक और धार्मिक व्यक्ति रहे हैं। उन्हें धर्म, जाति से कोई परहेज नहीं रहा है। उनके लिए विराट् मानव-धर्म ही सर्वोच्च धर्म था। बाबा रामजी दास के प्रभाव से वे भगवान राम की सेवा सेवक-सेव्य भाव से करते रहे हैं। नागर जी ने अपने अध्ययन-कक्ष में श्रीराम के चरण-युगल का चित्र लगा रखा था, जिसका वे नियमित ध्यान करते रहे हैं। उनकी कर्मठ आस्था प्रभु का अवलोकन दीन-दुखियों, पीड़ितों में करती रही है। समाज के घृणाभाजनों को जो आत्मीयता नागर जी ने दी उसका प्रमाण 'ये कोठेवालियाँ' तथा 'नाच्यौ बहुत गोपाल' कृतियाँ हैं। नागर जी के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए नरेश मेहता ने ठीक ही कहा है, "बड़ा किशमिशी व्यक्तित्व है—जहाँ धर्म भी है तो थोड़ी बहुत कम्युनिज्म की भी आहट् होती है। सामंती बाँकपन उनकी आँखों में किसी भी समय देखा जा सकता है तो कलम और चश्मे में विक्टोरियन आधुनिकता का छौंटा भी मिल जायेगा। ..... किसी भी मध्यवर्गीय लेखक की भाँति नागर जी भी जीवन की आँच में तपे हैं, बल्कि खूब ही तपे हैं।" (सारिका, १६-३१ अगस्त १९८५, पृष्ठ ५८)।

आस्था के आलोक और जिजीविषा की ज्योति ने नागर जी के व्यक्तित्व को विशिष्ट आभा प्रदान की थी। इसी भाव-भूमि पर उनकी जीवन-दृष्टि का निर्माण हुआ



था। वे कहते हैं— “मैं उस चींटी की तरह हूँ जो बार-बार गिरने के बावजूद चढ़ती है। हार-जीत की बाजी प्राणों को उमंग देकर लड़ाती है, पर हार अब उतना निराश नहीं करती।” (टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ १२-१३)। नागरजी की मान्यता थी कि कर्मठ होकर ही जीवन-जगत की यंत्रणाओं और आशंकाओं पर विजयी हुआ जा सकता है, पलायन से नहीं।

नागर जी के हृदय में बुजुर्गों के प्रति आदर तथा नौजवानों के प्रति स्नेह का भाव रहा है। उनका एक हाथ पुरानों की तरफ बढ़ा हुआ था तो दूसरा नयों की तरफ। वे नयी उपलब्धियों को सादर स्वीकारते हुए यह मानते रहे हैं कि पुरानी पीढ़ी ने उन्हें उपयुक्त मार्ग प्रदर्शित किया है।

नागरजी न तो अतीत की परंपराओं के अंध-अनुगामी रहे हैं और न ही आधुनिकता की गहरी चकाचौंध के पोषक ही। अतीत की गौरवशाली एवं प्रेरक परंपराओं को वैज्ञानिक एवं आधुनिक दृष्टि से युक्त कर वे संतुलित एवं समग्र जीवन-दर्शन में विश्वास करते रहे हैं। इस प्रयास में उनके मानवतावादी चिंतन की सर्वोपरि भूमिका रही है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में जनवादी तथा लोकहितकारिणी दृष्टि उभरकर आई है। बाबा रामजी दास मानव-सेवा की ओर प्रेरित कर उनकी कर्मठ आस्था को नया आयाम देते हैं। उनके उपन्यासों में सजग सामाजिक चेतना, स्वस्थ चिंतन तथा व्यापक जीवनानुभव के साथ-साथ यह सेवा-भावना भी अंतर्निहित है। नागर जी में मानव-मन की आशा-निराशा, सुख-दुख, आस्था-अनास्था, जय-पराजय को वाणी देने की अद्भुत क्षमता थी तथा भारतीय जन-जीवन, इतिहास तथा संस्कृति से उनका गहरा लगाव था।

शोध कार्य के दौरान अमृतलाल नागर के साहित्य का सतत अध्ययन-मनन करने के साथ लेखक की रचना-प्रक्रिया को समझने के लिए मुझे कई बार नागरजी से उनके लखनऊ स्थित आवास पर भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके जीवन और साहित्य के विविध पहलुओं को स्पष्ट करने में स्वयं नागरजी से मुझे जो स्नेह और आत्मीय सहयोग मिला उसे भुलाया नहीं जा सकता। उनके ७९वें जन्म दिवस पर शोध-प्रबन्ध पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है, यह मेरे लिए विशेष प्रसन्नता की बात है। प्रकाशन के मौके पर मैं कथा-साहित्य की विशिष्ट विभूति को अपनी भावपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

यह कृति मेरे शोध-प्रबंध 'उपन्यासकार अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व और कृतित्व' का प्रकाशित रूप है, अतः पाठकों को इस पुस्तक में शोध-पद्धति का आभास मिलेगा। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या को सीमित करने के उद्देश्य से नागरजी के जीवन-परिचय से संबद्ध शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय छोड़ दिया गया है। शोध-प्रबंध को

प्रस्तुत करते समय नागरजी का अंतिम उपन्यास 'पीढ़ियाँ' प्रकाशित नहीं हुआ था अतः उसका विवेचन शोध-प्रबंध एवं इस कृति— दोनों में नहीं है।

शोध-प्रबंध गुरुवर आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री के निर्देशन में लिखा गया था। अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी समय-समय पर प्रो. शास्त्री ने यदि मुझे सम्यक् दृष्टि न दी होती तथा अपने बहुमूल्य सुझावों एवं पुस्तक भंडार से मेरी मदद न की होती तो शोध-कार्य सम्पन्न न हो पाता। उनके सत्परामर्श, संतुलित विवेचन, प्रौढ़ चिन्तन तथा विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में ही शोध-प्रबंध पूरा हो सका। वास्तव में इस शोधकार्य में जो खूबियाँ है वे उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल हैं तथा जो कमियाँ हैं वे मेरी अपनी। इसके प्रकाशन पर उन्होंने 'प्रस्तावना' लिखकर मुझे शुभाशीष प्रदान किया है। उनके प्रति औपचारिक आभार-प्रदर्शन द्वारा मैं गुरु-ऋण से उद्धार होना नहीं चाहता।

शोध-प्रबंध की संपूर्णता में जिस आदरणीय व्यक्तित्व ने प्रेरणा-पुंज का कार्य किया है, वे हैं मातृ-तुल्य गुरुपत्नी स्वर्गीया श्रीमती इंदिरा शास्त्री। उनकी सत्प्रेरणा मेरा संबल रही है। उनका सहज स्नेह और वात्सल्य मेरे जीवन की बहुमूल्य निधि है। मैं उनकी पावन-स्मृति को प्रणाम करता हूँ।

शोध-कार्य के दौरान अपने माता-पिता का शुभाशीर्वाद तथा पत्नी कुसुम का सक्रिय सहयोग मुझे सदैव प्राप्त हुआ है। आज जब यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है मुझे अपने दिवंगत पिता पं० रामदुलारे त्रिपाठी की याद बार-बार आ रही है। उनकी पुण्य-स्मृति में इस ग्रंथ को समर्पित करते हुए मुझे आत्म-तोष की प्राप्ति हो रही है।

श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के मार्गदर्शक श्री जुगल किशोर जैथलिया और मंत्री श्री महावीर बजाज का अनवरत दबाव यदि न होता तो यह कृति प्रकाश में न आ पाती। पुस्तकालय ने इसे प्रकाशित कर मुझे गौरवान्वित किया है। प्रूफ संशोधन हेतु पुस्तकालय की साहित्य मंत्री डॉ. उषा द्विवेदी तथा मेरी सुपुत्री प्रज्ञा ने कठिन परिश्रम किया है। पुस्तकालय के पूर्व ग्रंथपाल श्री त्रिभुवन तिवारी ने समय-समय पर वांछित पुस्तकों को खोजकर मुझे बड़ा सहयोग दिया है। ये सभी मेरे इतने अंतरंग हैं कि इनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की औपचारिकता अनावश्यक प्रतीत होती है।

जिन विद्वानों के ग्रंथों, निबंधों, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों आदि से मुझे सहायता मिली है, उन सभी विद्वज्जनों एवं आलोचकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। सुधी पाठकों की प्रतिक्रिया की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

रक्षा-बन्धन, २०६० वि०

१२ अगस्त, २००३ ई०

प्रशिक्षण त्रिपाठी.

( प्रेमशंकर त्रिपाठी )

## अनुक्रम

	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय :	१-३३
उपन्यास	परिभाषा महत्त्व में क्रमिक वृद्धि साम्प्रतिक स्थिति
नागर-पूर्व हिन्दी-उपन्यास की परम्परा	पूर्व-प्रेमचन्द युग प्रेमचन्द युग प्रेमचन्दोत्तर युग
द्वितीय अध्याय :	३४-७९
नागरजी के उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण एवम् परिचयात्मक विवेचन	महाकाल सेठ बाँकेमल बूँद और समुद्र शतरंज के मोहरे सुहाग के नूपुर अमृत और विष सात घूँघट वाला मुखड़ा एकदा नैमिषारण्ये मानस का हंस नाच्यौ बहुत-गोपाल खंजन नयन बिखरे तिनके अग्निगर्भा करवट



## उपन्यास

### परिभाषा :

उपन्यास शब्द 'उप' और 'न्यास' दो शब्दों के योग से बना है। 'उप' शब्द से 'समीप' या निकट का तथा 'न्यास' शब्द से 'रखने' अथवा 'उपस्थित करने' का बोध होता है। उपन्यास के माध्यम से लेखक पाठकों के सम्मुख विचार उपस्थित करता है। 'उपन्यास' संस्कृत शब्द है परन्तु वर्तमान में इस शब्द को जिस रूप में प्रयुक्त किया जाता है वह प्राचीन अर्थ से पूरी तरह अलग है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद हेतु हुआ है। प्राचीन संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में इसकी व्याख्या दो प्रकार से की गई है—(१) "उपन्यासः प्रसादनम्" अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं तथा (२) "उपपत्ति कृतोद्धार्यः उपन्यासः प्रकीर्तितः" अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में प्रस्तुत करना उपन्यास कहलाता है। अमरकोशकार ने "उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्" कहकर बात को प्रारंभ करने का नाम उपन्यास बताया है। अबिका दत्त व्यास कृत गद्य-मीमांसा में उपन्यास को गद्य-काव्य माना गया है।

परन्तु उपन्यास के ये अर्थ आज के उपन्यासों के संदर्भ में अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं। आज के उपन्यास और नाटक साहित्य के उपन्यास में नाम की समानता भले ही हो— प्रकृति की नहीं है। स्पष्टतः हिन्दी में जिस कथा साहित्य के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग होने लगा है — संस्कृत में उसका वह अर्थ नहीं था। उपन्यास आधुनिक जीवन की विषमताओं, विचित्रताओं, समस्याओं तथा मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए आया है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में — "उपन्यास आधुनिक युग की देन है, जो भारतीय संस्कृति के रस से सिक्त होकर, पूर्ववर्ती साहित्य की आधार-भूमि में उगकर, विज्ञान-किरणों से ऊष्मा प्राप्त कर, पाश्चात्य साहित्य की सुखद वायु में पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है।"<sup>१</sup>

उपन्यास शब्द हेतु भारतीय साहित्य में विविध पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। अपने-अपने प्रदेशों में अपनी-अपनी परंपरा और प्रतिभा के अनुसार ये नाम रख लिये गये हैं। मराठी में उपन्यास के लिए कादम्बरी, गुजराती में नवल-कथा तथा हिन्दी-बंगला-उड़िया में उपन्यास शब्द प्रयुक्त होता है।

साहित्य के जिस रूप के लिए अंग्रेजी में 'नॉवेल' (Novel) शब्द का प्रयोग किया गया है हिन्दी में उसी रूप हेतु 'उपन्यास' शब्द गढ़ लिया गया है। नॉवेल का अर्थ होता है कल्पित कथा और विशेषण रूप में इसका तात्पर्य है —अपूर्व, विलक्षण, अनोखा। अतः नॉवेल या उपन्यास एक ऐसे साहित्यांग का नामकरण हुआ जो अपने अन्य साहित्यांगों से विलक्षण, अपूर्व और अनूठा है तथा जिसकी रचना साहित्यकार अपनी कल्पनाशक्ति से करता है। इस प्रकार शिल्प और विषय दोनों ही दृष्टियों से यह साहित्य-रूप नवीन अर्थात् नवल था। दक्षिण की भाषाओं में इसी 'नवल' शब्द को नॉवेल के लिए प्रयुक्त किया जाता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार— "उपन्यास वस्तुतः 'नवल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी नॉवेल का प्रतिशब्द उपन्यास माना था उसकी सूझ की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांश पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है वहीं इसके शब्दार्थ द्वारा (उप-निकट, न्यास - रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांश के द्वारा ग्रंथकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसलिए यह शब्द पुरानी परंपरा के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिल्कुल बेमेल नहीं कहा जा सकता।"<sup>3</sup>

विभिन्न विद्वानों ने उपन्यास की विशेषता और गुण को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

"दि न्यू इंग्लिश डिक्शनरी" के अनुसार 'नॉवेल' गद्य में लिखी हुई विस्तृत आकार की उस कल्पित कथा को कहते हैं जिसमें यथार्थ-जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए से पात्र हों और कार्य-व्यापार कथानक के अंतर्गत चित्रित हों।"<sup>4</sup>

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार उपन्यास की कथा ऐतिहासिक अर्थ में सत्य नहीं होती प्रत्युत सत्यानुरूप होती है।<sup>5</sup>

डॉ. त्रिभुवन सिंह की परिभाषा अधिक व्यापक है - "श्रृंखलाबद्ध कथानक द्वारा सरल तथा गूढ़ मानव चरित्रों का निर्माण, उनकी समस्याओं, सक्रिय गतिविधियों तथा सामाजिक एवं मानसिक संघर्षों से युक्त उनके स्वभावों एवं मन की महती शक्तियों का पूर्ण, जीवन्त एवं यथार्थ चित्र कल्पना के द्वारा जिस साहित्य रूप द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, उसे उपन्यास कहते हैं।"<sup>6</sup>

दि न्यू पिक्चर्ड एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार "आधुनिक साहित्य में नॉवेल पर्याप्त आकार की उस गुंफित कथावस्तुमयी रचना को कहते हैं जिसमें जीवन का वास्तविक चित्र हो और जिसके पात्र एवं घटनाएँ यथार्थ या यथार्थ के अनुरूप हों।"<sup>7</sup>



लगभग इसी प्रकार का विचार बाबू गुलाबराय ने भी व्यक्त किया है—  
 “उपन्यास कार्यकारण श्रृंखला में बँधा हुआ वह गद्य-कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक अथवा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।”<sup>८</sup>

क्लेरारीव का मत है, “उपन्यास यथार्थ जीवन और व्यवहार का तथा उस काल का जिसमें वह लिखा गया है, एक चित्र है।.....उपन्यास उन परिचित वस्तुओं का वर्णन करता है जो प्रतिदिन हमारे सम्मुख होती रहती हैं, जो हमारे या मित्रों के अनुभव की हैं।”<sup>९</sup> इसीलिए प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र माना है और उसका उद्देश्य मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों का उद्घाटन करना बताया है।<sup>१०</sup> राल्फ फॉक्स उपन्यास को जीवन का गद्य मानते हैं। उनके अनुसार “उपन्यास मात्र कथात्मक गद्य नहीं है अपितु वह जीवन का गद्य है। यही एक ऐसी कला है जिसमें मनुष्य अपनी संपूर्णता से प्रतिष्ठित हुआ है और उसे पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।”<sup>११</sup>

उपन्यास का क्षेत्र जितना व्यापक है उतना किसी अन्य साहित्यिक विधा का नहीं है। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी की दृष्टि में “मानव जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं।”<sup>१२</sup>

जैनेन्द्र जी ने अपनी पुस्तक ‘साहित्य का प्रेय और श्रेय’ में उपन्यास के बारे में लिखा है, “उपन्यास के बारे में मेरी अपनी धारणा यह है कि वह जीवन में गति देने के लिए है। गति यानी चेतन्य।”<sup>१३</sup>

डॉ. गोपाल राय के अनुसार, “उपन्यास के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें एक काल्पनिक पर यथार्थ संसार का चित्रण होता है। उपन्यास में वर्णित पात्र कल्पना-प्रसूत होते हैं।”<sup>१४</sup>

अंततः उपन्यास के विषय में संक्षिप्त किन्तु यथासंभव दोषरहित परिभाषा इस रूप में निर्मित की जा सकती है — उपन्यास पर्याप्त आकार की वह गद्य-कथा है जिसमें जीवन के तथ्यों का काल्पनिक परन्तु यथार्थ चित्रण सुव्यवस्थित रूप में होता है।

इस प्रकार उपन्यास मानव जीवन के अत्यंत निकट है। वह वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विकास के कारण मनुष्य के सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक अस्तित्व का अनिवार्य सहचर बन गया है।

### महत्त्व में क्रमिक वृद्धि :

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा बहुत बाद में जन्म लेने पर भी उपन्यास



ने अपना अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है, अपने पूर्व की विधाओं को पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल गया है। काव्य, नाटक और कहानी जैसे सशक्त एवं प्रभावशाली साहित्य-रूपों के बीच उपन्यास ने अपनी जो विशिष्ट पहचान बनाई है उसके मूल में उपन्यास की कई विशेषताएँ हैं। डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के शब्दों में — “सहजता और संभवता के मूलाधार को लेकर उपन्यास मानव के तन और मन के समग्र जगत को दर्पणवत् प्रस्तुत करता है। काव्य अपनी भावमयता और कल्पना में उलझकर संकीर्ण एवं शिथिल गति होकर रह जाता है, नाटक अपनी दृश्यमयता के कारण सीमित एवम् स्थूल है और कहानी अपनी शारीरिक परिधि, भाव तथा उद्देश्यगत सीमाओं के कारण जीवन के किसी एक ऊर्जामय अंश का ही उद्घाटन कर पाती है। उपन्यास इन तीनों विधाओं के सभी गुण स्वयं में अनुस्यूत किए हुए है साथ ही इनकी सीमागत संकीर्णता भी उसमें नहीं है।”<sup>१५</sup>

डॉ. त्रिभुवन सिंह ने भी इस मत की पुष्टि की है, “उपन्यास आधुनिक समाज की विषमताओं, विभिन्नताओं, समस्याओं तथा मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए अस्तित्व में आया है, जिसके लिये प्रबंध काव्य, महाकाव्य, गीत, नाटक तथा कहानियाँ असमर्थ सिद्ध हो चुकी थीं।”<sup>१६</sup>

उपन्यास के इसी प्रभावशाली रूप ने अन्य विधाओं के समुचित विकास के बारे में विद्वानों को चिंतित कर दिया था। डॉ. धर्मवीर भारती की मान्यता इस संबंध में ध्यातव्य है — “पिछले तीन-चार सौ वर्षों में उपन्यास ने समस्त विश्व साहित्य में अपने को जिस प्रकार स्थापित किया उससे आतंकित होकर यह आशंका अक्सर व्यक्त की जाती रही है कि इसके आच्छादन में कविता और नाटक का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। यद्यपि इस प्रकार की अतिरंजित आशंकाएँ बार-बार भ्रंत सिद्ध होती रही हैं, किन्तु उनमें सत्य का इतना अंश अवश्य है कि कविता और नाटक दोनों की अपेक्षा मानव-जीवन के चित्रण के लिए उपन्यास का क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत है।”<sup>१७</sup>

वास्तव में उपन्यास ने मानव-चेतना को विशद और गंभीर बनाया है। जीवन का प्रभावोत्पादक और रोचक निरूपण उपन्यास के द्वारा ही होता है। एक ओर जहाँ नाटक और कविता के आधारभूत नियम निश्चित हैं वहीं उपन्यास को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों की कमी है, फलतः उपन्यास अपने स्वरूप में उन्मुक्त है और जीवन की खुली अभिव्यक्ति करने में सक्षम है। राल्फ फॉक्स लिखते हैं “यथार्थ की एक दूसरी ही दृष्टि उपन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत द्वारा प्रस्तुत यथार्थ से निश्चय ही उपन्यास का यथार्थ भिन्न है। ये सब यथार्थ के उन पहलुओं को भले ही अभिव्यक्त कर सकें जो उपन्यास की पहुँच के बाहर हैं, परन्तु किसी एक पुरुष, स्त्री, या बच्चे का संपूर्ण जीवन भली प्रकार अंकित कर सकने में इनमें से कोई भी समर्थ नहीं है।”<sup>१८</sup>

उपन्यास आधुनिक युग की कठोर वास्तविकता के चित्रण का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। "टामस मन ने कला-रूप के लिहाज से इसे शुद्ध कविता (अर्थात् भावना प्रवणता) को स्थानापन्न करने वाली आलोचना कहा है।" कला-विधि के रूप में उपन्यास महाकाव्य का आधुनिक रूप है, जिसमें नाटक के तत्त्व भी आकर मिल गये हैं। नाटक में जहाँ यह बताया जा सकता है कि कोई चरित्र जैसा है वैसा किस कारण बना है तो उपन्यास में इस परिवर्तन को घटित होते दिखाया जा सकता है।

जीवन का उसकी समग्रता में चित्रण उपन्यास द्वारा ही संभावित है इसलिए लारेन्स का यह मत सर्वग्राह्य है — "उपन्यास जीवन का भास्वर ग्रंथ है। पुस्तकें जीवन नहीं हैं। वे ईश्वर का प्रकम्पन मात्र हैं। लेकिन उपन्यास एक प्रकम्पन के रूप में संपूर्ण मानव को जीवमान बना सकता है। कविता, दर्शन, विज्ञान या अन्य कोई भी जो प्रकम्पन कर पाते हैं, उनसे वह उच्चतर है।"<sup>२०</sup>

साहित्यकार अपने भावों की अभिव्यक्ति उपलब्ध साधन या माध्यम द्वारा तो करता ही है, अपनी रुचि के अनुसार नूतन रूप का आविष्कार कर अपनी बात कहने का प्रयास भी करता है। उसके इस आविष्कार में कला की नवीनता के साथ यदि प्रस्तुति की ताजगी रहती है, तभी वह जनसाधारण द्वारा स्वीकृत-समादृत होता है। इसके अभाव में पाठक अपना ध्यान अन्यत्र केन्द्रित करने लगता है। डॉ. एच.वी. रूथ के अनुसार "कला को निरंतर नया होते रहना चाहिए। इसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्य तत्त्व पर आधारित है। जब प्रस्तुतीकरण की ताजगी निष्प्रभ हो जाती है तब पाठक अपनी दैनन्दिन आदतों में खो जाता है।"<sup>२१</sup>

प्रतीत होता है कि उपन्यास लेखकों ने रूथ के इस कथन को दृष्टि में रखा है। डॉ. चन्द्रकान्त बाँदिवडेकर के मतानुसार "मनुष्य जीवन के यथार्थ का चित्र देने की आकांक्षा रखनेवाली इस विधा ने मनोरंजन के लिए परंपरागत साधन के रूप में कथा को स्वीकार किया किन्तु मनुष्य चरित्र के माध्यम से जीवन के विविध रूपों का उद्घाटन करना ही उसकी प्रमुख आकांक्षा रही। समाज के परिवर्तनों के साथ मानव-जीवन के बदलते प्रवाह के अनुकूल दो सौ वर्षों तक अपने को ढालने का प्रयत्न उपन्यास विधा ने किया। इसीलिए अन्य विधाओं की तुलना में वह अधिक लचीली और सर्वसमावेशी विधा कहलायी।"<sup>२२</sup>

मानवीय चिंताओं का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने के कारण उपन्यास साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विधा बन गई है। कोई भी साहित्य-रूप उपन्यास की प्रमुखता को अपदस्थ नहीं कर पाया है। उपन्यास अपने काल की विविध प्रवृत्तियों, द्वन्द्वों तथा ऐतिहासिक स्थितियों का उद्घाटन करता है। वह केवल व्यक्ति और परिवेश के संबंधों को व्यक्त नहीं करता इतिहास का भी परिचय कराता है। उसका यही बहुरूपिया स्वभाव, सभी



विधाओं से समझौता कर लेने की उसकी प्रवृत्ति; इतिहास, धर्म, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, विज्ञान और दर्शन तक को अपने आप में समाहित करने की क्षमता तथा जीवन-जगत के यथातथ्य चित्र उपस्थित करने की उसकी सामर्थ्य ने उसे सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बना दिया है। थार्प ने ठीक ही कहा है, "हमारी सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए तथा हमारे मानसिक गठन को समझने के लिए बाईसवीं सदी का आलोचक — चित्रकार, शिल्पकार या नाटककार का नहीं उपन्यासकार का मुख जोहेगा।"<sup>२३</sup>

उपन्यास के प्रति हमारी रुचि तथा उससे प्राप्त होने वाले मनोरंजन के कई कारण हैं। उपन्यास जीवन का आकर्षक चित्र प्रस्तुत करता है जो हमारे अनुभव के अनुरूप होते हुए भी चमत्कारपूर्ण नवीनता रखता है। उसमें नवीनता और प्राचीनता दोनों होती है। उपन्यास कलात्मक सौष्टव के साथ जीवन की अनुकृति करता है। उपन्यास में मार्मिकता, रोचकता, और विस्मयकारी दृश्यों के साथ-साथ जीवन के संघर्ष और द्वन्द्व का चित्रण होता है। जीवन अपने यथार्थ स्वरूप में मानव के लिए भले ही बोधगम्य न हो परन्तु कलात्मक साँचे में ढलकर वह हमारे लिए सहज हो जाता है। उपन्यास के रूप में वह बिल्कुल सरल रूप में जाना जा सकता है। डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के अनुसार — "वास्तविकता का प्रतिपादन नाटक और गीत भी करते हैं पर उपन्यास अधिक विस्तृत, गहन और पैना होता है। उपन्यास जीवन के लघुतम और साधारणतम तथ्यों को भी पूरी स्वच्छता, स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है। गहराई में काव्य अद्वितीय है और विद्वबलीकरण में नाटक; फिर भी उपन्यास अधिक आंतरिकता से इन गुणों को स्वयं में ढाल चुका है।"<sup>२४</sup>

इस प्रकार साहित्य की अनेक विधाओं — कविता, कहानी, नाटक, निबंध उपन्यास आदि में उपन्यास की विशेष स्वीकृति आधुनिक युग की सामाजिक वास्तविकता की देन है। सामाजिक यथार्थ को जटिलता और विस्तार में देखने की जैसी संभावना उपन्यास में है वैसी अन्य किसी साहित्य रूप में नहीं है। डॉ. चंद्रकान्त बाँदिवडेकर के शब्दों में — "उपन्यास की शक्ति उसका अतिशय लचीलापन, विकसनशीलता एवम् प्रयोगधर्मिता है। तीव्रता और विस्तार दोनों का समावेश उसमें होता है। हर अन्य विधा का कुछ वैशिष्ट्य उपन्यास में समा गया है, अतः वह सर्वाधिक रूप में जीवनवाली और दीर्घायु विधा सिद्ध हुई है।"<sup>२५</sup>

डॉ. त्रिभुवन सिंह के मतानुसार, "उपन्यास गद्य साहित्य का वह समर्थ रूप है जिसमें प्रबंध काव्य का सा सुसंगठित वस्तु विन्यास, महाकाव्य की सी व्यापकता, गीतों की सी मार्मिकता, नाटकों का सा प्रभाव गांभीर्य तथा कहानियों की सी कलात्मकता एक साथ मिल जायेगी।"<sup>२६</sup>

इस प्रकार उपन्यास ने नाटक, कहानी, कविता और निबन्ध की अपेक्षा अपना



कथ्य सशक्त रूप में प्रस्तुत करके अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की है और अभिव्यक्ति की सार्थकता सिद्ध की है।

### साम्प्रतिक स्थिति :

जीवन का अत्यधिक निकट, स्पष्ट और स्वाभाविक वर्णन करने के कारण दूसरी विधाओं की अपेक्षा उपन्यास हमारा अत्यन्त आत्मीय हो गया है परन्तु साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में उपन्यास ने संप्रति जो प्रतिष्ठा पाई है वह उसे सहज रूप में ही नहीं प्राप्त हुई है। अपने उद्भव काल से ही यह विधा विद्वानों की कटु आलोचना सहती रही है।

माण्टगोमरी बेलगिन ने कहा है कि उपन्यास में रचनात्मक साहित्य जैसी कोई वस्तु है ही नहीं और उपन्यासकार एक रचनात्मक कलाकार नहीं है।<sup>१०</sup> स्कॉट जेम्स के विचार से "पाश्चात्य चिंतक वर्जीनिया वुल्फ तो उपन्यास को कला क्षेत्र में बहिष्कृत कर देती हैं। उनके अनुसार ऐसा कोई आलोचक जीवित नहीं है जो उपन्यास को कला कहे और कला के प्रतिमानों को लेकर उसका मूल्यांकन कर सके।"<sup>११</sup> कुछ विचारक उपन्यास को रचनात्मक कला का परिणाम तो मानते हैं परन्तु इसे अत्यन्त निम्न कोटि का साहित्य कहते हैं। जॉर्ज ने स्पष्ट कहा है "इसका स्तर भले ही निम्न हो परन्तु यह विधा मानवता और मानवता की निर्मात्री होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।"<sup>१२</sup>

उपन्यास की महत्ता विगत ६०-७० वर्षों से सर्वमान्य रूप से प्रतिपादित की जाने लगी है। इसके पूर्व उपन्यास का पठन केवल पढ़े-लिखे धनिक वर्ग तक ही सीमित था। इस वर्ग के पास समय और साधन दोनों का अभाव नहीं था। उस काल में केवल अंधेड़-वय के व्यक्ति ही उपन्यास पढ़ सकते थे, कम उम्र के युवकों के लिए इसका पठन वर्जित था। निश्चित रूप से ऐसा इसलिए किया गया होगा क्योंकि एक ओर जहाँ युवा या किशोर मन अविकसित होता है वहीं प्रौढ़ व्यक्तियों का मानसिक स्तर विकसित एवं परिपक्व होता है। उपन्यासों में जीवन का यथावत् चित्रण तथा उसके पढ़ने से युवा-मन पर गलत-प्रभाव पढ़ने का संभावित भय भी इसके पीछे काम करता रहा होगा। ऐसी संभावना हो या न हो परन्तु इस बात से यह तात्पर्य अवश्य निकलता है कि तत्कालीन जन-मानस को उपन्यास की गहरी प्रभावशीलता का अनुभव हो गया था। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में — "उपन्यास को एक शक्ति-संपन्न परन्तु खतरनाक माध्यम तो बहुत दिनों से माना जाता रहा है किन्तु उसकी शक्ति के श्रेयस्कर प्रभावों को अब पहचान लिया गया है। यही कारण है कि समकालीन साहित्यिक वातावरण में उपन्यास की महत्ता सर्वोपरि है।"<sup>१३</sup>

उपन्यास की प्रभावोत्पादकता के कारण आलोचक उसके भविष्य के बारे में सदैव चिंतित रहे हैं। कई विरोधी आलोचकों द्वारा उपन्यास की मृत्यु की घोषणा के

बावजूद उपन्यास अपनी महत्ता सिद्ध करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है। यह एक शुभ लक्षण है। वास्तव में उपन्यास के इतिहास में ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो इसके भविष्य के प्रति लोगों को निराश और चिंतित करे। समाज और व्यक्ति के निर्माण का दायित्व-निर्वाह जब तक उपन्यास करता रहेगा तबतक उसके बारे में किसी प्रकार की चिंता की आवश्यकता नहीं है।

आजकल उपन्यास बनी-बनाई पद्धति से न लिखा जाकर नई विधियों से प्रस्तुत किया जा रहा है। जीवन की जटिलताओं का विविध रूप एक ही उपन्यास में पा लेने की प्राचीन प्रणाली अब दृष्टिगोचर नहीं होती। किसी एक पक्ष को लेकर भी मानव-मन की जटिलताएँ उपन्यास द्वारा व्यक्त हो रही हैं। उपन्यासकार अब केवल, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक बनकर रचना नहीं लिखता, वह सब कुछ एक साथ है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर के अनुसार, “इधर जो रचनाएँ उपन्यासकार दे रहे हैं उनके वैविध्य और वैचित्र्य को, समृद्धि और प्रगाढ़ता को देखते हुए यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास आज अपने वैभव में है।”<sup>११</sup>

प्रेमचंद ने ‘माधुरी’ के जुलाई-दिसंबर १९२२ के अंक में अपने ‘उपन्यास रचना’ शीर्षक निबंध में लिखा था — “गत शताब्दी में पाश्चात्य देशों में जितने सुधार हुए हैं उनमें अधिकांश का बीजारोपण उपन्यासों द्वारा ही किया गया था। डिकिन्स के प्रायः सभी उपन्यास, टाल्सटाय के कई उत्तम उपन्यास, मैक्सिम गोर्की, टर्जनीफ, बालजक, ह्यूगो, मेरी कॉरेली, जोला आदि प्रधान उपन्यासकारों ने सुधारों के उद्देश्य से अपने ग्रंथ रचे हैं।”<sup>१२</sup> प्रेमचंद का यह कथन उपन्यासों की सामर्थ्य को स्पष्ट करता है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं होना चाहिए कि उपन्यासकार पाठकों का मनोरंजन करना भूल जाय। इसी लेख में प्रेमचंद ने लिखा है — “उपन्यासकार यह कभी नहीं भूल सकता कि उसका प्रधान कर्तव्य पाठकों का गम गलत करना, उनका मनोरंजन करना है। और सभी बातें इसके अधीन हैं। जब पाठक का जी ही कहानी में न लगा, तो वह क्या लेखक के भावों को समझेगा? क्या उसके अनुभवों से लाभ उठायेगा? वह घृणा के साथ किताब को पटक देगा और सदा के लिए उपन्यासों का निंदक हो जायेगा। आज भी कितने ही ऐसे व्यक्तित्व मिलते हैं जिन्हें उपन्यासों से चिढ़ है। उन्होंने व्रत लिया है कि उपन्यास कदापि न पढ़ेंगे। कारण यही है कि हिन्दी के वर्तमान उपन्यासों ने उन्हें निराश कर दिया है। नए उपन्यास लेखकों का कर्तव्य है कि वे उपन्यास साहित्य के मुख को उज्ज्वल करें, इस बदनामी के दाग को मिटा दें।”<sup>१३</sup>

प्रतीत होता है कि उपन्यास-सम्राट की उपर्युक्त आशंका को ध्यान में रखते हुए परवर्ती लेखकों ने अपने दायित्व को भली-भाँति समझा है तथा हिन्दी साहित्य की इस विधा को जो प्रतिष्ठा दिलाई है वह प्रशंसनीय है। “हिन्दी का यह सौभाग्य है कि



आधुनिकता से साक्षात्कार करते हुए भी हमारे उपन्यासकार आदिम युग से लेकर निकट अतीत के भूले-बिसरे चित्रों तक अतीत को चौकन्नी दृष्टि से देख रहे हैं और अपनी वर्तमान भाव भूमि को अनुवरा होने से बचा रहे हैं।<sup>12\*</sup>

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज के उपन्यास लेखक, आलोचक तथा पाठक उपन्यासों की सांप्रतिक प्रभविष्णुता से पूर्ण परिचित होकर अपने-अपने दायित्वों का कुशलता पूर्वक निर्वाह कर रहे हैं। इससे उपन्यासों के प्रभावशाली भविष्य के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है।

## नागर-पूर्व हिन्दी-उपन्यास की परंपरा

### पूर्व-प्रेमचन्द युग :

प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यासों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए हिन्दी साहित्य में उपन्यास के सूत्रपात पर विचार करना आवश्यक है।

यह ठीक है कि यूरोप से बंगाल होकर हिन्दी क्षेत्र में उपन्यास का आगमन हुआ है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि तत्कालीन कथा-परंपराओं के महत्त्व को नकार दिया जाये। भारतीय कथा परंपराओं का प्रभाव निश्चित रूप से १९वीं शती के उपन्यास लेखकों पर पड़ा था। प्राचीन कथा साहित्य में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश के कथा साहित्यों को शामिल किया जा सकता है। नीति का उपदेश देने के उद्देश्य से रचित 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' जैसी नीतिपरक रचनाएँ : 'दश कुमार चरित', 'अवन्ति सुन्दरी कथा', 'वासवदत्ता', 'हर्ष चरित', 'कादम्बरी' आदि साहित्यिक रंजन कथाएँ एवम् 'वृहत्कथा मंजरी', 'कथा सरित्सागर', 'शुक सप्तति', 'वेताल पंचविंशति' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' आदि लोकरंजक कथाएँ इस परंपरा को आगे बढ़ाती हैं। इनका मूल उद्देश्य कौतूहल और मनोरंजन है। साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से इनका स्तर बहुत ऊँचा नहीं है। परन्तु इस साहित्य ने विदेशों में "अलिफ लैला" जैसी अमर कथाओं को जन्म देने का श्रेय प्राप्त किया है। मुस्लिम राज्य की स्थापना के बाद 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा चहारदरवेश' आदि की कहानियाँ लोक में प्रचलित हो गईं। इस परंपरा का अनुगमन लिखित या मौखिक रूप में मध्यकाल तक चलता रहा।

सन् १८०० से १८७० ई. तक खड़ी बोली के ७० वर्ष के इतिहास में कथा साहित्य का अपना महत्त्व रहा है। ये कथाएँ या कहानियाँ 'हिन्दुस्तानी' में लिखी गई हैं। इनमें अधिकांश का उद्देश्य अंग्रेजों को देशी भाषा का परिचय कराना था। डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णोय का फोर्ट विलियम कॉलेज के विषय में यह कथन इस बात की पुष्टि



करता है — “सुलेखक के साथ-साथ उन्होंने (गिलक्राइस्ट) ने (कौंसिल से) एक किस्सा खाँ भी मांगा। किस्सा खाँ प्रत्येक विद्यार्थी के घर जाकर हिन्दुस्तानी में किस्से सुनाया करता था। इससे (अंग्रेज) विद्यार्थियों का भाषा संबंधी ज्ञान बढ़ता था।”<sup>३५</sup>

उस युग की रचनाओं में प्रमुख हैं इंशा अल्ला खाँ कृत ‘उदैभान चरित या रानी केतकी की कहानी’ (सन् १८०० के लगभग), लल्लू लाल कृत ‘सिंहासन बत्तीसी’ (१८०१), बेताल पच्चीसी; सदल मिश्र कृत ‘चन्द्रावती या नासिकेतोपाख्यान’ (१८०३) के अतिरिक्त ‘तोता कहानी’ (१८२८) ‘किस्सा साढ़े तीन यार’, ‘चार दरवेश’, ‘हातिमताई’, ‘गुलबकावली’ आदि।

इन रचनाओं की मौलिकता पर प्रश्न किए गए हैं। लल्लू लाल ने ब्रजभाषा से अनुवाद किया है, सदल मिश्र ने संस्कृत की कथा ली है तथा किस्से उर्दू से आए हैं। इनमें इंशा अल्ला खाँ कृत ‘रानी केतकी की कहानी’ को मौलिक माना जाता है परन्तु वह मसनवी परंपरा में मध्ययुगीन प्रेम कहानी है जिसमें नाम के अतिरिक्त कोई नवीनता नहीं। समग्र दृष्टि से देखने पर भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में लिखी गई कथाओं से नवीन युग की सूचना नहीं मिलती। इनका स्तर संतोषजनक नहीं है, भाषा मिश्रित है। इन रचनाओं का उद्देश्य जन सामान्य का मनोरंजन मात्र है।

भारतेंदु जी के लेखन से हिन्दी साहित्य ने उच्च स्तर प्राप्त किया। १५ वर्ष की आयु से ही बंगीय साहित्य, विशेषतः नाटक और उपन्यास से उनका घनिष्ठ परिचय हो गया था। सन् १८६८ में उन्होंने विद्यासुन्दर बंगला नाटक का अनुवाद किया तथा ‘कविबचन सुधा’ पत्रिका निकाली। इस काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५० ई. से १८८५ ई.) के प्रोत्साहन से बंगला के कई प्रमुख उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद तो हुआ ही— कई मौलिक उपन्यास भी लिखे गए। भारतेन्दु जी ने स्वयं एक उपन्यास लिखना आरंभ किया था जिसका कुछ अंश “एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती”<sup>३६</sup> शीर्षक से ‘कवि बचन सुधा’ में मुद्रित हुआ था। इसका ‘प्रथम खेल’ मात्र २ पृष्ठों का प्रकाश में आ सका था। भारतेन्दुजी ने भले ही मौलिक उपन्यासों की रचना न की हो परन्तु उन्होंने हिन्दी उपन्यास के लिए भूमि अवश्य निर्मित की। उन्होंने स्वयं तथा अन्य लेखकों द्वारा बांग्ला, मराठी आदि भाषाओं से अनुवाद कराकर हिन्दी उपन्यास के पाठकों को तैयार किया तथा लेखकों को अनुवाद कार्य की ओर अग्रसर किया। ‘चंद्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश’ का मराठी भाषा से अनुवाद कराकर भारतेन्दु जी ने इसे स्वयं शुद्ध किया था। उनके द्वारा देशी-विदेशी भाषा से उपन्यासों के अनुवाद का जो क्रम प्रारंभ हुआ उससे हिन्दी लेखक इस साहित्य रूप के प्रति आकृष्ट हुए और हिन्दी में भी उपन्यासों की रचना प्रारंभ हो गई। इन प्रारंभिक उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने तथा सामाजिक बुराइयों को मिटाने का लक्ष्य प्रधान रहा। परन्तु सामाजिक

उपन्यासों की यह धारा देवकी नंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा किशोरी लाल गोस्वामी के मनोरंजन-प्रधान घटनात्मक उपन्यासों के प्रवाह में क्षीण पड़ गई। सामाजिक उपन्यासों का यह अभाव प्रेमचंद के आगमन तक बना रहा। प्रेमचंद पूर्व युग के उपन्यासों को मुख्यतः ५ वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

१. उपदेश प्रधान या सामाजिक
२. घटना प्रधान
३. ऐतिहासिक
४. भाव-प्रधान
५. अनूदित

### उपदेश प्रधान या सामाजिक :

प्रेमचंद के पूर्व के ३०-३२ वर्षों के उपन्यासों का अवलोकन तत्कालीन समाज के विविध रूपों को प्रतिबिंबित करता है। जिस समय हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास प्रकाश में आया उस समय राजनीतिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक स्थिति भी परिवर्तित होने लगी थी। भारतेंदु युग में भारतीय समाज परस्पर-विरोधी परिस्थितियों के चक्र में फँसा था। अंग्रेजों की भेद-नीति, आर्थिक शोषण, ईसाई धर्म का प्रचार, राष्ट्रीयता का दमन आदि के कारण देश की स्थिति एक ओर डौंवाडोल हो रही थी तो दूसरी ओर कुछ पढ़े-लिखे नवयुवक अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव में आकर भारतीयता का उपहास करने के आदी हो चले थे। भारतीय रीति-रिवाज, सभ्यता-संस्कृति उन्हें बर्बरतापूर्ण लग रही थी तथा अंग्रेजी सभ्यता का अनुकरण और अंग्रेजी-भक्ति उनका जीवन-दर्शन बनता जा रहा था। ऐसी परिस्थिति में देश में एक ऐसा वर्ग उदित हुआ जिसने समाज में धर्म-निष्ठा, जातीय स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा का कार्य संपादन करने का व्रत लिया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफी, प्रार्थना समाज आदि ने देश-व्यापी कार्य करके सामाजिक आंदोलन के माध्यम से राष्ट्रीय तेजस्विता को बनाए रखा। देश के साहित्यकारों को इस प्रकार साहित्य सृजन हेतु कई विषय प्राप्त हुए। ये सामाजिक परिस्थितियाँ ही सुधारवादी, परंपरा-रक्षक, नैतिकतावादी, उपदेशपरक उपन्यासों के निर्माण में सहायक बनीं। चूँकि इन सामाजिक उपन्यासों का उद्देश्य उपदेश के माध्यम से सुधार करना था अतः उन्हें उपदेशपरक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' (सन् १८८२ ई.) हिन्दी का सर्वप्रथम सुधारवादी सामाजिक उपन्यास माना जाता है। इसमें हितोपदेश तथा पंचतंत्र की शैली है। बीच-बीच में नीति संबंधी उदाहरण हैं। इसके प्रत्येक प्रकरण के आरंभ में तथा कथा के बीच में भी शिक्षाप्रद उद्धरण दिए गए हैं। यह उपन्यास प्राचीन उपदेशपरक कथा आख्यायिकाओं तथा प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी माना जा सकता है। विद्वानों का एक वर्ग 'देवराणी-जेठानी की कहानी' से हिन्दी उपन्यास का आरंभ मानता है। कुछ विद्वानों की दृष्टि में पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (१८७७) हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। दोनों ही कृतियों की कथाएँ उपदेशपरक हैं।



इनके अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान'; अमृतलाल चक्रवर्ती कृत 'सती सुख देवी'; लज्जाराम शर्मा कृत 'आदर्श दम्पति' तथा 'बिगड़े का सुधार'; लोचन प्रसाद पाण्डेय कृत 'दो मित्र' और गोपाल राम गहमरी कृत 'नए बाबू' (१८९४) इसी प्रकार के उपन्यास हैं। गहमरी जी ने पारिवारिक जीवन से संबंधित 'देवरानी-जेठानी' (१९०१), 'सास-पतोहू', 'दो बहन' (१९०३), 'डबल-बीबी' (१९०२), 'तीन-पतोहू' (१९०५) उपन्यासों की भी रचना की। इस युग के उपन्यासों में स्त्रियों के लिए आदर्श हेतु अनुसूया, सुभद्रा, चन्द्रलेखा, मदालसा, सीता-सावित्री जैसे चरित्रों को तथा पुरुषों के लिए वीर कर्ण, एकलव्य, परशुराम आदि वीरों के चरित्रों को चित्रित किया गया है।

इस युग के सामाजिक या उपदेश प्रधान उपन्यासों में समाज की समस्याओं के अध्ययन की चेष्टा तो दिखाई पड़ती है परन्तु यह अध्ययन सतही ही रहा। इसमें यथार्थपरक एवं गंभीर विवेचन का सर्वथा अभाव ही है।

### घटना-प्रधान :

घटना-प्रधान उपन्यास का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। इस कोटि के उपन्यासों में चित्र-विचित्र घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। इनमें तिलिस्मी, जासूसी, ऐयारी, रंगीले, भड़कीले, अनुठे और जानदार विषय वर्णित किए गए हैं। उपन्यासों के इन विशेषणों का प्रयोग तत्कालीन उपन्यासों के विज्ञापन या मुखपृष्ठों पर देखा जा सकता है।

इन तिलिस्मी, ऐयारी उपन्यासों में निर्बन्ध कल्पना की ऊँची उड़ान द्वारा ऐसे पात्रों का सृजन किया गया जो जीवन के अंतर्वाह्य किसी भी छोर का स्पर्श नहीं कर सके। परन्तु ये उपन्यास घटनाओं की विचित्रता, चमत्कार, विविध छायालोको के सृजन तथा कौतूहल वृत्ति को तृप्त करने के कारण तत्कालीन पाठकों द्वारा स्वीकार किए गए। इन उपन्यासों के नायक-नायिकाओं तथा ऐयारों का व्यक्ति, समाज या युग-चेतना से दूर का भी सम्पर्क नहीं था। इन उपन्यासों का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन प्रदान करना ही है।

देवकी नंदन खत्री, दुर्गा प्रसाद खत्री तथा हरिकृष्ण जौहर आदि इस धारा के विशिष्ट उपन्यासकार हैं। चूँकि इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैविध्य रहा, रस संचार या चरित्र-चित्रण नहीं इसलिए उपन्यासकारों ने इनमें जीवन के विविध पक्षों को परिलक्षित करने का प्रयास नहीं किया। बाबू देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकांता' और 'चंद्रकान्ता संतति' का नाम इतना फैला कि लोग इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखने लगे। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है — "हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकी नंदन खत्री का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि हिन्दी



के जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किए उतने और किसी उपन्यासकार ने नहीं।<sup>१३०</sup> खत्री जी के उपन्यासों को प्रकाशित हुए लगभग ९० वर्ष बीत चुके हैं परन्तु आज भी उनके पाठकों और प्रशंसकों की संख्या में कोई कमी नहीं आई है। इन उपन्यासों को पढ़कर लोग उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए। गुरुदत्त के अनुसार - "चंद्रकांता मुझको बहुत रसमय लगी थी, वास्तव में लेखक बनने की इच्छा मेरे मन में तभी से उगी थी।"<sup>१३१</sup> अमृतलाल नागर ने अपने एक लेख 'हिन्दी उपन्यास साहित्य को देवकीनंदन खत्री की देन' में खत्री जी की हिन्दुस्तानी किस्सागोई पद्धति का उल्लेख करते हुए उनके रचना कौशल की तारीफ की है - "देवकीनंदन खत्री का रचना-कौशल ही हमारा रहनुमा बनेगा। कोरी कला के फेर में लाखों पाठक छोड़ने वाले एरिस्टोक्रैट मूर्ख अपनी जमीन पर निकट भविष्य में न टिक सकेंगे। हमारे नये साहित्यिकों को उस दिन के लिए प्रस्तुत होना है और किस्सागोई की उस परम्परा को समझदारी के साथ आगे बढ़ाना है।"<sup>१३२</sup> इस प्रकार पाठक और उपन्यासकार दोनों को तैयार करने में खत्री जी का योगदान अनूठा है। खत्री जी के तिलिस्म का जादू सिर चढ़कर बोलता है। अतः बाबू देवकीनंदन खत्री को पूर्व-प्रेमचंद युग का उपन्यास-सम्राट कह सकते हैं। डॉ. गोपाल राय 'चंद्रकांता' के रचना समय १८९० ई. को हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर मानते हैं।<sup>१३३</sup> खत्री जी की लोकप्रियता का कारण उनकी सरल भाषा एवं पाठकों की रुचि के अनुकूल कथा योजना के साथ "अद्भुत, कौतूहलोत्पादक और रोमांचकारी घटनाओं की जटिल शृंखला है जिसमें एक बार कैद होकर साधारण पाठक निकल जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। .....तिलिस्मी करिश्मों और तमाशों का ऐसा अपूर्व और अभिभूत कर देने वाला वर्णन इन कथाओं में मिलता है, जिसे पढ़कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। पाठकों को द्विधा में डालने का अद्भुत कौशल खत्री जी में है।"<sup>१३४</sup>

खत्री जी की 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति' तथा 'भूतनाथ' में तिलिस्म और ऐयारी कथा पुस्तकों के औत्सुक्य, कौतूहल, द्विधा, रोमांच आदि तत्त्व अपनी चरम शक्ति में देखे जा सकते हैं। खत्री जी की महत्ता इस बात में भी है कि उन्होंने 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'चहार दरवेश' आदि कहानियों के श्रोतृवर्ग को अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठक वर्ग में परिणत कर दिया। इस काल के अन्य प्रमुख लेखक और उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं— हरिकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' मयंक मोहिनी वा मायामहल, कमल कुमारी या तिलिस्म नीलम; किशोरीलाल गोस्वामी कृत राजकुमारी, कटे मूड़ की दो-दो बातें वा तिलिस्मी सीसमहल; निहालचंद वर्मा कृत 'मोतीमहल या लक्ष्मी देवी'। दुर्गाप्रसाद खत्री ने देवकी नंदन खत्री के 'भूतनाथ' को पूरा किया। इस काल में देवकी नंदन खत्री की व्यावसायिक सफलता से आकृष्ट होकर कई उपन्यासकारों ने उनके मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया परन्तु वे खत्री जी की विशेषताओं का स्पर्श तक नहीं कर सके।

समग्र रूप से विचार करने पर हम देखते हैं कि इस काल की रचनाओं में साहित्यिकता का अभाव भले ही हो परन्तु हिन्दी-पाठक वर्ग के निर्माण की दृष्टि से इनका महत्त्व सर्वापरि है। इन तिलिस्मी कथाओं ने हिन्दी में एक विशाल पाठक वर्ग तैयार किया जो परवर्ती काल में हिन्दी कथा साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुआ।

जासूसी उपन्यास तिलिस्मी उपन्यासों से भिन्न कोटि की घटनात्मक कथा का सृजन करने में प्रवृत्त हुए। गोपालराम गहमरी उल्लेखनीय जासूसी उपन्यासकार हैं। १८९८ ई. में उन्होंने बंगला से अनूदित 'हीरे का मोल' उपन्यास प्रकाशित कराया जो पाठकों द्वारा प्रशंसित हुआ। गहमरीजी जासूसी उपन्यास के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। उन्होंने लगभग १५० उपन्यासों की रचना की जिनमें 'मेम की लाश', 'खूनी का भेद', 'डबल जासूस', 'जासूस की जवानी', तथा 'काशी की घटना' आदि प्रतिनिधि उपन्यास हैं। गहमरी जी के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य लोकरंजन था। इन उपन्यासों का उस समय के सामाजिक जीवन से कोई सम्पर्क नहीं रहा है। आदर्श की प्रतिष्ठा या नैतिक सिद्धांतों की चर्चा में भी इनकी कम रुचि थी। परन्तु इन रचनाओं में जीवन का वर्णन तिलिस्मी उपन्यासों की अपेक्षा अधिक करीबी से मिलता है। अन्य जासूसी उपन्यासों में प्रमुख हैं—राम प्रसाद लाल का 'हम्माम का मुर्दा', जयराम दास गुप्त के 'काला चाँद' तथा 'लंगड़ा खूनी' और रामलाल वर्मा के 'जासूस के घर खून', 'जासूसी कुत्ता' आदि।

यदि इस काल के जासूसी उपन्यासों एवम् लेखकों की सूची तैयार की जाय तो वह अत्यंत विस्तृत होगी। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि काशी और कलकत्ते से जितनी उपन्यासमालाएँ निकलीं उनका तीन-चौथाई साहित्य जासूसी है। परिमाण की दृष्टि से यह साहित्य भले ही विस्तृत हो परन्तु गुणवत्ता तथा साहित्यिक दृष्टि से यह कोई दृष्टिकोण उपस्थित नहीं करता। इन उपन्यासों में रोचकता की कमी परिलक्षित होती है परन्तु जासूसी उपन्यासों की परंपरा की समृद्धि का कारण यह भी है कि तिलिस्मी की अपेक्षा जासूसी उपन्यास लिखना सहज है। हिन्दी में जासूसी उपन्यास अभी भी लिखे जा रहे हैं जबकि तिलिस्मी उपन्यास अब दिखाई नहीं देता।

समग्रतः जासूसी उपन्यासों के इस दौर में गहमरी जी का प्रयत्न प्रशंसनीय है क्योंकि उन्होंने घटना को विश्वसनीय बनाकर सुधारवादी लक्ष्य निश्चित किया। उस काल के अन्य जासूसी उपन्यासकारों की रचना नीरस और हल्की है।

निष्कर्ष रूप में इन उपन्यासों के बारे में हम कह सकते हैं कि ये उपन्यास तिलिस्मी उपन्यासों की अपेक्षा कला की दृष्टि से अधिक सशक्त हैं। इनमें मानवीय उत्सुकता का अंत चमत्कार की अपेक्षा साहसिक कथाओं द्वारा होता है। घटना की प्रमुखता के साथ चरित्र विकास का अवकाश भी उपन्यासकार को जासूसी उपन्यासों में तिलिस्मी उपन्यासों की अपेक्षा अधिक मिला है। तिलिस्मी उपन्यासों के खयाली संसार



के भटकाव से निकालकर जासूसी उपन्यास हमारी बुद्धि को सजग रखकर जीवन के निकट लाने में सहायक सिद्ध हुए।

### ऐतिहासिक :

प्रेमचंद-पूर्व युग में इतिहास को आधार मानकर कई उपन्यास रचे गए। परन्तु इन उपन्यासों को पढ़ने से विदित होता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों के वैशिष्ट्य का निर्वाह इनमें नहीं हो सका। इन लेखकों को न तो इतिहास की समुचित जानकारी थी और न ही अतीत के वातावरण को सजीव कर देने की कल्पना शक्ति ही इनमें थी। यही कारण है कि इन उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण अनुपस्थित है। घटनाओं तथा उस समय के आचार-विचार, रीति-नीति, वेश-भूषा आदि के वर्णनों में भी स्पष्ट दोष परिलक्षित होता है। अपनी वर्णनात्मकता के कारण कुछ उपन्यास कोरे इतिहास लगते हैं तो कुछ ऐतिहासिक चौखटे में जासूसी, ऐयारी, तिलिस्मी करिश्मों से भरपूर हैं। इन उपन्यासों में पात्रों की सजीवता पर कम और घटनाओं की मनोरंजकता पर अधिक ध्यान दिया गया है। इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियों की ओर आलोचकों ने संकेत किया है। शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लिखना इस युग के उपन्यास लेखकों का ध्येय नहीं था। 'तारा' की भूमिका में इसका स्पष्ट उल्लेख है — 'हमने' अपने बनाए उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार कर दिया है। .....लोग इसे इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासों में खोजने का उद्योग भी न करें।"४२

इस युग के उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी को हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है। इनके द्वारा लिखित ६५ उपन्यासों में दो दर्जन से अधिक उपन्यास ऐतिहासिक हैं। गोस्वामीजी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'तारा वा क्षत्र कुल कमलिनी' है जो सन् १९०२ में प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा संस्करण भी १९१४ में निकल गया था। परिमाण और गुण की दृष्टि से गोस्वामी जी ने इस युग में सर्वाधिक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। इनके प्रमुख उपन्यास हैं— 'तारा वा क्षत्र-कुल-कमलिनी', 'लवंगलता वा आदर्शबाला', 'कुसुम कुमारी', 'हृदयहारिणी वा आदर्शरमणी', 'लखनऊ की कन्न वा शाही महल सरा' आदि।

अन्य प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार तथा उनकी रचनायें इस प्रकार हैं - गंगा प्रसाद गुप्त कृत नूरजहाँ तथा हम्मीर, बल्देव प्रसाद मिश्र कृत अनारकली, पानीपत तथा पृथ्वीराज चौहान; गिरिजानंद तिवारी कृत पद्मिनी; जयराम दास गुप्त कृत कश्मीर पतन तथा नवाबी पिरस्तान; मथुरा प्रसाद शर्मा कृत नूरजहाँ बेगम; ब्रज नन्दन सहाय कृत लाल चीन।



इस प्रकार यद्यपि शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन इस युग में नहीं हुआ परन्तु यह निर्विवाद रूप से माना जा सकता है कि ऐतिहासिक उपन्यासों का बीज-वपन छिट-पुट रूप में इसी काल में हुआ था।

### भाव प्रधान उपन्यास :

आलोच्यकाल में कुछ ऐसे उपन्यासों की रचना हुई, जो न घटना प्रधान हैं और न ही चरित्र प्रधान। इन्हें भावप्रधान, उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है। इनमें ठाकुर जगमोहन सिंह कृत 'श्यामा स्वप्न' तथा ब्रजनन्दन सहाय कृत 'सौन्दर्योपासक', 'राधाकान्त', 'राजेन्द्र मालती' उपन्यास आते हैं। इनकी भाषा आलंकारिक है तथा कथातत्त्व का अभाव सा है। ये उपन्यास गद्य काव्य के अधिक निकट हैं। संस्कृत कथा आख्यायिकाओं के ढंग पर लिखे जाने के प्रयोग के कारण कुछ विद्वान इन्हें प्रयोगवादी उपन्यासों की कोटि में रखते हैं। 'श्यामा स्वप्न' (१८८८ ई.) शैली की दृष्टि से उस युग की विशिष्ट रचना है। पं. अंबिका दत्त व्यास कृत 'आश्चर्य वृत्तांत' (१८९३ ई.) ऐसी ही प्रयोगवादी रचना है।

### अनूदित उपन्यास :

हिन्दी का पहला उपन्यास अंग्रेजी से प्रभावित होकर मौलिक रूप में लिखा गया था परन्तु अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासों को बहुविध प्रभावित किया। उस काल में अंग्रेजी, उर्दू, मराठी, गुजराती के हिन्दी अनुवादकर्ता हुए ही परन्तु सर्वाधिक हिन्दी रूपान्तर बंगला की रचनाओं का हुआ। इसका कारण बंगला उपन्यास साहित्य का सर्वाधिक समृद्ध होना है। बंकिमचंद्र, रमेशचन्द्र दत्त, चंडीचरण सेन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र जैसे श्रेष्ठ बंगला लेखकों के अनेक अनुवाद हुए। अनुवाद कार्य में योगदान देने वाले प्रमुख लेखक थे — प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, रूप नारायण पाण्डेय आदि। इस प्रकार बंगला उपन्यासों ने हिन्दी भाषा-भाषी जनता तथा लेखकों का रुचि-संस्कार करने में बड़ा योग दिया। बंगला उपन्यासों का हिन्दी उपन्यासों पर यह बहुत बड़ा ऋण है। हिन्दी के मौलिक उपन्यासों की अपेक्षा अनूदित उपन्यासों का स्तर अधिक ऊँचा है।

### निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द-पूर्व के पैंतीस वर्षों (सन् १८८२ से १९१८ ई.) में उपन्यासों का पर्याप्त मात्रा में सृजन हुआ। अपने शैशवकाल में हिन्दी उपन्यास अधिकांशतः अद्भुत, अलौकिक एवं हल्के मनोरंजन की घटनाओं में विमग्न होकर उलझा रहा। इसके बावजूद उसमें जीवन-जगत की जानकारी की तीव्र अभिलाषा भी दृष्टिगत होती है। तत्कालीन सामाजिक उपन्यास समाजोन्मुख तो हैं परन्तु उनमें

जीवन की वास्तविकताओं और सजीव चरित्रों का अभाव है। यह कहा जा सकता है कि सामाजिक पक्ष की ओर स्पष्ट आग्रह होते हुए भी युग रुचि की सीमाओं के कारण तथा उच्च स्तरीय प्रतिभा के अभाव में उस युग का उपन्यास साहित्य घटना-बहुल ही रहा। इन उपन्यासों का साहित्यिक मूल्यांकन उचित नहीं है। इस काल के उपन्यासों का समुचित मूल्यांकन तभी होगा जब हम उदार-दृष्टि से तत्कालीन परिस्थितियों तथा पाठक रुचियों के आधार पर उपन्यासों का विवेचन करेंगे। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में उस युग की देन अविस्मरणीय है। उपन्यासों के प्रति जनता की जितनी रुचि उस युग में रही उतनी फिर कभी परिलक्षित नहीं होती। डॉ. कैलाश प्रकाश के शब्दों में — “भाषा का प्रचार, जनरुचि का परिष्कार, मौलिक रचना का सूत्रपात, जनजीवन का प्रतिबिम्ब तथा उत्तरकालीन उपन्यास की परंपरा के रूप में प्रेमचंद-पूर्व उपन्यास साहित्य महत्त्वपूर्ण है।”<sup>१३</sup> इस काल के उपन्यास-साहित्य ने भावी युग के लिए एक ठोस आधार भूमि तैयार की जिससे आनेवाले युग के उपन्यास जीवन के प्रति अपने दायित्व की चेतना से युक्त हो पूर्णतः जीवन्त बन सकें। डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के अनुसार — “परिसीमाओं के होते हुए भी ये उपन्यास जनमानस की उस स्वाभाविक अतः अनिवार्य वृत्ति का पोषण करते हैं जो आज हल्की, असामाजिक, हेय, आदिम एवं निरक्षरता का प्रतीक कही जाती है, फिर भी समाज में इस भौति व्याप्त है जैसे अग्नि में उष्णता और चन्दन में शीतलता। अतः ये उपन्यास कभी पुराने नहीं पड़ सकते चाहे समाज के मानदण्ड कितने ही चोले बदलें।”<sup>१४</sup>

अपनी इन कमियों के कारण प्रेमचंद-पूर्व हिन्दी उपन्यास मुख्यतः ऐतिहासिक महत्त्व के ही हैं। वे हिन्दी-साहित्य के इतिहास की पहली कड़ी तो हैं ही तत्कालीन जनता के जीवन का दस्तावेज भी हैं। हिन्दी उपन्यास की परंपरा के विकास की सम्यक् जानकारी हेतु इस काल के उपन्यासों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

## प्रेमचन्द युग :

प्रेमचन्द - पूर्व युग के उपन्यासों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि उस समय का उपन्यास-साहित्य साहित्यिक दृष्टि से कोई ठोस या महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रस्तुत नहीं करता। इसका कारण उसका तिलिस्म, जासूस, नीति और उपदेशकथाओं में उलझे रहना तथा जन सामान्य से कटे रहना है। हिन्दी उपन्यास को एक समर्थ विधा के रूप में स्थापित करने का ऐतिहासिक कार्य मुंशी प्रेमचन्द ने किया। उन्होंने अपने पूर्व के उपन्यासों और उपन्यासकारों से विरासत में प्राप्त परम्परा को सम्पन्न, समृद्ध एवं प्रौढ़ रूप देकर उपन्यासों के लिए नई भूमि का निर्माण किया। मुंशी जी ने हिन्दी उपन्यास को यथार्थ के धरातल से जोड़ा एवं पाठक को सजग और सामाजिक बोधवाले पाठक वर्ग के रूप में तैयार किया। उपन्यास तथा उपन्यास-पाठक दोनों के स्तर पर जिस बदलाव



की आवश्यकता थी, उसे प्रेमचंद ने पूरा किया। इस दृष्टि से वे सही अर्थों में युग-प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने इस युग का वर्णन करते हुए लिखा है - "उपन्यासों के निर्माण और अनुवाद के आरंभिक युग को पार करते ही हम हिन्दी उपन्यासों के उस नये युग में प्रवेश करते हैं जिसका शिलान्यास प्रेमचन्द जी ने किया और जिसमें आकर हिन्दी उपन्यास एक सुनिश्चित कला-स्वरूप को प्राप्त करके अपनी आत्मा को पहचान सका तथा अपने उद्देश्य से परिचित होकर उसकी पूर्ति में लग सका।"<sup>१५</sup> अपने शैशव काल की तिलिस्मी-जासूसी दुनिया से निकलकर हिन्दी उपन्यास अपने यौवन में सामाजिक यथार्थ के विविध, विशद और मार्मिक चित्रण द्वारा नई दिशा प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हुआ। इस प्रकार देवकी नंदन खत्री द्वारा प्रतिष्ठित प्राचीन कथा-शैली में प्राण-प्रतिष्ठा करने का दायित्व मुंशी प्रेमचन्द ने पूरा किया।

प्रेमचन्द का पहला प्रतिष्ठित हिन्दी उपन्यास 'सेवा-सदन' था जो १९१८ में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास से प्रेमचंद की उदात्त, व्यापक, स्पष्ट तथा संवेदनशील दृष्टि का पता चला। इसमें मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना का मार्मिक और यथार्थ चित्र है। इस उपन्यास में समाजवाद का आदर्श तथा सुधारवादी मानवीयता परिलक्षित हुई। प्रेमचन्द के काल का अध्ययन करने से विदित होता है कि यह वह समय था जब पश्चिमी देश उन्नतिशील थे तथा विभिन्न क्षेत्रीय क्रांतियों ने हमें कुछ कर गुजरने की बलवती प्रेरणा दी थी। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक तथा राष्ट्रीय संगठनों के उदय से भारतीय जनता को नई शक्ति मिल रही थी। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी जैसे संगठनों तथा राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, एनी बेसेन्ट, लोक मान्य तिलक, महात्मा गाँधी आदि नेताओं ने भारत की जनता में स्वाभिमान की भावना भरी और हीनता का उन्मूलन किया। जनता में अंग्रेजी शासन, शिक्षा एवं सभ्यता की दासता का हीनत्व-बोध तिरोहित हुआ और आत्मविश्वास का उदय हुआ। सामाजिक कुरीतियों पर खुलकर आक्रमण आरंभ होने लगा तथा जन-आक्रोश नगरों में कट्टर राष्ट्रवाद और गाँवों में जमींदार-किसान संघर्ष के रूप में व्यक्त होने लगा। रूस की क्रांति तथा मार्क्स और फ्रायड की आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थापनाओं से भारतीय साहित्यकार प्रभावित हुए। देश और समाज की विविध समस्याओं से हमारा साहित्य अछूता न रह सका। सामाजिक कुप्रथाएँ, वर्गवाद, जमींदारी, छुआछूत आदि ने साहित्यकारों को जागृत किया। प्रेमचन्द के संवेदनशील हृदय ने इन परिस्थितियों को पहचाना और सच्चे कलाकार की भाँति समग्र भारतीय जीवन का यथार्थ चित्रित किया।

इस युग की कालावधि प्रेमचन्द के 'सेवा सदन' (१९१८) से 'गोदान' (१९३६) तक मानी जा सकती है। इस अवधि के उपन्यासों में विषय की दृष्टि से निम्नलिखित



प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं :-

१. यथार्थपरक सामाजिकता
२. राष्ट्रीयता
३. मनोवैज्ञानिकता
४. ऐतिहासिकता
५. समष्टिहित
६. सामान्य मनुष्यों का नायकत्व

### यथार्थपरक सामाजिकता :

प्रेमचंद पूर्व युग के हिन्दी उपन्यासों में कल्पना और रोमांस के साथ एक आदर्श भी परिलक्षित होता है। हिन्दी के प्रथम उपन्यास 'परीक्षागुरु' में एक पथ-भ्रष्ट युवक के सुधार की आदर्शात्मक कथा प्रस्तुत की गई थी। परन्तु "इस सुधारवाद में कला का योग नहीं था और आदर्शवादी पट इतना मोटा था कि अपारदर्शक बन गया था। प्रेमचंद के युग में इस सुधारवादी दृष्टिकोण को सूक्ष्म और कलात्मक बना लिया गया और उसमें कोरा आदर्शवाद नहीं रह गया। इस आदर्शवाद को एक ओर बुद्धिवाद से पुष्ट किया गया और दूसरी ओर उसे यथार्थोन्मुख बनाया गया।" प्रेमचन्द ने अपने इस दृष्टिकोण को 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' का नाम दिया। अपने उपन्यासों में प्रेमचंद ने आदर्श और यथार्थ के संबंध का बखूबी निर्वाह किया। प्रेमचंद-युग के उपन्यासों के अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन हिन्दी उपन्यासकारों की समाज के प्रति गहरी चिन्ता थी। वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, दहेज, वेश्यागमन, हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य तथा अन्य नारी समस्याएँ उपन्यास का विषय बनीं। इन समस्याओं के समाधान की दिशा का सम्यक् निर्देश भी उपन्यासकारों ने उपन्यासों में संकेतित किया।

वेश्या जीवन को आधार बनाकर प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवा सदन' के अतिरिक्त जो अन्य उपन्यास लिखे गए, उनमें प्रमुख हैं — 'वेश्या पुत्र' (ऋषभ चरण जैन, १९२९ई.); 'पाप और पुण्य' (प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त', १९३९); 'पतिता की साधना' (भगवती प्रसाद वाजपेयी, १९३९); 'अप्सरा' (निराला, १९३१) आदि। इस समस्या के साथ अन्य पारिवारिक स्थितियों का विवेचन करने वाला विश्वम्भर नाथ कौशिक का 'माँ' (१९२९ई.) उपन्यास भी महत्त्वपूर्ण है।

बेमेल विवाह से संबंधित उपन्यासों में निर्मला (प्रेमचन्द, १९२३); क्षमा (श्री नाथ सिंह, १९२५); मीठी चुटकी (भगवती प्रसाद वाजपेयी, १९२७); अनाथ पत्नी (भगवती प्रसाद वाजपेयी, १९२८); तलाक (प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त', १९३२) आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (१९२२), 'रंगभूमि' (१९२४) और 'कायाकल्प' (१९२८) उपन्यासों में हिन्दू-मुस्लिम समस्या की ओर संकेत किया गया है। प्रेमचंद का यह वैशिष्ट्य है कि समाज के हर वर्ग के लोग उनके उपन्यास में जीवन्त पात्र के रूप में उपस्थित हैं। जमींदार-किसान, शोषक-महाजन, शोषित-श्रमिक, पण्डे-पुरोहित के साथ-साथ भूमिहीन खेतिहर और भिखारी वर्ग का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्राप्त होता

हे। ग्रामीण जीवन को चित्रित करने वाले प्रमुख उपन्यास हैं —मन्नन द्विवेदी कृत 'रामलाल' (१९२१); शिवपूजन सहाय कृत 'देहाती दुनिया' (१९२६); प्रसाद कृत 'तितली' (१९३४); प्रेमचन्द कृत 'गोदान' (१९३६)। जयशंकर प्रसाद कृत 'कंकाल' में समाज से बहिर्भूत कंजर-गूजर आदि का चित्रण है। धार्मिक दंभ और आचार की पोल का पर्दाफाश करने वाले अंश जिन उपन्यासों में चित्रित हैं उनमें प्रेमचन्द कृत 'कर्मभूमि' (१९३२) तथा जयशंकर प्रसाद कृत 'कंकाल' (१९२९) प्रमुख हैं।

इस युग के उपन्यासों में नारी-जीवन की विषमताओं तथा उसके त्यागमय जीवन की गाथा का विशद वर्णन हुआ है। विधवा समस्या पर प्रमुख कृतियाँ हैं— प्रेमचंद कृत 'प्रतिज्ञा' (१९२८); चंद्रशेखर शास्त्री कृत 'विधवा के पत्र' (१९३३); चतुरसेन शास्त्री कृत 'अमर अभिलाषा' (१९३३); 'आत्मदाह' (१९३६) तथा 'नील माटी' (१९४०) आदि। इसके अतिरिक्त वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह आदि समस्याएँ भी उपन्यासों में चित्रित हैं। प्रेमचंद पूर्व युग में श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्ण दास द्वारा उठाई गई इन समस्याओं को प्रेमचंद ने विस्तृत और गंभीर चिन्तन प्रदान कर वस्तुनिष्ठ एवं व्यापक दृष्टि प्रदान की।

### राष्ट्रीयता :

प्रेमचन्द युग का काल खंड स्वाधीनता हेतु किए जा रहे प्रयासों का प्रमुख काल है। इस अवधि की प्रमुख घटनायें हैं —सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना, १९१९ में जलियाँवाला बाग का नृशंस हत्याकाण्ड, १९२०-२१ में गाँधी जी का आंदोलन और उसकी असफलता, १९२७ में सायमन कमीशन का बहिष्कार, १९३०-३२ का सविनय अवज्ञा आंदोलन, १९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों की स्थापना तथा स्वाधीनता संघर्ष हेतु क्रांतिकारियों के आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका। इन परिस्थितियों ने भारतवासियों के मन में स्वाधीनता की भावनायें भरी तथा राष्ट्रीयता का प्रखर-रूप निखार पाने लगा। इसका प्रभाव तत्कालीन उपन्यासों पर भी पड़ा। प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' में सामाजिक समस्याओं के साथ राष्ट्रीय समस्यायें भी चित्रित हुईं। गाँधीवादी जीवन-दर्शन का प्रभाव भी इन दोनों उपन्यासों में मिलता है। 'कर्मभूमि' में भी राजनीतिक चित्र तथा राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। इस काल के उपन्यासकारों में प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती चरण वर्मा तथा विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' के उपन्यासों में राष्ट्रीयता के तत्त्व प्राप्त होते हैं।

### मनोवैज्ञानिकता :

प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता। इस काल के पात्रों की व्याख्या करके यह पता लगाया जा सकता है कि मानव-मन पर



विभिन्न घटनाओं की क्या प्रतिक्रिया होती है। यथार्थवादी शैली द्वारा सामान्य मनोवैज्ञानिक चरित्रों की सृष्टि हुई। इस कारण निश्चित रूप से उपन्यासों में सौंदर्य, गांभीर्य, विस्तार तथा शक्ति का संचार हुआ है। यह मनोवैज्ञानिकता दो रूपों में लक्षित हुई - बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी प्रवृत्ति।

बहिर्मुखी प्रवृत्ति के अंतर्गत उठने वाले मनोविकारों का संबंध अधिकतर चेतना के ऊपरी स्तर से होता है और इसमें प्रधानता बाह्य द्वन्द्व की होती है। इस प्रकार के चित्रण वाले उपन्यासकारों में प्रमुख हैं - प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरेसन शास्त्री, कौशिक, उग्र, ऋषभ चरण जैन आदि।

अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के उपन्यासों में व्यक्ति जीवन को लक्ष्य बनाकर व्यक्ति के मानसिक संघर्ष तथा उसकी परिस्थितिजन्य समस्याओं के चित्रण को प्रधानता दी जाती है। यह प्रवृत्ति प्रेमचंदोत्तर युग में अधिक विकसित हुई। आलोच्य युग में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का सूत्रपात अवश्य दिखाई देता है। इस प्रवृत्ति के अंतर्गत अंतर्द्वन्द्व की प्रधानता होती है। प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में प्रसाद और जैनेन्द्र में यह प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

### ऐतिहासिक :

ऐतिहासिक उपन्यासों का अपना विशेष महत्त्व और लक्ष्य होता है। किसी युग विशेष की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति, रहन-सहन, आचार-विचार, आदि का सजीव चित्र ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राप्त होता है। इसके लेखन में प्रेमचंद युग के जो उपन्यासकार प्रवृत्त थे, उनमें प्रमुख हैं — गोविन्द बल्लभ पंत (सूर्यास्त, १९२२) भगवती चरण वर्मा (पतन, १९२७), ऋषभचरण जैन (गदर, १९३०) कृष्णानन्द (केन, १९३०) आदि। प्रसाद का अपूर्ण-उपन्यास इरावती (१९३७) भी इस युग के ऐतिहासिक उपन्यासों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन उपन्यासों में ऐतिहासिक असंगति यत्र-तत्र मिलती है परन्तु हिन्दी में उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात करनेवाले वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा इसी युग में कई श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना हुई। उनका उपन्यास गढ़ कुंडार (१९३०), विराटा की पद्मिनी (१९३६) तो प्रेमचंद युग में प्रकाशित हुआ परन्तु उसके बाद भी 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' (१९४६), कचनार (१९४६) तथा 'मृगनयनी' (१९५०) आदि ख्याति प्राप्त उपन्यासों की रचना वृन्दावन लाल वर्मा ने की। इस प्रकार उनका लेखन प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग दोनों में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली कल्पित कथा में पाप-पुण्य की समस्या को सुलझाने का प्रयास १९३४ में रचित 'चित्रलेखा' उपन्यास में भगवती चरण वर्मा ने किया।

### समष्टिहित :

प्रेमचंद का कथा साहित्य समष्टि हित तथा जनजीवन को समर्पित है। वे सच्चे



अर्थों में जनवादी साहित्यकार थे। इस संबंध में डॉ. गणेशन का अभिमत बिल्कुल ठीक है— “जनता को समझने वाले, जनता के प्रति वास्तविक सहानुभूति रखनेवाले, जन-जीवन को अपना जीवन समझने वाले, जनहित के लिए आत्माहुति देने वाले भारत के राजनीतिक क्षेत्र में एक गांधी जी हुए और हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक प्रेमचन्द”।<sup>१०</sup> वास्तव में प्रेमचन्द के हृदय में विराट मानवता के लिए जो दर्द था, वही उनके साहित्य में अभिव्यंजित हुआ है। उनकी यह दृष्टि कई परवर्ती उपन्यासकारों में भी पाई जाती है। कल्पना के क्षेत्र को त्यागकर यथार्थ की भावभूमि पर इन पात्रों की पीड़ा को प्रेमचन्द ने समझा है इसीलिए इनके पात्र बड़े सजीव बन पड़े हैं। उनके उपन्यासों में गाँधीवाद के व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक धरातल को आधार बनाकर मानववादी उदार दृष्टि प्रकाशित हुई।

### सामान्य मनुष्यों का नायकत्व :

प्रेमचन्द के हृदय में मानवता के प्रति जो ममत्व था उसी कारण वे जन-मानस की दुर्बलताओं को सहानुभूति एवं संवेदना के साथ देख सकते थे। उनकी इसी संवेदना ने दलित-पतित-शोषित-तिरस्कृत पात्रों को उपन्यास का नायक-उपनायक बनाकर उनकी कठिनाइयों का समाधान करने का प्रयास किया। इस दृष्टि से प्रेमचंद के साहित्य को आर्तमानवता का साहित्य कह सकते हैं। दलितों, शोषितों तथा पीड़ितों की मूकता को वाणी देने का जो प्रयास विदेशों में गोकर्ण, टालस्टाय अपने उपन्यास के पात्रों में कर रहे थे वही कार्य प्रेमचन्द ने भारत में किया। शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार— “प्रेमचन्द ने समाज के उपेक्षित, नियति से प्रवंचित, अति सामान्य मानवों को चित्रण का विषय बनाकर साहित्य को एक नवीन दिशा दी।”<sup>११</sup> प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में भारत के शोषित-पीड़ित किसान, जुलाहे गरीब, चमार, दस्तकार और क्लर्क का चित्रण कलाकार की निरपेक्षता से किया है जिससे इन साधारण से लगने वाले पात्रों में भी वैशिष्ट्य आ गया है। ‘सेवां सदन’ की ‘सुमन’; ‘गबन’ की ‘जालपा’; ‘रंगभूमि’ का ‘सुरदास’; ‘गोदान’ का ‘होरी’ या ‘धनिया’ —ये सभी प्रेमचन्द की लेखनी के बल पर नायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। किसानों की समस्याओं पर जितनी आत्मीयता से प्रेमचंद की कलम चली — वैसी आत्मीयता परवर्ती उपन्यासकारों में भी नहीं देखी गई। अमृतलाल नागर ने ठीक ही लिखा है — “प्रेमचंद हमारी वह निधि हैं, जिसे लेकर हमारी कम-से-कम दो पीढ़ियाँ अब भी समृद्ध बन सकती हैं।”<sup>१२</sup>

इन विविध प्रवृत्तियों को समाहित करते हुए जो श्रेष्ठ कृतियाँ सामने आईं उनमें प्रेमचन्द के सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि और गोदान; जयशंकर प्रसाद कृत कंकाल, तितली और इरावती; शिवपूजन सहाय कृत देहाती दुनिया; चतुरसेन शास्त्री कृत हृदय की परख, व्यभिचार और अमर

अभिलाषा; विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'माँ' और भिखारिणी; पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत दिल्ली का दलाल, चन्द हसीनों के खतूत, बुधुआ की बेटी; प्रताप नारायण श्रीवास्तव कृत विदा, विकास, विसर्जन; राधिका रमण प्रसाद सिंह कृत तरंग, राम-रहीम, पुरुष और नारी; मन्नन द्विवेदी कृत रामलाल; वृन्दावन लाल वर्मा कृत गढ़ कुंडार, विराटा की पद्मिनी आदि; भगवती प्रसाद बाजपेयी कृत मीठी चुटकी, अनाथ पत्नी, त्यागमयी, प्रेम विवाह, पतिता की साधना आदि; जैनेन्द्र कृत परख, त्यागपत्र, कल्याणी, सुनीता; निराला कृत अप्सरा, अलका निरुपमा, प्रभावती; इलाचंद्र जोशी कृत घृणामयी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी उपन्यासों के बहुमुखी विकास की दृष्टि से प्रेमचंद युग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी काल में हिन्दी उपन्यास यथार्थवादी स्पर्श के साथ उच्च साहित्यिक स्तर को भी प्राप्त करने में सफल हुआ। इस उपलब्धि के पीछे प्रेमचंद की अपूर्व प्रतिभा थी। शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार —“वे धरती का संपूर्ण रस लेकर एक वटवृक्ष के समान इतनी व्यापकता-विशालता में फैले कि आगे पीछे, दाएँ-बाएँ अनेक प्रकार की वृक्षावलियों के बीच भी अपने बड़प्पन में अकेले ही रहे। वे एक सच्चे युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे जिन्होंने युगों से वियुक्त साहित्य का पुनः जीवन से योग कराया। उनके हाथों पड़कर हिन्दी उपन्यास सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम साधन बना। उनमें एक तपस्वी की साधना थी, महाकाव्यकार की व्यापक जीवनानुभूति थी, कुशल चित्तों की रूप-विधायिनी कला थी। उन्होंने जीवन को अत्यधिक निकट से जाना था और स्वयं संघर्षों के बीच से गुजरकर, परिस्थितियों के थपेड़े खाकर, समाज के विष को पचाकर, साहित्य में शिव की प्रतिष्ठा की थी। हिन्दी उपन्यास को साहित्यिक गरिमा, सप्राणता एवं विश्वसनीयता प्रदान करने वाले वे प्रथम लेखक थे।”<sup>100</sup> यही कारण था कि प्रेमचंद युग के उपन्यासों में व्यापकता एवं प्रौढ़ता आई तथा नई संभावनाएँ भी विकसित हुईं। परवर्ती उपन्यासकारों ने इसी पृष्ठभूमि में उपन्यास की धारा को अनेक दिशाएँ प्रदान कीं।

## प्रेमचन्दोत्तर युग :

हिन्दी उपन्यासों के विकास के इस तीसरे उत्थान में उपन्यास विधा और विकसित और समृद्ध हुई। अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ इस धारा में समादृत और समन्वित हुईं। प्रेमचन्द युग में जो समस्याएँ समाज केन्द्रित थीं वे अब व्यक्ति केन्द्रित भी हुईं। इस काल में प्रेमचन्द की परंपरा में समाज केन्द्रित उपन्यासों के साथ-साथ व्यक्तिगत या सूक्ष्म समस्याओं के समाधान एवं विश्लेषण हेतु भी उपन्यास रचे गए। इस हेतु उपन्यासकारों ने मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण की सहायता ली। इस प्रकार हिन्दी



उपन्यास समाज के साथ-साथ व्यक्ति और उसके अवचेतन मन के कार्यकलापों का विश्लेषण भी करने लगे। पश्चिमी प्रभाव से उपन्यास का फलक विस्तृत हुआ, शिल्प की नवीनता परिलक्षित हुई तथा यथार्थवाद की सहायता से विषय का विस्तार हुआ। भाषा-शैली, वर्ण्य-विषय, कथा-शिल्प, चरित्रांकन, जीवनानुभूति आदि की दृष्टि से अभूतपूर्व विविधता, विचित्रता तथा अनेकरूपता परिलक्षित हुई। डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव का कथन इस संदर्भ में बिल्कुल उचित प्रतीत होता है — “इस काल के उपन्यासों को देखकर अनायास यह धारणा होती है कि प्रत्येक कृतिकार इस भावना से प्रेरित है कि उस जैसा वही हो, उसकी कृति अपने ढंग की बंजोड़ हो। मौलिकता के इस आग्रह का परिणाम यह हुआ कि उपन्यास क्षेत्र में बहुपक्षीय प्रयोग हुए और हमारे साहित्य का यह रूप अधिक समृद्ध, अधिक प्राणवान हुआ और उसमें नूतन संभावनाओं के संकेत मिले।”<sup>१५</sup>

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों को यथार्थ के स्पर्श से जो सजीवता एवं विशिष्टता प्रदान की उसके आलोक में परवर्ती उपन्यासकार अपनी विविध दृष्टियों से हिन्दी उपन्यास की धारा को नई गति, नया उन्मेष प्रदान करने में प्रवृत्त हुए। प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में कई प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। यथार्थ विविध आयामों के साथ इस काल में उपस्थित हुआ। नवीन सामाजिक मूल्यों वाले उपन्यासों का सुजन तथा मनोविज्ञान का चित्रण आरम्भ हुआ। ऐतिहासिक उपन्यासों का विकासमान रूप परिलक्षित हुआ। लघु उपन्यासों के साथ-साथ आंचलिक स्पर्श वाले उपन्यास भी हिन्दी साहित्य में दिखाई पड़े। उपन्यास की इन विशेषताओं को इन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

१. विविधायामी यथार्थता
२. मनोवैज्ञानिकता
३. ऐतिहासिकता
४. आंचलिकता
५. समाज सचेतनता

### विविधायामी यथार्थता :

प्रेमचन्द की शैली मुख्यतः बाह्य यथार्थ को आदर्शोन्मुख रूप में चित्रित करने की थी परन्तु प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की शैली पर अपने विशिष्ट कौशल तथा साधन के साथ यथार्थवाद का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ता ही गया। भाषा, शिल्प, कथानक, कथोपकथन, शैली, चरित्र-चित्रण सभी पर यथार्थ का स्वरूप दिखाई पड़ने लगा। यथार्थ की उपस्थिति उपन्यास में आवश्यक भी है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार — “कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है।”<sup>१६</sup> परन्तु यथार्थ की अतिशयता भी उचित नहीं है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में यथार्थ के आतंक को देखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को कहना पड़ा था — “हिन्दी उपन्यासों पर यथार्थवाद का आतंक बढ़ता जा रहा है। यथार्थवाद में कौशल और साधन का आधिक्य अखरने लगा है।”<sup>१७</sup> यद्यपि

आचार्य द्विवेदी का यह मत विवेचना की अपेक्षा रखता है परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यथार्थ के जिस मर्यादित रूप को हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में देखते हैं, "प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में इसकी विकृत प्रवृत्तियाँ भी बड़े सशक्त रूप से दृढ़ता एवं संकल्प के साथ प्रतिष्ठित हुई।"<sup>५५</sup> लेखकीय सम्प्रति के आगे पात्र अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति खो बैठे और इस कारण कथानक का हास, वैयक्तिक मर्यादा का उल्लंघन, अस्वाभाविक सत्वों का प्रतिपादन, आवश्यक-अनावश्यक रूप से सिद्धांतों का आरोपण, अरुचिपूर्ण प्रवृत्तियों एवं असंस्कारी, अवैज्ञानिक तथ्य अधिक उतर आए। इस कारण कहीं आरोपित तो कहीं अपरिपक्व यथार्थ के चित्र भी परिलक्षित होते हैं।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उस काल में यथार्थपरक श्रेष्ठ उपन्यासों का सर्वथा अभाव है। ऊपर वर्णित कुछ कमियों के बावजूद इस काल में ऐसे उपन्यास भी लिखे गए जो सामाजिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक विश्लेषणवाद और वैयक्तिक अनुभूति के स्वस्थ पक्षों को लेकर नए कथा-प्रयोगों की परम्परा स्थापित कर रहे थे। आधुनिक उपन्यास के शिल्प-विधान और कथानक की नई मान्यताओं के साथ वे स्तर भी परिलक्षित हुए जो परंपरागत उपन्यासों की सार्थकता और उनमें व्यक्त शैलियों को स्वीकार करते हुए नवीन पथ तथा नई दिशा की ओर संकेत करते हैं।

'चाँदनी के खंडहर' उपन्यास में गिरधर गोपाल से मध्यवर्गीय जीवन की टूटती आस्था का परिचय प्राप्त होता है। राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' (प्रेत बोलते हैं) में भी परम्पराएँ अपनी विकृत अवस्था में चित्रित हैं। इसमें मध्यवर्गीय कुंठा, संत्रास, घुटन तथा आर्थिक अभाव का सजीव चित्रण है। शिल्पगत नवीनता प्रभाकर माचवे के 'परन्तु' में भी परिलक्षित हुई। प्रेमचन्द की शैलीगत परम्परा का अनुगमन किन्तु नए दृष्टिकोण का प्रतिपादन डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के 'बया का घोंसला और साँप' उपन्यास में किया गया है।

प्रेमचन्द के उपरान्त उनकी किसान परंपरा को त्यागकर हिन्दी उपन्यासकारों ने जिन नवीन दिशाओं को अपनाया उनमें आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद की स्थापना हुई, मध्यवर्गीय जीवन के साथ-साथ उस वर्ग की निराशा तथा असफलता चित्रित हुई, उपन्यासों में यत्र-तत्र मार्क्सवाद तो कहीं प्रबल प्रणय संबंधों की अभिव्यक्ति हुई। जेनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, उग्र, इलाचंद्र जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा आदि इन प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं।

### मनोवैज्ञानिकता :

प्रेमचन्दोत्तर युग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मनोविज्ञान की चरम उन्नति तथा उससे प्राप्त मनोवैज्ञानिक पद्धति है। मानव का अन्तर्मन उसके बाह्य संसार से ज्यादा शक्तिशाली और जटिल है। यही अंतर्जगत बाह्य संसार को निर्देशित करता है। चरित्र



निर्माण में इस अंतर्मन की प्रमुख भूमिका होती है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने उसी को मानव चरित्र का गूढ़ रहस्य माना है - "मनुष्य की इच्छाएँ अपनी बाह्य अभिव्यक्ति न पाकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और अवचेतन जगत में स्थिर और अक्षुण्ण रहकर अनेक कुण्ठाओं, अस्पष्ट, अमूर्त चित्रों तथा व्यापारों को जन्म देती रहती हैं। वस्तुतः वही मानव-चरित्र का संपूर्ण पर गूढ़ रहस्य है।"<sup>44</sup> निश्चित रूप से मनोविश्लेषण ने हमें वह पद्धति दी जिसकी सहायता से हम मानव मन के उलझे हुये सूत्रों को सुलझाने में सफल हो सके तथा उपन्यास के शिल्प को अपूर्व और मौलिक दिशा प्राप्त हुई। डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार - ".....मानवात्मा के अन्तरतम प्रदेश के अविराम मंथन को शब्दबद्ध करने का अभूतपूर्व प्रयास दिखाई पड़ा। आज की विकसित उपन्यास-कला में मनुष्य के वचन एवं कर्म पूर्णरूपेण मन के अधीन हो गये हैं।"<sup>45</sup>

परन्तु समाज के माध्यम से व्यक्ति को समझने की अपेक्षा समस्त चेतना सूत्रों के व्यक्ति में प्रतिष्ठित होने से कई विकृतियाँ भी आईं। यौन विकृतियों से संपूर्ण कथा-साहित्य भर गया। इसका कारण फ्रायड, एडलर, जुंग आदि के विचारों का प्रभाव भी था। इन विकृतियों के बावजूद प्रेमचंद की परंपरा के विकसित रूप में इस युग की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति को स्वीकार किया जा सकता है।

जैनेन्द्र के 'सुनीता' के बाद के उपन्यासों में इसी चिन्तन की प्रधानता रही और उनका गांधीवाद मनोविज्ञान से आर्तकित प्रतीत हुआ। जैनेन्द्र का मनोविज्ञान गोपनीयता पसंद करता है जहाँ पुरुष और नारी समाज की नजरों से दूर निर्बंध होकर कुछ भी कर सकते हैं। प्रेमचन्द के पात्रों के आंतरिक संघर्ष का चित्रण सामाजिक पृष्ठभूमि में ही दिखाई पड़ता है। इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी' के अतिरिक्त 'घृणामयी', 'प्रेत और छाया', 'पदों की रानी' तथा 'निर्वासित' में मनोविज्ञान को प्रयत्नपूर्वक उतारने का प्रयास परिलक्षित होता है। उनके पात्रों में अहं, सेक्स, कुंठा, हीनता की ग्रंथि, निराशा देखी जा सकती है। अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' के माध्यम से मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण को नया आयाम प्रदान किया। इस उपन्यास में पूर्वदीप्ति पद्धति (Flash back) का उपयोग किया गया है। डॉ. नगेन्द्र की धारणा है कि अज्ञेय जैसे एक मान्य कलाकार द्वारा हिन्दी उपन्यासों में फ्रायड कुछ व्यवस्थित ढंग से आए हैं।<sup>46</sup> अज्ञेय के अगले उपन्यास 'नदी के द्वीप' में शेखर की प्रगति भुवन के रूप में मिलती है। 'शेखर' ने जहाँ से सूत्र छोड़ा है 'भुवन' वहाँ से प्रारंभ करता है।.....भुवन मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का पुतला है।<sup>47</sup>

यशपाल के उपन्यास मार्क्स और फ्रायड दोनों के सिद्धांतों से प्रभावित हैं अतः उनकी कृतियों में आर्थिक तथा यौन कुंठाएँ अपने विकृत रूप में दिखाई पड़ती हैं। 'अश्क' का मनोविश्लेषण सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि से अंकुरित है। इस काल के अनेक उपन्यास-लेखकों में मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है।

स्पष्टतः युग की व्यापक चेतना, मानव-मन की असंख्य तृप्त-अतृप्त आकांक्षाएँ और समाज की उलझी-सुलझी अनेक गुत्थियाँ मनोविज्ञान के साहचर्य से हिन्दी उपन्यासों में नवीन शिल्प के साथ प्रकट हुईं। यह मनोविज्ञान अपने पूर्व के मनोविज्ञान से पूर्णतः भिन्न तथा बहुआयामी सिद्ध हुआ जिसने हिन्दी उपन्यास की दिशा और दशा में गुणात्मक वृद्धि की।

### ऐतिहासिकता :

ऐतिहासिक उपन्यास हमारे राष्ट्र-प्रेम, जातीय गौरव को बढ़ाते हैं तथा अतीत के गौरव से वर्तमान की दुर्बलता दूर करने की शक्ति देते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से साहित्यकार इतिहास के सहारे वर्तमान समस्याओं का हल प्रस्तुत करता है।

इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वृन्दावन लाल वर्मा की विशेष ख्याति है। उनके 'गढ़कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' उपन्यास प्रेमचंद युग में रचित थे परन्तु वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों का उन्मेष प्रेमचंदोत्तर काल में ही होता है। इस अवधि में उनके कई ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाश में आए - 'झाँसी की रानी' (१९४६); 'कचनार' (१९४७); 'मृगनयनी' (१९५०), 'टूटे काँटे' (१९५४); 'अहिल्याबाई' (१९५५) तथा 'माधवजी सिंधिया' (१९५७)।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास 'वेशाली की नगरवधू' (१९४९); 'सोमनाथ' (१९५५); 'बयं रक्षामः' (१९५५); 'सोना और खून' (१९५८) अपनी शैलीगत विशिष्टता, कथानक तथा उद्देश्य की नवीनता के कारण इस काल की अविस्मरणीय कृतियाँ हैं।

'दिव्या' (१९४५) के माध्यम से यशपाल ने हिन्दी में एक नवीन प्रयोग किया। दिव्या के 'प्राक्कथन' में उन्होंने लिखा है - "दिव्या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है।"<sup>५९</sup> बौद्धकालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस उपन्यास में किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से यशपाल ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इतिहास पूजा और अंधविश्वास की वस्तु नहीं, विश्लेषण की वस्तु है। वे इतिहास को अपनी परंपरा का आत्म-विश्लेषण मानते थे। इस उपन्यास में मार्क्सवादी ऐतिहासिक व्याख्या को समाहित करने का प्रयास किया गया है। यशपाल का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास अमिता (१९५६) सम्राट अशोक की ऐतिहासिक कलिंग विजय की घटना पर आधारित है।

राहुल सांकृत्यायन कृत 'सिंह सेनापति' (१९४४); 'मधुर स्वप्न' (१९५०); 'विस्मृत यात्री' (१९५४) तथा 'जय योधेय' (१९५६) प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत 'वाणभट्ट की आत्मकथा' (१९४६), 'चारु चंद्र लेख'



(१९६३); 'पुनर्नवा' (१९७३); तथा रांगेय राघव कृत 'मुदों का टीला' (१९४८); 'देवकी का बेटा' (१९५४); 'प्रतिदान' (१९५७) आदि बहुप्रशंसित ऐतिहासिक उपन्यास हैं। गोविन्द वल्लभ पंत तथा राम रतन भटनागर के ऐतिहासिक उपन्यास भी इस काल में प्रतिष्ठित हुए।

### आंचलिकता :

प्रेमचंद के उपरांत उपन्यास साहित्य में नए-नए प्रयोग किए गए। ये प्रयोग भाषा-शैली तथा वर्ण्य-विषय संबंधी अनेक स्तरों पर हुए। आंचलिक उपन्यासों का प्रणयन इन्हीं नवीन प्रयोगों की एक सशक्त कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यद्यपि आंचलिक उपन्यासकार अन्य उपन्यासकारों की भाँति समस्त मानव जाति एवम् भू-भाग को सम्मुख रखकर रचना नहीं करता अंचल विशेष के समग्र जीवन को रूपायित करना चाहता है। वह एक समाज-विशेष एवं निश्चित भू-भाग को आधार बनाकर ही रचना करता है, फिर भी उसका उद्देश्य अन्य उपन्यासों से अलग नहीं होता। आंचलिक उपन्यासकार जाति, समाज, गाँव, शहर अथवा एक व्यवसाय के लोगों को अपने उपन्यास का विषय बनाकर उनके रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, रुचि-संस्कार का वर्णन करता है। वास्तव में ऐसे उपन्यास सीमित परिधि के प्रतीत होते हुए भी विस्तृत फलक वाले होते हैं क्योंकि ये (गाँव, देश, नगर, जाति) हमारे विशाल राष्ट्र की एक लघु इकाई हैं। यही कारण है कि आंचलिक उपन्यासों के विषय और पात्र आंचलिक होते हुए भी संपूर्ण देशीय प्रतीत होते हैं।

इस काल के आंचलिक उपन्यास वातावरण केन्द्रित अवश्य हैं परन्तु "समाज के विविध पहलुओं का विशद एवं सर्वांगीण चित्रण करते हुए अत्यंत विस्तृत पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं, जो पात्रों की संख्या, वातावरण की विस्तृति, कथानक के गठन आदि बातों में किसी तरह की सीमा के अंदर नहीं समाते।" "मैला आंचल, परती परिकथा, बया का घोंसला और साँप, ब्रह्मपुत्र, होलदार जैसे उपन्यास इस कथन को प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार के उपन्यासों के समर्थ उपन्यासकार के रूप में नागार्जुन का नाम लिया जा सकता है। मिथिला की धरती का सुख-दुख, लेखक की सजग यथार्थ दृष्टि तथा गहरी संवेदना के साथ नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित हुआ है। बलघनमा (१९५२) तथा बाबा बटेसरनाथ (१९५४) उनकी ख्यातिलब्ध आंचलिक कृतियाँ हैं।

आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में फणीश्वर नाथ रेणु का योगदान अप्रतिम है। सजीव एवं पुष्ट दृष्टिकोण के साथ पूर्णिया अंचल के लोकजीवन तथा परिवेश को प्रस्तुत करने वाले दो उपन्यास 'मैला आंचल' (१९५४) और 'परती परिकथा' (१९५७) हिन्दी के आंचलिक उपन्यास-क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

अन्य प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' की 'बहती गंगा'

(१९५२); उदय शंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५५); राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (१९६६); भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'गंगा मैया' (१९५३) की गणना की जाती है।

इस प्रकार प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में आंचलिक संगति के साथ जो नवीन प्रयोग हुए वे अपनी स्थानीय रंगत तथा क्षेत्रीय भाषा के संस्पर्श के कारण भले ही उपन्यास से अलग प्रतीत हों परन्तु उनका अंतर डॉ. सत्यपाल चुध के शब्दों में इस रूप में स्पष्ट किया जा सकता है — "वहाँ बूँद सागर में खोई हुई है, यहाँ बूँद सागर की विशेषताएँ लिए हुए भी अपने पार्थक्य की पहचान कराती है। वहाँ वातावरण संपूर्ण (भारतीय) ही है, यहाँ स्थानिकता के आकर्षण को स्थिर रखते हुए उसी से संपूर्णता की व्यंजना की जाती है।"<sup>५१</sup>

### समाज सचेतनता :

प्रेमचंदोत्तर भारतीय समाज समाजवादी विचारधारा से प्रभावित था। प्रगतिशील लेखक संघ की १९३६ में स्थापना तथा उसके उपरान्त कम्युनिस्ट पार्टी एवं मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव में उत्तरोत्तर वृद्धि से साहित्य का प्रभावित होना स्वाभाविक था। यशपाल, नागार्जुन, रांगेयराधव आदि लेखकों ने इस काल में अपनी रचनाओं में मार्क्स के समाजवादी सिद्धांतों का खुलकर प्रयोग किया। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व के यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड' में मार्क्सवादी दर्शन तथा पारम्परिक आर्थिक, सामाजिक, भावात्मक मूल्यों और नैतिकता के प्रति विद्रोह का भाव परिलक्षित होता है। उनकी सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता को देखकर आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी को लिखना पड़ा था — "सिद्धांत के गमले में रखे, चौबीस घंटे सिद्धांत की छाया में पले, ये पौधे कहाँ तक बढ़ पायेंगे? यशपाल जी इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि उनकी शक्तियों का कहाँ अच्छा उपयोग मतवाद के घेरे से बाहर निकल जाने पर ही हो सकेगा।"<sup>५२</sup> मार्क्स के सिद्धान्तों के प्रचार हेतु हिन्दी में जो उपन्यास लिखे गए उनके लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राधव, नागार्जुन तथा भैरव प्रसाद गुप्त प्रमुख हैं।

यशपाल के उपन्यासों के अतिरिक्त रांगेय राधव के 'घरोंदे', 'विषाद मठ' तथा 'हुजूर'; नागार्जुन के 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' तथा 'रतिनाथ की चाची' एवम् भैरव प्रसाद गुप्त के 'मशाल' उपन्यास को मार्क्सवादी सिद्धांतों के बोझ से लदा उपन्यास मान सकते हैं। यद्यपि सिद्धांतों के चक्कर में इनकी स्वाभाविकता को क्षति अवश्य पहुँची है परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये उपन्यास अपनी समाजवादी तथा सामाजिक विचारधारा को पूरी शक्ति के साथ प्रस्तुत करते हैं। पिछड़े वर्ग तथा शोषितों की समस्याओं का प्रभावशाली एवं मार्मिक चित्रण उपन्यासों में प्राप्त



होता है। आर्थिक वैषम्य; पूँजीवादी एवं सामंतवादी शक्तियों के अत्याचार का जीवंत वर्णन इन उपन्यासों में किया गया है। अपनी सामाजिक प्रगतिवादी दृष्टि के कारण ये कृतियाँ भले ही प्रचारात्मक हों परन्तु समाज के वैषम्य पर प्रहार करने का उनका लक्ष्य प्रशंसनीय है।

परन्तु इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त सामाजिक चेतना संपन्न गैर-कम्युनिस्ट लेखक भी आलोच्य युग में अपनी कृतियों से उपन्यास साहित्य को समृद्ध करते रहे हैं। इनमें विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस काल के सामाजिक उपन्यासों का दृष्टिकोण सुधारवादी तथा सामाजिक न होकर कहीं व्यक्तिवादी तो कहीं प्रेमचंद की आदर्शवादिता को पुष्ट करने वाला प्रतीत होता है। 'अश्क' के उपन्यास 'गिरती दीवारें' (१९४७), 'गर्म राख' (१९५२) व्यक्तिवादी उपन्यास हैं। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के उपन्यासों में व्यक्तिवाद के साथ साथ सामाजिक बंधन और परंपरा का उल्लेख भी नजर आता है जो आदर्शवाद के अधिक निकट है। 'उल्का' (१९४७) और 'मरु प्रदीप' (१९५१) ऐसे ही उपन्यास हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी के प्रमुख उपन्यास हैं : 'निमंत्रण' (१९४७); 'गुप्तधन' (१९५०); 'सूनी राह' (१९५४); 'सपना बिक गया' (१९६१)। इनके उपन्यासों में व्यक्ति की समस्याओं का उद्घाटन कर समाज को चित्रित किया गया है। उनकी मान्यता है कि यदि व्यक्ति उन्नत होगा तो समाज स्वतः उन्नत हो जायेगा। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के 'धरती की आँखें' (१९५१) तथा 'बया का घोंसला और साँप' (१९५२) में सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन वैयक्तिक दृष्टिकोण से किया गया है।

इस काल के अन्य सामाजिक उपन्यासों में उल्लेख योग्य हैं : यशपाल कृत 'मनुष्य का रूप'; विष्णु प्रभाकर कृत 'तट के बंधन'; शांतिप्रिय द्विवेदी कृत 'दिगम्बर'; उदयशंकर भट्ट कृत 'नये मोड़'; वृन्दावन लाल वर्मा कृत 'अचल मर्रा कोई' तथा 'लगन'; अनूपलाल मंडल कृत 'निवासित'; 'समाज की वेदी पर'; शिवसागर मिश्र कृत 'नींव की मिट्टी'; राजेन्द्र यादव कृत 'सारा आकाश'; जैनेन्द्र कृत 'परख' तथा 'सुनीता'; प्रताप नारायण श्रीवास्तव कृत 'विजय'; भगवती चरण वर्मा कृत 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' तथा 'आखिरी दौंव' आदि।

इस प्रकार प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में एक तरफ साम्यवादी सिद्धांतों के प्रतिपादन की ललक से युक्त समाजवादी चिन्तन परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर समाज की विविध समस्याओं के वर्णन का प्रेमचंद की परंपरा में अनुकरण भी दिखाई पड़ता है। इस युग का कालखण्ड वर्तमान तक विस्तृत है अतः आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में, विज्ञान की प्रगति के संदर्भ में नगरीकरण की प्रक्रिया और पाश्चात्य परिवेश का व्यापक प्रभाव भी

उपन्यासों पर पड़ा है। सेक्स, कुंठा संत्रास, नगर-बोध, बदलते नैतिक मूल्य, सिमटे दायरे में परिवार की समस्यायें, नारी-मुक्ति, युवा-आक्रोश आदि को उपन्यासों का विषय बनाया जा रहा है। कुछ प्रमुख उपन्यास तथा उपन्यासकार इस प्रकार हैं — अंधेरे बंद कमरे (मोहन राकेश, १९६१), यह पथ बंधु था (नरेश मेहता, १९६२), शहर में घूमता आईना (उपेन्द्र नाथ अश्क, १९६३); वे दिन (निर्मल वर्मा, १९६४); शहर था, शहर नहीं था (राजकमल चौधरी, १९६६), एक पति के नोट्स (महेन्द्र भल्ला, १९६६); रुकोगी नहीं राधिका (उषा प्रियंवदा, १९६७); मित्रो मरजानी (कृष्णा सोबती, १९६७), न आने वाला कल (मोहन राकेश, १९६८); राग दरबारी (श्रीलाल शुक्ल, १९६८); वह अपना कटा चेहरा (गोविन्द मिश्र, १९७०); बेघर (ममता कालिया, १९७१); सफेद मेमने (मणि मधुकर, १९७१); एक चूहे की मौत (बदीउज्जमान, १९७१); सूरजमुखी अँधेरे के (कृष्णा सोबती, १९७१); लाल टीन की छत (निर्मल वर्मा, १९७३); मुरदाघर (जगदंबा प्रसाद दीक्षित, १९७४); दी (गिरिराज किशोर, १९७४)।

इस प्रकार प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि इस काल में उपन्यास की विविध दिशाओं में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। इस काल में पुराने लेखकों के साथ नए लेखक भी उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हो रहे हैं तथा अपने समय की कटु-मधुर अनुभूतियों, उलझनों, समस्याओं का अभूतपूर्व उत्साह और कुशलता से वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं। नवीन सामाजिक संदर्भ तथा जीवन-संघर्षों को स्वर मिला है। ये सब उपन्यास साहित्य के विकास के शुभ लक्षण हैं। नवीन विषयवस्तु सूक्ष्म संवेदना, नई चेतना के साथ प्रतिभावान कलाकार संस्मरणात्मक, डायरी-पद्धति वाले, नाट्य-कौशल युक्त उपन्यासों के नवीन एवं सफल प्रयोग कर रहे हैं। हिन्दी उपन्यास की इस प्रगति यात्रा में अमृतलाल नागर का अपने वैविध्य के कारण विशिष्ट स्थान है।

पैनी सामाजिक दृष्टि, यथार्थ की गहरी समझ, पीड़ितों के प्रति संवेदना, व्यापक मानवतावाद, प्रगतिवादी विचारधारा, आस्थावादिता तथा हास्य-व्यंग्य की गहरी क्षमता से युक्त नागरजी का प्रौढ़ चिंतन उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। अगले अध्यायों में नागरजी के उपन्यासों के विस्तृत विवेचन से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

### संदर्भ :

१. अमर कोश : प्रथम काण्ड - शब्दादि वर्ग (१-६-९)
२. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - ७
३. हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य-संदेश (उपन्यास अंक) अक्टूबर-नवम्बर १९४०, पृष्ठ - ४२
४. The New English dictionary

"A fictitious prose, tale or narrative of considerable length, in which characters and actions professing to represent those of real life are portrayed in a plot."



५. Encyclopaedia Britannica, Vol. 16  
 "The name given in literature to a sustained story which is not historically true, but might very easily be so."
६. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - ७
७. दि न्यू पिक्चर्ड एनसाइक्लोपीडिया. वाल्यूम - VII
८. गुलाब राय : काव्य के रूप, पृष्ठ १६७
९. क्लेरारीय : द प्रोग्रेस ऑफ रोमांस (१७७५)
१०. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ - ७१
११. Ralph Fox : Novel and the people Page - 32
१२. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न
१३. जैनेन्द्र : साहित्य का प्रेय और श्रेय, पृष्ठ - १६३
१४. डॉ. गोपाल राय : हिन्दी कथा साहित्य और पाठकों की रुचि, पृष्ठ - २०६
१५. डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन : उपन्यास - सिद्धान्त और संरचना, भूमिका से
१६. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास-शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ - ११
१७. डॉ. धर्मवीर भारती : हिन्दी उपन्यास-पहचान और परख (सं.-इन्द्रनाथ मदान), पृष्ठ - २३
१८. राल्फ फॉक्स : द नॉबेल एण्ड द पीपुल (१९३७), पृष्ठ - २०
१९. The Art of the Novel in the Creative Vision  
 (Ed.by H. M. Block & T. H. Salinger) Page-94.
२०. D. H. Lawrence : Selected Literary Criticism,  
 (Ed.by Anthony Beal)-Why the novel matters, Page105.
२१. It always must be renewed. Its creative influence depends on surprise, when once the freshness of the presentment has faded, the reader replaces into his daily habits. ----Dr. H. V. Rauth : English Literature and Ideas in the twentieth century, Page-2
२२. डॉ. चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर : हिन्दी उपन्यास-स्थिति और गति, पृष्ठ २
२३. American writings in the twentieth century by William Thorp - Caste and class of the Novel (1920-1950) Ch. 11.
२४. डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन : उपन्यास सिद्धान्त और संरचना, पृष्ठ - १
२५. डॉ. चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर : हिन्दी उपन्यास : स्थिति और गति, पृष्ठ- २
२६. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - ६
२७. Montgomery Belgium : A Treatise on the novel by Robert Liddell Published in 1955, Page - 14.
२८. R. A. Scott James, The Making of Literature, Page - 364.
२९. W. L. George, A Novelist on Novels, Page - 4  
 "The novel is important because, low as its status may be, it does day by day express mankind, and mankind in making."
३०. डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी : उपन्यास के दायित्व  
 (आलोचना - उपन्यास अंक, अक्टूबर १९५४) पृष्ठ - ४६
३१. डॉ. चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सृजन और आलोचना, प्राक्कथन, पृष्ठ - VIII
३२. प्रेमचंद : उपन्यास रचना (माधुरी, जुलाई-दिसंबर १९२२)

३३. वही, पृष्ठ - ३५९
३४. डॉ. चन्द्रकांत बांदिबडेकर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सृजन और आलोचना, पृष्ठ - X
३५. लक्ष्मी सागर बाणाय, फॉट विलियम कॉलेज, पृष्ठ - ५०
३६. भारतेंदु समग्र, पृष्ठ- ९८१
३७. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - ४५२
३८. गुरुदत्त : उपन्यास कैसे लिखे गए, "साहित्य संदेश", आधुनिक उपन्यास अंक, जुलाई १९५६, पृष्ठ - ८०
३९. अमृतलाल नागर : साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ - २३
४०. डॉ. गोपाल राय : हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, पृष्ठ - २६८
४१. वही - पृष्ठ - २७६
४२. किशोरी लाल गोस्वामी : "तारा" उपन्यास को भूमिका से
४३. डॉ. कैलाश प्रकाश : प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ - ३१४
४४. डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन : हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और संरचना, पृष्ठ - ११६
४५. आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी : आलोचना, अक्टूबर १९५४, पृष्ठ - ५६
४६. डॉ. रामरतन भटनागर : आलोचना, अक्टूबर १९५४, पृष्ठ - ८१
४७. डॉ. गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पृष्ठ - ६०
४८. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ - ७५
४९. अमृतलाल नागर : साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ - ३२
५०. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ - ७२
५१. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ - २७२
५२. डॉ. हजारो प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क, पृष्ठ - ९५
५३. आलोचना : उपन्यास अंक, सितम्बर १९५४, पृष्ठ ३०
५४. लक्ष्मीकान्त वर्मा : आलोचना, उपन्यास अंक, सितंबर १९५४, पृष्ठ - ९४
५५. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, आलोचना, उपन्यास अंक, सितंबर १९५४, पृष्ठ - १५६
५६. डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २७७
५७. डॉ. नगेन्द्र : विचार और विश्लेषण, पृष्ठ - ६३
५८. डॉ. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - ३४५
५९. यशपाल : दिव्या - प्राक्कथन, पृष्ठ - ५
६०. डॉ. गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ - १४०
६१. डॉ. सत्यपाल चुघ : प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृष्ठ - ५५७
६२. नन्द दुलारे वाजपेयी : आलोचना, उपन्यास अंक, सितंबर १९५४, पृष्ठ - ५९



## नागरजी के उपन्यासों का वर्गीकरण एवम् परिचयात्मक विवेचन

यद्यपि अमृत लाल नागर की सर्जनात्मक प्रतिभा की प्रथम साहित्यिक अभिव्यक्ति कविता के रूप में हुई थी तथापि काव्य के क्षेत्र में उनका अवदान नगण्य है। कहानी, उपन्यास, नाटक, रूपक, संस्मरण, यात्रावृत्त, साक्षात्कार, व्यंग्य आदि क्षेत्रों में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है परन्तु वे उपन्यासकार के रूप में ही हिन्दी साहित्य में विशेष सम्मानित हैं। विविध साहित्य विधाओं के लेखन ने वास्तव में उनके कथाकार व्यक्तित्व को सँवारने और प्रखर बनाने में सहयोग दिया है।

उन्होंने १५ छोटे-बड़े उपन्यासों की रचना की है। कालक्रमानुसार उनके उपन्यासों की सूची इस प्रकार है —

<u>क्रम संख्या</u>	<u>उपन्यास का नाम</u>	<u>रचनाकाल</u>
१.	महाकाल (भूख)	१९४६
२.	सेठ बांकेमल	१९५५
३.	बूँद और समुद्र	१९५६
४.	शतरंज के मोहरे	१९५८
५.	सुहाग के नूपुर	१९६०
६.	अमृत और विष	१९६६
७.	सात घूँघट वाला मुखड़ा	१९६८
८.	एकदा नैमिषारण्ये	१९७२
९.	मानस का हंस	१९७२
१०.	नाच्यौ बहुत गोपाल	१९७८
११.	खंजन नयन	१९८१
१२.	बिखरे तिनके	१९८२
१३.	अग्निगर्भा	१९८३
१४.	करवट	१९८५
१५.	पीढ़ियाँ	१९९०

नागरजी के उपन्यासों में सुगठित कथा के साथ नवीन शिल्प और अनुभव की प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है। नागरजी के कथा साहित्य में एक ओर समसामयिक जीवन

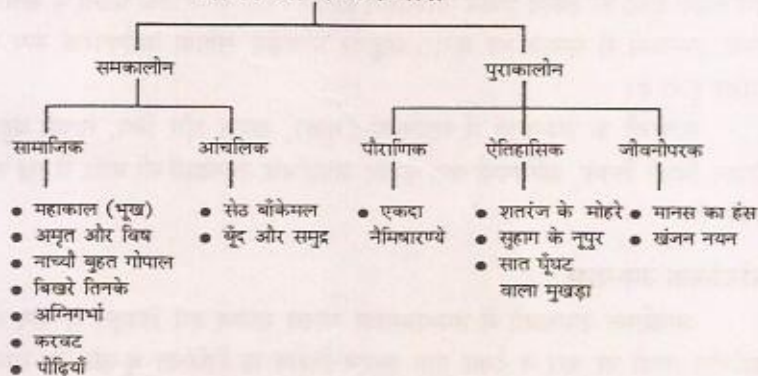
के यथार्थपरक चित्र हैं तो दूसरी ओर अतीत की घटनाओं का विवेचन करने वाले ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंग भी हैं। उनके उपन्यासों में समाज के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। उनका संवेदनशील मन तथा संस्कृति प्रेमी विवेक कृतियों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है। अपने समय की सांस्कृतिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए ही वे इतिहास और पुराण में उनका उत्स एवं समाधान खोजते हैं। इस प्रकार सर्वत्र वर्तमान सामाजिक स्थितियों से प्रतिबद्ध रहते हुए भी नागर जी अपने उपन्यासों में समकालीन और पुराकालीन प्रसंगों का विवेचन करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

अतः नागरजी की औपन्यासिक सृष्टि को समकालीन एवं पुराकालीन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। यद्यपि दोनों ही रूपों में वे समाज से सम्पृक्त रहते हैं— पुराकालीन वर्णनों में भी सामाजिकता से विचलित नहीं होते, तथापि सुविधा की दृष्टि से आधुनिक आलोचक उनकी समकालीन यथार्थ-अवलंबित विशद सामाजिक छवि का अंकन करने वाले उपन्यासों को सामाजिक उपन्यासों की कोटि में रखते हैं। नागरजी के जिन सामाजिक उपन्यासों में किसी नगर विशेष का समग्र अंचल मूर्त हो उठा है उन्हें आलोचकों ने आंचलिक उपन्यास कहा है।

इसी प्रकार पुराकालीन प्रसंगों के विवेचन में वे स्थूल सामाजिक यथार्थ के स्थान पर कल्पना के योग से सूक्ष्म सांस्कृतिक ताना-बाना बुनकर इतिहास का अतिक्रमण करते हैं, ऐसे उपन्यासों को पौराणिक उपन्यासों की कोटि में परिगणित किया जा सकता है। इसी भाँति ज्ञात इतिहास को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में तथा इतिहास के किसी विशिष्ट पुरुष के जीवन पर केन्द्रित उपन्यासों को जीवनी प्रधान ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है।

इस दृष्टि से नागरजी के उपन्यासों का जो वर्गीकृत प्रारूप तैयार होगा वह इस प्रकार का होगा—

### नागर जी के उपन्यास





## सामाजिक उपन्यास :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक परिवेश के अनुसार वह अपने जीवन का निर्माण करता है; सामाजिक समस्याओं तथा घात-प्रतिघातों को झेलता हुआ सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत सामाजिक मूल्यों का सृजन एवं रूढ़ियों का विघटन और परिवर्तन करता रहता है। सामाजिक उपन्यास मनुष्य की इन्हीं सामाजिक गतिविधियों का चित्रण करते हैं। इन उपन्यासों में पात्र व्यक्ति अवश्य होते हैं परन्तु उनकी दिशा और अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति-मात्र की नहीं अपितु समष्टि की होती है। डॉ. शशिभूषण सिंहल ने सामाजिक उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार की है —“सामाजिक उपन्यास समाज के विभिन्न क्षेत्रों — स्त्री, पुरुष के रति संबंधों, परिवार, जाति, संप्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थ-दशा, रीति, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए उनके लक्ष्य तथा उनकी समस्याओं का निरूपण करता है। सामाजिक उपन्यास, सामाजिक जीवन प्रवाह तथा उसकी समस्याओं से बँधकर चलने के कारण कालावधि में गतिशील रहता है।”

सामाजिक उपन्यासों में व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं का आलोचनात्मक विवेचन होता है अतः व्यक्ति के सम्यक् विकास में सामाजिक उपन्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

साहित्यकार समाज की पीड़ा, शोषण तथा बनते बिगड़ते जीवन-मूल्यों को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। नागरजी की गहन जीवनानुभूति, मानव-मनोविश्लेषण की गंभीर क्षमता तथा विशिष्ट प्रतिभा सामाजिक समस्याओं को मानवीय दृष्टि से देखती है और उनके समाधान के संकेत करती चलती है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में आस्थावादी स्वर मुखरित हुआ है। स्वस्थ चिन्तन, सूक्ष्म दृष्टि तथा जीवन के व्यापक अनुभव के साथ समाज के सजग व्यक्ति के रूप में उन्होंने व्यक्ति और समाज के संबंधों को परखने की चेष्टा की है। उनकी समाजवादी चेतना पर समाजवादी दृष्टि का स्वस्थ प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी सामाजिक चेतना के कारण उनके उपन्यासों में समाज का सुन्दर-असुन्दर प्रतिबिंब अधिक यथार्थपरक रूप में चित्रित हुआ है।

नागरजी के उपन्यासों में महाकाल (भूख), अमृत और विष, नाच्यौ बहुत गोपाल, बिखरे तिनके, अग्निगर्भा तथा करवट सामाजिक उपन्यासों की कोटि में रखे जा सकते हैं।

## आंचलिक उपन्यास :

आंचलिक उपन्यासों में उपन्यासकार मानव समाज एवं विस्तृत भू-भाग के सार्वभौम तत्त्वों पर बल न देकर एक समाज-विशेष या निश्चित भू-खंड के समग्र

जीवन को ही कथा का आधार बनाता है। यह अंचल अपनी विशिष्टताओं के कारण सम्पूर्ण भू-भाग का अंग होते हुए भी अपना अलग महत्त्व प्रकट करता है। इस प्रकार विशाल राष्ट्र की एक छोटी इकाई गाँव, नगर, प्रान्त या एक जाति का चित्रण करना आंचलिक उपन्यासकार का उद्देश्य होता है। चित्रण को विश्वसनीय बनाने के लिए आंचलिक उपन्यासकार क्षेत्रीय बोलियों, क्षेत्रीय लोकगीतों अथवा क्षेत्रीय पात्रों का चयन करता है।

आंचलिक उपन्यासकार अपने अभीष्ट समाज को यथासंभव सही रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। जिस समाज का वह चित्रण करता है, वह काल्पनिक नहीं बल्कि अच्छी तरह से उसका जाना-बूझा, देखा-परखा समाज होता है। जीवन-सत्य के दस्तावेज होने के कारण ये उपन्यास अपने वर्ण्य समाज की प्रामाणिक जानकारी देते हैं।

इस प्रकार आंचलिक उपन्यासों में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जीवन रहन-सहन, रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, लोक-गीत, उत्सव इत्यादि स्थानीय विशिष्टताओं के विकास और युग चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है। आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में केवल ग्रामीण कथाएँ ही नहीं आतीं, छोटे नगर की विशेषताओं को समेटने वाले उपन्यास भी आंचलिक कहे जा सकते हैं।

अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सेठ बांकेमल' तथा 'बूंद और समुद्र' में क्रमशः आगरा और लखनऊ शहर अपनी समस्त विशेषताओं के साथ उपस्थित हुआ है। इस कारण इन दोनों उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास की कोटि में रखना अधिक उपयुक्त है।

### पौराणिक उपन्यास :

कार्यकारण परंपरा के ज्ञात घटनाक्रम को इतिहास तथा अज्ञात घटनाक्रम को पुराण कह सकते हैं। पुराणों में ज्ञात इतिहास का अतिक्रमण होता है। इतिहास काल के पहले की वे कथाएँ जो मिथक का रूप धारण कर चुकी हों, पुराण कथाएँ कहलाती हैं। ऐसी कथाओं में अतिमानवीय, अति-प्राकृतिक तथा चमत्कार तत्त्वों का मिश्रण होता है।

विद्वानों के एक वर्ग ने पुराणों को केवल व्यतीत सत्य का दस्तावेज न मानकर निरंतर नवीन होते चलते जीवन-मूल्यों को वहन करने वाले प्रसंगों का आलेख माना है। पुराण की व्याख्या में कहा गया है कि वह पुराना होकर भी नए के समान है — 'पुरा नव एव'। इतिहास चुक जाता है परन्तु पुराण चुकता नहीं है इसीलिए सदैव जीवित रहता है। पुराण नई-नई अर्थ-छटाओं के कारण अपना कायाकल्प करता रहता है।

पौराणिक उपन्यास में पुराणकालीन पात्रों या घटनाओं का चित्रण किया जाता है। 'एकदा नैमिषारण्ये' अमृतलाल नागर का पौराणिक उपन्यास है जिसमें सांस्कृतिक चिरंतनता का रहस्य समझने की चेष्टा की गई है।



## ऐतिहासिक उपन्यास :

किसी विशेष प्रयोजन से अनुप्रेरित होकर जब उपन्यासकार इतिहास की किसी घटना या व्यक्ति को केन्द्र में रखकर अपनी कथावस्तु का ताना-बाना बुनता है तब ऐतिहासिक उपन्यास की सृष्टि होती है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के पैर तो इस जमीन में रहते हैं, वह साँस इस काल में लेता है, परन्तु उसका स्वप्न प्राचीन होता है और इस प्राचीनता में भी नवीनता का संचार कर देने की उसमें शक्ति होती है।

वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐसे पात्रों और समाज का चित्रण होता है जो सदा के लिए लुप्त हो गया है परन्तु अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ छोड़ गया है जो वर्तमान जटिल परिवेश में अत्यन्त सहयोगी हो सकती हैं।

इतिहासकार और ऐतिहासिक उपन्यासकार के बारे में डॉ. जगदीश गुप्त ने अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त की है — “इतिहासकार केवल द्रष्टा है, उपन्यासकार द्रष्टा और स्रष्टा दोनों।.....अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का अधिकार स्रष्टा का मौलिक स्वत्व है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय भी इस अधिकार से उसे वंचित नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि ऐतिहासिक मर्यादा को अक्षुण्ण रखना उसका पवित्र कर्तव्य बन जाता है जिसको वह त्याग नहीं सकता।”

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना सहज कार्य नहीं है। इसके लिए उपन्यासकार को इतिहासकार की भाँति विवेक से काम लेना पड़ता है। उसे अपने युग को भूलकर अतीत में पहुँचना पड़ता है और अतीत के इस अवगाहन में अपने मनोयोग से वर्तमान युग की समस्याओं को प्रतिबिम्बित करना पड़ता है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में नागर जी की रचनाओं के विवेचन से उनकी सजग दृष्टि एवं स्पष्ट वर्णनशैली का पता चलता है। अपने उपन्यासों में वे जिस काल का वर्णन करते हैं उस काल के समाज का वातावरण रीति-रिवाज, वेष-भूषा तथा भाषा का जीवन्त चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर और सात घूँघट वाला मुखड़ा नागरजी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

## जीवनीपरक उपन्यास :

किसी महापुरुष के जीवन को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यास जीवनीपरक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। यों तो संपूर्ण साहित्य ही मानव का अध्ययन करता है परन्तु जीवनी और आत्मकथाओं में यह अध्ययन सत्य और वास्तविकता के अधिक निकट रहता है। यही कारण है कि जीवनीपरक उपन्यासों में कल्पना का पुट अत्यन्त सीमित होता है।

उपन्यासकार अपनी कल्पना से अपने चरित नायक की उतनी ही साज-सँभाल

कर सकता है जितनी में उसका आकार प्रकार न बदलने पाये। वह उस माँ की भाँति है जो अपने बच्चे को सुसज्जित करने में अपनी रुचि के अनुसार वस्त्रों का चयन तो कर सकती है परन्तु उसकी आकृति को नहीं बदल सकती। इस प्रकार जीवनीपरक उपन्यास का लेखक द्रष्टा के रूप में होता है और अपने चरितनायक के बहुत सारे रहस्यों को जानते हुए भी अपने मन की सारी बातों को पूरी दृढ़ता के साथ नहीं कह सकता। अज्ञात विषयों के बारे में वह अनुमान से काम ले सकता है परन्तु उसका अनुमान व्यक्ति विशेष के बारे में ज्ञात प्रामाणिक तथ्यों के अनुरूप ही होना चाहिए, भ्रांतिपरक नहीं।

इस प्रकार जीवनी लिखना तो सहज है परन्तु जीवनीपरक उपन्यास की रचना करना बड़ा ही कठिन है। नागरजी ने इतिहास के उन दो साहित्यिक महारथियों के जीवन को आधार बनाकर उपन्यासों की रचना की है जो भारतीय समाज के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। तुलसीदास के जीवन पर आधारित 'मानस का हंस' तथा सूरदास के जीवन से संबंधित 'खंजन नयन' नागर जी के जीवनीपरक उपन्यास माने जा सकते हैं।

## परिचयात्मक विवेचन

नागरजी के उपन्यासों के वर्गीकरण के उपरान्त उनका परिचयात्मक विवेचन उनकी प्रबुद्ध सर्जना तथा औपन्यासिक दृष्टि को समझने में सहायक होगा। उनके सभी उपन्यासों का काल-क्रमानुसार परिचयात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

### महाकाल\* :

बंगाल के भीषण अकाल को विषय बनाकर कई उपन्यासों की रचना हुई है। इनमें रामचन्द्र तिवारी कृत 'सागर सरिता और अकाल'; रांगेय राघव कृत 'विषाद मठ' तथा अमृतलाल नागर कृत 'महाकाल' प्रमुख हैं। 'महाकाल' अन्य दोनों उपन्यासों की तुलना में श्रेष्ठ है।

१९४६ में रचित यह उपन्यास नागरजी का पहला उपन्यास है। १९४३ में बंगाल में आए दुर्भिक्ष का जीता-जागता विशद चित्र प्रस्तुत करने वाले इस उपन्यास को संपूर्णतः ऐतिहासिक तो नहीं किन्तु इतिहास प्रभावित सामाजिक उपन्यास अवश्य माना जा सकता है। इस दुर्भिक्ष के कई ऐतिहासिक कारण बताए गए हैं जिसमें द्वितीय महायुद्ध के उपरांत की आर्थिक-राजनैतिक स्थिति भी एक महत्वपूर्ण कारण है। जमींदारों की जमाखोरी तथा महाजन और व्यापारी वर्ग की वणिक् वृत्ति; वर्मा से चावल के आयात

\* परवर्ती काल में उपन्यास का नाम बदलकर 'भूख' कर दिया गया।



पर प्रतिबंध तथा वर्मा से निकाले गये शरणार्थियों के बंगाल में बस जाने से चावल का अभाव भी अन्य प्रमुख कारण हैं। अंतिम कारण की पुष्टि इतिहासकार भी करते हैं। 'विषाद मठ' के लेखक रांगेय राघव दुर्भिक्ष का कारण सेना में भारतीयों को भर्ती होने के लिये विवश करने हेतु अंग्रेज सरकार द्वारा चावल पर लगाई गई रोक मानते हैं।<sup>3</sup>

अकाल का ऐतिहासिक, राजनैतिक कारण जो भी हो; इस अकाल ने मानव समूह का जैसा दर्दनाक संहार किया उसके वर्णन से किसी भी व्यक्ति का हृदय द्रवित हो सकता है। इस भयंकर दुर्भिक्ष में मानव की दानवी-वृत्ति जिस रूप में उभर कर सामने आई उससे मानवता का मस्तक लज्जा से झुक जाता है। नागरजी ने इन स्थितियों का जीवंत चित्रण अपनी संवेदनशीलता के साथ इस उपन्यास में किया है। उपन्यासकार का मुख्य ध्येय मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना रहा है। अमृतलाल नागर का वैशिष्ट्य इस बात में भी है कि उनके इस उपन्यास में इतिहास की यह मर्यादात्मक घटना इतिहास-द्रष्टा की कलम से नहीं बल्कि संवेदनशील रचनाकार की सहृदयता से प्रस्तुत हुई है। नागरजी की मानवतावादी दृष्टि ने कथा को अधिक अर्थपूर्ण और सोदेश्य बनाने का सफल प्रयास किया है। इसी कारण इस उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की अपेक्षा सामाजिक उपन्यास की कोटि में रखना अधिक उपयुक्त होगा। उपन्यास के समर्पण में नागरजी का मत है — "मेरे मत से इस समस्या की पृष्ठभूमि में पेट की समस्या ही प्रमुख है। राजनीतिक दाँव-पेचों के बल पर यह समस्या जन-मन की वास्तविक अशान्ति और उससे उत्पन्न घृणा को झूठे रूप से भड़का रही है। समस्या अन्न की है, कपड़े की है, घर की है, चैन आराम की है, जीने की है। व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या पर पर्दा डाल रहा है।"<sup>4</sup>

इस प्रकार इस हृदयद्रावक ऐतिहासिक घटना को नागरजी ने मानव की पेट की समस्या से जोड़ दिया है।

'महाकाल' लिखने का विचार नागरजी के मन में कैसे आया, इसका बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है — "सन् ४३ के बंग दुर्भिक्ष में मनुष्य की चरम दयनीयता और परम दानवता के दृश्य मैंने कलकत्ते में अपनी आँखों से देखे थे। सियालदह स्टेशन के प्लेटफार्म कलकत्ते की सड़कों के फुटपाथ ऐसी वीभत्स करुणा से भरे थे कि देख-देखकर आठों पहर जी उमड़ता था।" कलकत्ते की सड़कों पर भूख से पीड़ित मनुष्यों की पीड़ा ने नागरजी के मन को झकझोर दिया था क्योंकि बंबई में अपने घनघोर बेकारी के दिनों में लेखक ने चार दिनों तक भूख रहने की पीड़ा झेली थी। अपने मित्र महेश कौल के साथ नागरजी अधपेट रहने का कष्ट भी भोग चुके थे। उपन्यास हेतु प्रारंभिक नोट्स नागरजी ने उपवास के दौरान लिए थे। भूख की इसी अनुभूति ने उपन्यास की अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

डॉ. रामविलास शर्मा के परामर्श से उपन्यास का नाम 'महाकाल' रखा गया था। इस उपन्यास का नामकरण विषयानुकूल है। शिव के संहारकारी रूप को महाकाल कहते हैं। उज्जैन में स्थापित प्रसिद्ध शिवलिंग, जो १२ ज्योतिर्लिंगों में एक है, महाकाल के नाम से जाना जाता है। 'काल' का तात्पर्य मृत्यु से लेने पर महाकाल का अर्थ महामृत्यु लिया जा सकता है। अकाल के कारण बड़ी संख्या में हुई मृत्यु के कारण 'महाकाल' नामकरण उचित ही है। इसी भाँति 'महा+अकाल' भी उपन्यास के प्रतिपाद्य को प्रकट करनेवाला उपयुक्त नामकरण प्रतीत होता है। इस प्रकार 'महाकाल' नामकरण हर दृष्टि से सार्थक है। परवर्ती काल में उपन्यास का नाम बदलकर 'भूख' कर दिया गया। शीर्षक परिवर्तन से उपन्यास की कथा का केन्द्रीय विषय परिस्फुट हो गया है। यह बात उपन्यासकार ने स्वीकार भी की है — "जो नाम २६ वर्ष पहले अकाल की स्मृति ताजी होने के कारण पाठकों के मन में अपना स्पष्ट अर्थ-बोध करा सकने में समर्थ था, वह अब अकाल से संबंधित जन-स्मृति के पुरानी पड़ जाने के कारण शायद दुरूह हो गया है।"<sup>१६</sup>

उपन्यास में एक ओर पेट की ज्वाला की तेज लपटों में बड़ी संख्या में स्वाहा होता मानव-समाज है तो दूसरी ओर अर्थ-लोभी और काम-लोलुप वह वर्ग भी चित्रित है जो मनुष्य की असहायता के इस दारुण समय में भी अपनी अर्थतुष्टि एवं इन्द्रिय-लिप्सा हेतु सामाजिक विधान विकृत करने को तत्पर है।

उपन्यास में पीड़ित जनता के प्रतिनिधि के रूप में पाँचू गोपाल है, सामंती संस्कृति की विकृतियों को चित्रित करनेवाला पात्र दयाल जर्मीदार है तथा शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र मोनाई बनिया है। अकाल का मार्मिक वर्णन करने के लिए उपन्यासकार ने बंगाल के एक गाँव मोहनपुर का चयन किया है और इस गाँव की दर्दनाक आर्थिक सामाजिक परिस्थिति का यथार्थपरक चित्र उपस्थित करते हुए पूरे प्रदेश में आई इस प्राकृतिक विपत्ति का आभास पाठकों को कराया है। भूख की इस समस्या को व्यापक भावभूमि प्रदान करते हुए उपन्यास में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व का चित्रण करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य है, यही कारण है कि यह उपन्यास प्रभावशाली सामाजिक उपन्यास के रूप में प्रतिष्ठित है। उपन्यास के समर्पण में नागरजी ने व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य के अभाव की ओर संकेत किया भी है — "व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या (जीने की समस्या) पर पर्दा डाल रहा है परन्तु समाज की समस्या से व्यक्ति किसी भी रूप में अछूता नहीं रह सकता। यह अशांति व्यक्ति के गलत स्वार्थ की कहानी कहती है।"<sup>१७</sup> व्यक्ति का घृणित स्वार्थ अपनी निर्ममता से समाज का गला घोट देता है। उपन्यास के नायक पाँचू गोपाल की यही चिंता है — "खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही



है लेकिन यह खुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप से क्यों नहीं देखता? दुनिया से अलग रहकर अपनी असलियत का अनुभव कैसे कर सकता है। सम्मिलित रूप से समाज की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझपर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और हर बुरे काम का निर्णय समाज के तराजू पर ही करता हूँ।”<sup>८</sup>

उपन्यास का नायक 'पाँचू' उपन्यासकार के विचारों का वाहक आदर्श पात्र है परन्तु उसकी समस्त चिन्तनशीलता, आदर्शवादिता तथा बौद्धिकता यथार्थ की कठोर भूमि से टकराकर चकनाचूर हो जाती है। पेट के लिए उस जैसे इमानदार व्यक्ति को स्कूल की डेस्कें मोनार्ड जैसे स्वार्थी महाजन के हाथों बेचनी पड़ती हैं। विद्वान पिता से विरासत में प्राप्त पांडित्य भूख की ज्वाला में मानों भस्मीभूत हो जाता है। भूख से व्याकुल गाँव की पीड़ा और मौत का तांडव देखकर वह विवश और कुंठित हो जाता है। पाँचू गोपाल मुखर्जी के परिवार की हालत गाँव से अलग नहीं है, उसके परिवार वाले भी भूख से मर रहे हैं। उसका बड़ा भाई दो मुट्ठी चावल के लिए अपनी पत्नी को बेच देता है। परिवार की इस दारुण स्थिति से पाँचू घबरा उठता है और पलायन करने को विवश होता है। पाँचू का यह पलायन यथार्थ की पथरीली भावभूमि पर बौद्धिकता की पराजय का संकेत है परन्तु नवजात शिशु का रुदन मौत के इस भयानक सत्राटे में पाँचू को जीवन की ओर मोड़ देता है और इस प्रकार मानवीय संवेदना से बौद्धिक कुण्ठा का निरसन हो जाता है।

घोर पीड़ा और मौत के आतंक के बीच भी उपन्यासकार ने जिजीविषा की ज्योति को प्रज्वलित रखा है। यही आस्था मनुष्य को भूख, मृत्यु तथा सामाजिक वैषम्य से लड़ते रहने की शक्ति देती है। मृत्यु के विस्तृत साये में भी जीवन के संकेत देकर नागरजी अपने पहले उपन्यास में ही अपनी विशिष्ट पहचान बना लेते हैं।

### सेठ बाँकेमल :

'महाकाल' के बाद 'सेठ बाँकेमल' (१९५५) नागरजी का दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा अपने पूर्व के उपन्यास की कथा से पूर्णतः भिन्न है। एक में समाज की त्रासद स्थितियों के करुण चित्र हैं तो दूसरे में सामाजिक मान्यताओं, जर्जर रूढ़ियों तथा क्रमशः क्षीण होती जा रही मध्ययुगीन संस्कृति के गुण-दोषमय चित्रों का अंकन हास्य-व्यंग्य के गहरे पुट के साथ किया गया है। इन दोनों उपन्यासों के अध्ययन से नागरजी की प्रतिभागत विविधता के बोध के साथ यह भी ज्ञात होता है कि वे जितनी खूबी के साथ जीवन-जगत की करुण एवं गंभीर स्थितियों का वर्णन कर सकते हैं उतनी ही दक्षता के साथ हास्य-व्यंग्य की रचना में भी समर्थ हैं।

एक दूसरे से असंबद्ध १६ रोचक प्रसंगों वाले इस उपन्यास में विविध घटनाओं

को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि कृति को अनायास ही औपन्यासिकता प्राप्त हो गई है। हास्य-व्यंग्य तथा आत्मकथात्मक प्रणाली में लिखा गया यह लघु उपन्यास एक नया प्रयोग है।

इस लघुकाय उपन्यास में दो घनिष्ठ मित्रों के अतीत जीवन से संबंधित विविध रोचक प्रसंगों, जीवनानुभवों, यात्रा-विवरणों तथा संस्मरणों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, विसंगतियों तथा जर्जर रूढ़ियों पर आघात करते हुए नागरजी ने परम्परा-प्रेम पर गहरी चोटें की हैं। अतः हास्य-व्यंग्य की रोचक कथाओं के बीच भी लेखक का महत् उद्देश्य परिलक्षित होता रहता है।

उपन्यास के सारे प्रसंग मूलतः गोटे के व्यापारी आगरा निवासी सेठ बाँकेमल तथा उनके अभिन्न मित्र पारसनाथ चौबे से संबद्ध हैं। सेठ बाँकेमल अपनी दुकान पर बैठे-बैठे अपनी तथा अपने दिवंगत मित्र चौबे जी की जवानी के दिनों के लच्छेदार किस्से अपने भतीजे (चौबेजी के पुत्र) को सुनाना आरंभ करते हैं और दुकान बन्द होने तक सुनाते जाते हैं। उनकी इस बातचीत से दुकानदारी में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती और वे अपने ग्राहकों को भी निबटाते चलते हैं। यहाँ तक कि दुकान के ग्राहकों को भी उनके गप्प-भरे किस्से सुनने पड़ते हैं। सेठजी अपनी बात बुजुर्गाना अंदाज में कहते हैं और उसे मनवाते भी चलते हैं। कथा कहने के किसी भी मौके को वे हाथ से जाने नहीं देते। बंबई से लौटकर चौबेजी का पुत्र सेठजी से मिलने दुकान पर आया है। अपने स्वर्गवासी सखा के पुत्र को देखकर सेठजी को चौबेजी के साथ व्यतीत जीवन का स्मरण हो आता है और वे उस जीवन के एक से एक रंगीन और लच्छेदार किस्से सुनाने लगते हैं।

किस्सों में सेठ बाँकेमल और उनके साथी चौबेजी के 'जोरो जवानी' के 'तरकैट' किस्से अधिक हैं। 'आकाश-पाताल के कुलाबे भिड़ाकर' किस्से-कहानियों को गढ़ने की विलक्षण सामर्थ्य सेठजी में है। सेठजी एवं उनके मित्र चौबेजी ने बंबई यात्रा में किस प्रकार सेठों को ठगा, कैसे दिल्ली पहुँचकर दीवान तथा राजा को मूर्ख बनाया, कैसे अपने संगीत-ज्ञान से खानदानी वेश्याओं के घर में मौज उड़ाई, गोकुल पहुँचकर पनिहारियों से कैसे छेड़छाड़ की ओर अपने चातुर्य से भाग निकले, पंजाब के गंडासिंह पहलवान को पराजित किया, राजा साहब के हाथों 'हीरे का निकलैस' तथा मोतियाँ बँची, पं. देवीदयाल की पुत्री के व्याह में आई बाधा का निवारण कराकर किस प्रकार धूम-धाम से शादी कराई, डॉण्डर मूंगाराम ने किस प्रकार बंगाली बाबू के पेट में बैठे कनकजुरे को छिपकली के माध्यम से बाहर निकाला और ख्याति प्राप्त की, शाहजहाँ बादशाह ने कलेजा कूटा, कृष्ण जी मुहम्मद बने आदि एक से बढ़कर एक गप्पभरे किस्सों का सुन्दर वर्णन है। इन प्रसंगों में गप्प वर्णन का सहज गांभीर्य भी हास्य का सृजन करता है।



नागरजी ने इस अद्वितीय गण्यबाज सेठ को यथार्थजीवन से लिया है, यही कारण है कि वह प्रभावशाली एवं सजीव चरित्र की सृष्टि करता है। अज्ञेयजी को दिए गए एक इंटरव्यू में 'सेठ बाँकेमल' की मूल प्रेरणा का उल्लेख करते हुए नागरजी ने बताया है - "जो सेठ बाँकेमल हैं वह असल में सेठ सुरामल हैं और चौबेजी हमारे छोटे मामा। उनका बात करने का ढंग - बोलती तो स्वाभाविक रूप से आकर्षित करती है लेकिन जिस लच्छेदार ढंग से वे बात करते थे वह भी बड़ा प्यारा लगा।" इन सेठ सुरामल को नागरजी ने आगरे में हाटकेश्वर की छजली पर सुबह-शाम बैठे देखा है। नागरजी ने लिखा है - "पात्रों की खोज में न निकलने पर भी मुझे सेठ बाँकेमल मिल गये। उनकी बोली-बानी, चाल-ढाल और घटनाओं का क्रम भी काफी हद तक केवल चरित्र का नाम बदलकर ही मैंने लिख डाले हैं।"<sup>१४</sup>

वास्तविक जीवन से चरित्र को लेकर आवश्यकतानुसार घटा-बढ़ाकर प्रस्तुत करना नागरजी की अपनी विशेषता है यही कारण है कि उनके उपन्यासों के पात्र अधिक जीवंत प्रतीत होते हैं।

उपन्यास के माध्यम से अमृतलाल नागर ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक खास अंचल आगरा का चित्रण अत्यंत सरस एवं रोचक ढंग से आगरे की आंचलिक भाषा में किया है वर्णन शैली भी आंचलिक रेखाएँ उभारने में सहयोग करती है, इसलिए यह उपन्यास 'आंचलिक उपन्यास' की कोटि में रखा जा सकता है।

कुल मिलाकर लेखक ने बाँकेमल के रूप में हास्य व्यंग्य के बहाने पुराने और नए के संघर्ष को चित्रित किया है तथा परिवर्तनशील युग पर तीखे व्यंग्य कसे हैं - "इसी भारतवर्ष में औरतें सती होवें थीं, विनको देवी मानके पूजें थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए सुसरियाँ आग में जल के भस्म हो जाया करें थीं और अब ये जमाना आन लगा है के घर के घर में सब औरतें-लड़कियाँ ऐसे-ऐसे बाईसकोप देख-देख के रंडियाँ हुई चली जाएँ साली। - नई में जे नई कऊं हूँ के पैले के जमाने में सब सुद्ध-पवित्तर ही थे, ऐसी कोई वारदातें होवेई नई थी। नई होवें थी जरूर, पर बहुत कम, और सो भी बड़ी दबी-ढंकी भैयो।"<sup>१५</sup>

### बूंद और समुद्र :

'बूंद और समुद्र' विस्तृत फलक पर लिखा गया सामाजिक उपन्यास है जो अपने देश के मध्यवर्गीय समाज का गुण-दोष भरा चित्र प्रस्तुत करता है। १९५६ में लिखित इस उपन्यास में नागरजी ने मध्यवर्गीय समाज के विभिन्न मानसिक एवं सामाजिक अवस्था के स्त्री-पुरुष पात्रों का चयन कर उनकी बोल-चाल, आचार-विचार, रहन-सहन तथा कार्यकलाप का यथार्थपरक चित्रण किया है। लेखक ने मध्यवर्गीय समाज के जीवन में गहराई से पैठकर अपने अनुभव से जो चित्र अंकित

किए हैं — वे छोटे या बड़े हर रूप में स्पष्ट और यथार्थ हैं। उपन्यास में व्यक्ति तथा समाज का यथार्थ बड़ी संपन्नता के साथ प्रकट हुआ है, इसी कारण इसे महाकाव्यात्मक या क्लासिकल परम्परा का उपन्यास कहा जाता है। इस उपन्यास से नागरजी को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

५८२ पृष्ठों वाले इस उपन्यास का काल १९५२ के आस-पास का है। १९५२ के प्रथम आम-चुनाव की गतिविधियाँ उपन्यास में हैं। इसकी कथा कार्तिक में प्रारंभ होती है और आषाढ़ में समाप्त हो जाती है। इस प्रकार पूरा उपन्यास लगभग ९ महीने के काल-खंड में केन्द्रित है।

उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। बूँद शब्द व्यक्ति का व्यंजक है तो समुद्र समाज का। अपनी समन्वयवादी मूल्य दृष्टि से नागरजी ने व्यष्टि तथा समष्टि के समन्वय की शाश्वत समस्या ही इस उपन्यास में उठाई है। जैसे बूँद-बूँद से मिलकर समुद्र की संरचना होती है, वैसे ही व्यक्ति-व्यक्ति से जुड़कर समाज बनता है। वास्तव में दोनों 'कहियत भिन्न न भिन्न' हैं। कबीर ने 'बूँद समानी समंद में' तथा "समंद समाना बूँद में" कहकर दोनों के अन्योन्याश्रित संबंध की ओर संकेत किया है। संभवतः कबीर की इन पंक्तियों से अनुप्रेरित होकर लेखक ने बूँद को व्यक्ति के रूप में और समुद्र को समाज के रूप में सामाजिक स्तर पर प्रतिपादित किया है। जैसे बूँद में समुद्र है, वैसे ही व्यक्ति में समाज समाया है। समाज में विरोधाभास की बहुलता को देखकर नागरजी चिन्तित हैं तभी तो उनका उपन्यास नायक सज्जन अपने आस्थावादी विचार व्यक्त करता है—

“मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए।...कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे — जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है — लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है। इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।” उपन्यास का शीर्षक प्राचीन भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी दृष्टि की ओर संकेत करता है।

समाज की रूढ़िवादिता, अव्यवस्थित मान्यताएँ, विकारयुक्त प्राचीन परंपराएँ, सामाजिक दुर्व्यवस्था, उच्छृंखलता, अनैतिकतापूर्ण आचरण, धार्मिक विकृतियाँ, व्यक्ति एवं समाज को पतनोन्मुख बना रही हैं। परन्तु जब प्रत्येक बूँद (व्यक्ति) का सदुपयोग होगा और हर व्यक्ति समाज के रचनात्मक कार्यों में संलग्न होगा तभी समाज विकसित होगा। नागरजी की यही दृष्टि उपन्यास में व्यक्त हुई है — “व्यक्ति-व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिंतन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रखना अनिवार्य हो।”

उपन्यास का कथानक प्रमुख रूप से एक चित्रकार सज्जन वर्मा तथा प्रगतिशील विचारों वाली युवती वनकन्या से संबद्ध है। सज्जन पूर्वजों से प्राप्त की हुई अपार



संपत्ति का मालिक है और मध्यवर्गीय सामान्य जनजीवन के अध्ययन हेतु लखनऊ के चौक मोहल्ले में ताई का किरायेदार बनकर रह रहा है। उसका परिचय वनकन्या से होता है, जो अपने अपराधी पिता के खिलाफ संघर्षरत है। वनकन्या के सान्निध्य से सज्जन को नवीन दिशा प्राप्त होती है। नारी, विवाह एवं प्रेम के प्रति उसकी स्वच्छन्द धारणा में परिवर्तन आता है। अनेक गतिविधियों में साथ-साथ भाग लेकर सज्जन और वनकन्या अंततः एक सूत्र में बँध जाते हैं।

कथा में सज्जन के परम प्रिय मित्रों के रूप में अंग्रेजी दवाओं की दुकान के मालिक कर्नल नगीन चन्द्र जैन तथा प्रगतिशील विचारों के आस्थावादी मध्यवर्ग के साहित्यकार महिपाल शुक्ल का वर्णन है। महिपाल का चरित्र अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। समाज में व्याप्त कुरीतियों और बुराइयों के प्रति उसके मन में आक्रोश है। वह रूढ़ियों का घोर विरोधी है परन्तु भक्त भी है। उसकी स्थिति उपन्यास में उस बुद्धिजीवी की है जो समाज व्यवस्था से तो असन्तुष्ट है परन्तु उसे बदलने के लिए उसके पास धैर्य और दृढ़ता नहीं है। अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान न कर पाने के कारण वह आत्महत्या कर लेता है। उपन्यास में महिपाल का चरित्र यथार्थ के अधिक निकट होने के कारण पाठकों की सहानुभूति अर्जित करता है। कर्नल, महिपाल की अपेक्षा स्पष्टवादी और व्यावहारिक व्यक्ति है।

मानव-सेवा को जीवन का उद्देश्य माननेवाले सशक्त एवं प्रभावशाली पात्र रामजी बाबा की उपन्यास में उपस्थिति चमत्कारी प्रतीत होती है। समाज के बहिष्कृत व्यक्तियों एवं पागलों की सेवा करनेवाले बाबाजी अत्यंत गंभीर, अनुभवी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा कर्तव्य-परायण पात्र के रूप में चित्रित हैं। कहीं-कहीं उनका चमत्कार तथा दूसरे की बात जान लेने की क्षमता अव्यावहारिक अवश्य लगती है परन्तु कुल मिलाकर उनका यथार्थपरक चिंतन उन्हें कोरे आदर्श से दूर रखकर उनके प्रति पाठकों के मन में कुतूहल उत्पन्न कर देता है। नागरजी की आस्था एवं सृजनात्मक गतिविधियाँ बाबा रामजी के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। बाबा रामजी के रूप में नागरजी ने यथार्थ जीवन के इस 'असाधारण साधारण पुरुष' को लगभग यथावत् प्रस्तुत किया है। नागरजी के जीवन पर भी बाबा रामजी का व्यापक प्रभाव रहा है।

उपन्यास के पात्रों में पाठकों पर सबसे अधिक प्रभाव छोड़ती हैं - ताई। लखनऊ के रईस की परित्यक्ता पत्नी के रूप में ताई के वर्णन में नागरजी ने उनके चरित्र के कई पक्षों को जिस रूप में उभारा है, उससे उपन्यासकार की पात्र-सृष्टि की अद्भुत क्षमता का पता लगता है। जीवन की विषम परिस्थितियों ने ताई के अंदर मानो विश्व भर की कुंठा, घृणा और हिंसा को प्रतिष्ठित कर दिया है। जादू-टोना-टोटका द्वारा सबको मार डालने का मानो उन्होंने संकल्प ले रखा है। अपने पति के नाती तक को मार डालने का उनका प्रयास उनकी हिंसक भावना को इंगित करता है। वास्तव में ताई

में ये सारी भावनाएँ प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण निर्मित हुई थीं। अनुकूल परिस्थितियों में उनकी स्त्री-सुलभ कोमलता तथा ममता का आभास भी मिलता है। बिल्ली के बच्चों के प्रति अनुराग, सज्जन के प्रति उनका ममत्व तथा तारा के प्रसव के समय पूर्ण सहयोग भावना इस बात के प्रमाण हैं। उपन्यास में ताई के चरित्र का वर्णन लेखक के मानवीय मनोविज्ञान की जानकारी को प्रमाणित करता है।

उपन्यास में रूढ़ियों, अंधविश्वासों और अनेक कुंठाओं में उलझी हुई ताई और नन्दो जैसी नारियाँ हैं तो शीला स्विंग, चित्रा राजदान जैसी उच्चखल महिलाएँ भी चित्रित हैं। कल्याणी अपनी असहायता का चित्रण करती है। उपन्यासकार ने वनकन्या के रूप में स्वस्थ सामाजिक वातावरण के निर्माण का प्रयत्न किया है।

समाज के छोटे-छोटे वर्गों के पात्र उपन्यास में बड़ी संख्या में चित्रित किए गए हैं। अपने व्यंजक विवरणों से नागरजी ने उपन्यास को सजीव बना दिया है। उनके वर्णनों ने गलियों मुहल्लों को जीवन्त बना दिया है।

लखनऊ शहर की भाषा, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार तथा वेष-भूषा का यथार्थ वर्णन इस उपन्यास को 'आंचलिक उपन्यास' के पद पर प्रतिष्ठित करता है। इस आंचलिक उपन्यास की एक विशेषता यह है कि इसका कथानक अब तक के आंचलिक उपन्यासों की भाँति ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध न होकर शहर से जुड़ा है। इसलिए इसे 'नागरिक आंचलिकता' से सम्पन्न उपन्यास कह सकते हैं।

उपन्यास में अनेक पात्रों के माध्यम से समाज की अनेक कुत्सित परंपराओं, अवस्थाओं तथा दुराचारों को उद्घाटित किया गया है। लेखक ने पूँजीपतियों, सांप्रदायिक शक्तियों तथा राजनीतिक दलों और नेताओं पर यत्र-तत्र प्रहार किए हैं। उपन्यास में मध्यवर्ग के पुरुष और नारी समाज की बुराइयों को यथार्थ रूप में अंकित करते हुए समाज की गतिशीलता एवं उन्नति के लिए व्यक्ति की सामाजिक चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है।

'बूँद और समुद्र' में स्वाधीनता के बाद के भारत की बदलती सामाजिक व्यवस्था का सम्पूर्ण चित्र अंकित है। इसमें पुरातन एवं नवीन संस्कृति और सभ्यता का बड़ा ही रोचक वर्णन है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार - 'बूँद और समुद्र' में जितना सामाजिक अनुभव संचित है, वह उसे अपने ढंग का विश्वकोश बना देता है।.....निःसंदेह स्वाधीन भारत का यह श्रेष्ठ उपन्यास है।"<sup>10</sup>

## शतरंज के मोहरे :

१९५८ में रचित 'शतरंज के मोहरे' नागरजी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। उन्होंने इस उपन्यास में अवध क्षेत्र के राजनीतिक घटनाक्रम के माध्यम से १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का जीता-जागता चित्र अंकित करने का प्रयास किया है। सन् १८२०



से लेकर सन् १९३७ ई. तक के लखनऊ के नवाबी शासन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास १८५७ के गदर के पहले की प्रामाणिक पूर्व-पीठिका प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक तथ्यों को नीरस रूप में प्रस्तुत न करके तलस्पर्शी दृष्टि से नागरजी घटनाओं के अंतराल में पैठते हैं तथा अपनी लेखनी से इतिहास के साथ-साथ जन सामान्य के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रभावशाली चित्रण करते हैं। यह उनकी अपनी विशेषता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने तत्कालीन शासकों-नवाबों पर व्यंग्य की गहरी चोटें की हैं तथा साधारण जनता के दुख-दर्द के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है।

उपन्यास में इतिहास और कल्पना का परिमाण समान रखा गया है। ऐतिहासिक तथ्यों का उतना ही समावेश किया गया है जिससे कथा नीरस और बोझिल न हो। कथा को सरस बनाने के लिए कल्पना का सहारा लिया गया है। एक सजग लेखक की भाँति लेखक ने कल्पना और इतिहास का संतुलन बनाए रखा है। प्रतिपाद्य, पात्र एवं प्रधान घटनाएँ सभी ऐतिहासिक हैं। प्रधान पुरुष पात्रों में गाजी-उद्दीन, नसीरुद्दीन हैदर, आगामीर, मुन्नाजान, कैवांजाह, हकीम मेंहदी आदि तथा प्रधान नारी पात्रों में बादशाह बेगम, दुलारी, कुदसिया बेगम आदि इतिहास से लिये गये चरित्र हैं। अधिकांश अंग्रेज पात्र भी ऐतिहासिक हैं। लेखक ने स्थान-स्थान पर अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए ब्रह्मचारी नामक पात्र की कल्पना कर ली है। इसके अतिरिक्त ठाकुर दिग्विजय सिंह तथा उसकी कथा के क्रम में आए अनेक लघु पात्र कल्पना-प्रसूत हैं। दुलारी से संबद्ध पात्र रुस्तम अली तथा उसका सौतेला भाई ऐतिहासिक पात्र हैं परन्तु दुलारी से जुड़ी आरंभिक कथा काल्पनिक है।

उपन्यास का नामकरण काव्यात्मक है और उसके ऐतिहासिक उद्देश्य को भलीभाँति प्रकट करनेवाला है। इसका प्रतीकात्मक शीर्षक 'शतरंज के मोहरे' अपने प्रतीक को कथा के माध्यम से स्थान-स्थान पर व्यक्त करता चलता है। उपन्यास के पात्र शतरंजी मोहरों जैसे अपने आचरण-व्यवहारों से यह सिद्ध करते चलते हैं। प्रेमचंद ने 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी लिखकर लखनऊ के नवाबी-शासन के अन्तर्गत हासशील जीवन को पूरी यथार्थता के साथ उभारा था। इस कहानी में भी नवाबों की स्थिति शतरंज के मोहरों से अधिक नहीं थी। आलोच्य उपन्यास को उसी कहानी के भाष्य के रूप में देख सकते हैं। यह भी संभव है कि इस उपन्यास को रचे जाने की पृष्ठभूमि में यह कहानी प्रेरक रही हो।

कथावस्तु के संक्षिप्त वर्णन से उपन्यास के शीर्षक का औचित्य स्वतः सिद्ध हो जाता है। उपन्यास की कथा का संबंध शाहे-अवध गाजीउद्दीन हैदर तथा उनके पुत्र

नसीरुद्दीन हैदर के शासनकाल से है। इन नवाबों के शासन में भ्रष्टाचार, स्वार्थ, अराजकता, कुचक्र, आतंक, छल, प्रपंच आदि का साम्राज्य राजमहल से लेकर पूरे समाज में व्याप्त था। नवाबों के अंतःपुर कुचक्रों के अड्डे थे। नैतिकता इस हद तक गिर गई थी कि दासियों एवं धोबियों के सम्पर्क से उत्पन्न नवाबों के पुत्र गद्दी के अधिकारी घोषित किए जा रहे थे। गाजीउद्दीन हैदर अवध का बादशाह था, वह निःसंतान था। उसकी पत्नी बादशाह बेगम अपने अहंकारी स्वभाववश पति से अलग रहती थी। गाजीउद्दीन हैदर का वजीर आगामीर नवाब को अपने वश में किए हुए था। अपनी प्रभुत्व-सिद्धि के लिए निःसंतान बादशाह बेगम दासी-पुत्र नसीरुद्दीन को "एक खेल के मोहरे की तरह इस्तेमाल" करती है और अपने प्रयास में सफल होती है। गाजीउद्दीन हैदर का वजीर आगामीर उसके इस षड्यंत्र को विफल करने की पूरी चेष्टा करता है परन्तु बादशाह बेगम की योजना को रूपायित करने से रोक नहीं पाता। बादशाह गाजीउद्दीन यह जानकर भी कि नसीरुद्दीन उसका पुत्र नहीं है कुछ कर नहीं पाता और नपुंसक क्रोधी बना रहता है। वह अपने मन का बादशाह नहीं "शतरंज के मोहरों जैसा नकली बादशाह" है। गाजीउद्दीन हैदर की मृत्यु के बाद बादशाह बेगम दासीपुत्र नसीरुद्दीन को तमाम कुचक्रों एवं षड्यंत्रों के बावजूद राज्य दिलाने में सफल होती है। यह नया बादशाह भी नवाबी शासन की पुरानी परंपरा को कायम रखते हुए भोग-विलास में आकण्ठ डूब जाता है। उसकी विलासिता कुचक्रों की रचना में सहायता देती है। उसकी दासियाँ एवं प्रेमिकायें उसे अपने प्रेम जाल में फँसाकर शतरंजी चालें चलती रहती हैं। नवाब की प्रेमिका दुलारी अपने पुत्र को राजगद्दी दिलाने के लिए तत्पर होकर षड्यंत्र करती है। विवश नसीरुद्दीन आशंका और भयग्रस्त होकर मर जाता है। बादशाह बेगम नए उत्तराधिकारी मुन्नाजान को गद्दी पर बिठा देती है परन्तु तब तक नवाबी शासन की नींव हिल चुकी होती है और अंग्रेज फौजें महल में प्रवेश कर जाती हैं। १८३७ में अवध की गद्दी पर अंग्रेज अपने मोहरों को बैठाने में सफल हो जाते हैं।

इस मुख्य कथा के साथ जुड़ी-प्रासंगिक कथाओं में दुलारी, रुस्तम अली आदि पात्रों का वर्णन है। अपने यौवन और रूप-जाल में एक साधारण सिपाही की बीबी दुलारी, नसीरुद्दीन हैदर तक को फँसा लेती है और 'मलिकाएँ-जमानियाँ' का खिताब प्राप्त करती है। राजा शिवनन्दन सिंह ठाकुर तथा दिग्विजय ब्रह्मचारी की कथा के साथ उपन्यास में कुछ गौण कथाएँ भी हैं।

उपन्यास में उपर्युक्त कथा के साथ कई समस्याएँ उठाई गई हैं। तत्कालीन सामंतवादी व्यवस्था अपनी सारी विकृतियों के साथ उपन्यास में चित्रित है। सामन्तवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य जनता की दयनीय दशा का चित्रण कर उपन्यासकार ने शोषण, अत्याचार और वर्ग वैषम्य से युक्त तत्कालीन इतिहास की जानकारी हमें दी है।



उपन्यास में नारी जीवन की विवशता का चित्रण लेखक ने पूरी सहानुभूति के साथ किया है। इस उपन्यास में वेश्याओं के अतिरिक्त नवाबों की परित्यक्ता बेगमों, नवाबों की कामवासना की शिकार दासियाँ तथा अंग्रेजी जुल्म की शिकार अनेक लाचार नारियाँ हैं जो उस काल की नारी की दारुण दशा का बखान करती हैं। लेखक ने नारी जाति के शोषण एवं अत्याचार को मानवीय दृष्टिकोण से चित्रित किया है।

नागरजी ने इस उपन्यास में दिग्विजय ब्रह्मचारी, नईमुल्ला तथा शाह साहब के माध्यम से आस्थावादी चेतना व्यक्त की है। उपन्यास में उर्दू तथा अवधी भाषा का प्रसंगानुकूल वर्णन इस रूप में मिलता है कि १५० वर्षों की लखनवी संस्कृति साकार हो उठती है। सुदृढ़ कथानक के साथ-साथ रोचकता इस ऐतिहासिक उपन्यास को शुष्कता से बचाती है। 'बूँद और समुद्र' की भाँति इस उपन्यास में भी पात्रों की बहुलता है जिससे तत्कालीन जीवन का बहुविध-चित्रण उपन्यास में मिल जाता है।

उपन्यास के अधिकांश पात्र जनता से संबंधित हैं। नागरजी ने समाज की पीड़ित जनता तथा त्रस्त नारी का चित्रण कर अपनी जनवादी चेतना प्रकट की है।

### सुहाग के नूपुर :

नागरजी का पाँचवाँ उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' दक्षिण भारत के इतिहास और संस्कृति से संबद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। १९६० में रचित इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना का आधार महाकवि इलंगोवन रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' की कथा है। इस कथावस्तु के आधार पर रचित होने के बावजूद यह उपन्यास "प्रायः एक स्वतंत्र रचना है।"<sup>२०</sup> लेखक के अनुसार 'शिलप्पदिकारम्' की मूल कथावस्तु अति प्राचीन काल से इस देश के साहित्य में प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। घिसी-पिटी थीम होने पर भी पॉपुलर उपन्यास के लिये मुझे वह अच्छी लगी, मैं अपने दृष्टिकोण से उसमें नवीनता देख रहा था।"<sup>२१</sup> लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि उसने कथा को यथावत् न रखकर अपने दृष्टिकोण से नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है।

कथावस्तु के अनुरूप वातावरण का निर्माण करने में नागरजी ने तत्कालीन जीवन पर प्रकाश डालने वाले अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों का अध्ययन कर सजीव पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। नागरजी ने इतिहास के साथ कल्पना के संयोग से पत्नी बनाम वेश्या की प्राचीन समस्या को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास का संघर्ष कुलवधू और नगरवधू का है - सुहाग के नूपुरों और नर्तकी के घुँघरुवों का है। उपन्यास का यह संघर्ष अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंदर एक गहरे सामाजिक आशय को समेटे हुए है। उपन्यास में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि समाज के नियामक पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता के कारण ही नारी एक ओर कुलवधू के रूप में तो दूसरी ओर वेश्या बनकर कष्ट भोगने के लिए बाध्य है।

उपन्यास की दोनों प्रमुख नारी पात्रों — कन्नगी और माधवी की समस्याओं के प्रति उपन्यासकार को गहरी सहानुभूति है। इन नारियों में कन्नगी गृहवधू के रूप में पीड़ित है तो माधवी नगरवधू के रूप में। अभिव्यक्ति वैशिष्ट्य तथा प्रभावशाली कथा के माध्यम से नागरजी ने दोनों की व्यथा को बड़े हृदयग्राही रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य नारी जाति के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त कर उसे समाज व्यवस्था के अन्तर्गत उचित अधिकार दिलाना है।

उपन्यास में माधवी वेश्या होकर भी कुलवधू के आसन की प्राप्ति के लिए अपने प्रेमी कोवलन के प्रति संपूर्ण निष्ठा से समर्पित है परन्तु पुरुष-प्रधान समाज उसे कुलवधू का गौरव नहीं दे पाता। समाज का नियामक पुरुष वेश्या को हर स्थिति में वेश्या ही रहने देना चाहता है। पुरुष-प्रधान समाज का प्रतिनिधि कोवलन कुलवधू कन्नगी को भी तड़पने को विवश करता है इसका कारण नगरवधू माधवी के प्रेम व मादक सौंदर्य पर उसकी आसक्ति है। समाज की प्रतिष्ठा एवं कुलवधू की गरिमा की रक्षा हेतु कन्नगी शांत-भाव से पीड़ा सहती रहती है। इस प्रकार दोनों नारियाँ पुरुष की स्वार्थ-लिप्सा के कारण अपने-अपने क्षेत्रों में घुट रही हैं। उपन्यास में अपनी कल्पना के किंचित् सहयोग से नागरजी ने इस समस्या को बड़े ही आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में कुलवधू के पद पर प्रतिष्ठित नारी को अपदस्थ करके एक वेश्या स्वयं वह स्थान प्राप्त करना चाहती है। उसकी नजर कुलवधू के 'सुहाग के नूपुर' पर है। अपने प्रति कोवलन की आसक्ति मात्र से उसे संतोष नहीं होता, नूपुरों की कामना उसे व्याकुल किए रहती है। समाज की अस्वीकृति के कारण वह ईर्ष्यालु, विद्वेषी और हिंसक हो जाती है। दूसरी ओर कन्नगी कुलवधूत्व की गरिमा की पूरी रक्षा करती है। उपन्यासकार ने माधवी के चरित्र को इन दूषित वृत्तियों को रेखांकित कर कुलवधू कन्नगी की शिष्टता और धैर्य को उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। नागरजी की यह दृष्टि उचित ही है। परन्तु माधवी के माध्यम से वे समाज के अधर्म और अन्याय की उन विसंगतियों को भी स्पष्ट करते हैं जिनके कारण नारी एक वेश्या के रूप में जीने के लिए विवश है। माधवी के विविध संवादों के बहाने उपन्यास लेखक नारी को वेश्या की नियति से मुक्त कराने का मार्ग खोजता प्रतीत होता है।

उधर कन्नगी की पीड़ा भी असीम है। वह अपने पति द्वारा अत्यधिक तिरस्कृत और पीड़ित होकर उसके अत्याचार को मूक भाव से सहन करने के लिए लाचार है क्योंकि सामाजिक मान्यताएँ पत्नी को पति का विरोध करने की अनुमति नहीं देती। इस प्रकार समाज दो विपरीत स्थितियों वाली नारी को कराहने व पिसने के लिए विवश कर देता है। यही विवशता इस उपन्यास में प्रभावशाली ढंग से प्रकट हुई है।

समस्या प्रधान उपन्यास होते हुए भी इसकी कथा अपनी रोचकता तथा वर्णन-



वैशिष्ट्य के कारण पाठक को आदि से अंत तक बाँधे रखती है। उपन्यास में नागरजी का आस्थावादी और आशावादी स्वर मुखरित हुआ है। इस उपन्यास ने यह सिद्ध किया है कि नागरजी की रुचि केवल उत्तर भारत की संस्कृति और इतिहास तक ही सीमित नहीं है, वे दक्षिण भारत के इतिहास और सांस्कृतिक जीवन के प्रति भी समान रुचि रखते हैं। उपन्यास की अंतिम पंक्तियों में उपन्यास का संदेश स्पष्ट है — “पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अधांग-नारी जाति-पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।”<sup>22</sup>

### अमृत और विष :

नागरजी के सामाजिक उपन्यासों में ‘अमृत और विष’ (१९६५) का महत्वपूर्ण स्थान है। ‘बूँद और समुद्र’ की भाँति इस उपन्यास ने भी विशेष ख्याति अर्जित की है। यदि ‘बूँद और समुद्र’ के वृहत्-कलेवर में भारत का मध्यवर्ग अपने गुण-दोष के साथ उपस्थित है तो ‘अमृत और विष’ में पात्रों का वैचारिक द्वन्द्व और आत्मसंघर्ष भी व्यक्त हुआ है। ९ वर्षों के अंतराल वाले इन दो सामाजिक उपन्यासों के अध्ययन से नागरजी की विकसित औपन्यासिक दृष्टि का आभास मिलता है। इस उपन्यास को नागरजी की उपन्यास-कला का अगला सोपान माना जा सकता है।

उपन्यास में समाज की कमजोरियों और अंध-परंपराओं का पुनर्विश्लेषण लेखकीय प्रौढ़ता के साथ किया गया है। स्वाधीनता के बाद के भारत की समस्याओं को चित्रित करने के लिए वह कथा का आरंभ विक्टोरिया युग से करता है और फिर उस कथा को देश के स्वातंत्र्योत्तर युग तक की गतिविधियों से जोड़ देता है। कथा में तत्कालीन राजनीति, संस्कृति, अर्थनीति, जीवन-मूल्य, नैतिक आदर्श और विभिन्न वर्गों के उत्थान-पतन का संकेत मिल जाता है। उपन्यास में इस बात की ओर लेखक ने इशारा किया है— “इस अपनी डायरी और उपन्यास में मेरे पड़बाबा और उनके बाबा तक के जमाने से लेकर अपने जमाने तक की न जाने कितनी परिस्थितियाँ, कितने चरित्र एक बार फिर से जी उठे और फिर इसी अनुभव, विचार और कल्पना शक्ति से न जाने कितनी परिस्थितियाँ, चरित्र और चित्र गढ़ते चले गये।”<sup>23</sup> इन सबके साथ बहुधा समरस और समभाव होकर लेखक ने पात्रों की कल्पना की है।

इस उपन्यास में दो समानांतर गाथायें चलती हैं। इसका शिल्पगत वैशिष्ट्य यह है कि इसमें उपन्यास के भीतर उपन्यास है। एक उपन्यास आत्मकथात्मक है जिसमें लेखक आलोच्य उपन्यास के प्रमुख पात्र अरविन्दशंकर की आत्मकथा के माध्यम से

स्वातंत्र्य के लिए संघर्षरत भारत के ऐतिहासिक संदर्भों का विश्लेषण करता है। यह अंश नागरजी की विविध वैचारिक मान्यताओं का समुचित ज्ञान कराता है। दूसरा उपन्यास वह है जिसे लिखकर देने के लिए अरविन्दशंकर ने पद्मनाभ प्रकाशन से दो हजार रुपये अग्रिम ले तो लिए हैं, परन्तु डेढ़ वर्ष से वह उन्हें लिखकर नहीं दे सका है। प्रतिश्रुति की पूर्ति हेतु कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर लिखा गया उपन्यास ही दूसरा उपन्यास है। इस दूसरे उपन्यास के कथानक की कल्पना अरविन्द शंकर अपने यथार्थ-जीवन के परिचित व्यक्तियों एवं प्रसंगों में किंचित फेर बदल करते हुए कर लेता है।

उपन्यास का कथानक अरविन्दशंकर की षष्टिपूर्ति समारोह के आयोजन से प्रारंभ होता है। यह समारोह अरविन्दशंकर के आई.ए.एस. पदाकांक्षी पुत्र उमेश की प्रेरणा से होता है। इस आयोजन के द्वारा उमेश मंत्रियों, नेताओं तथा विशिष्ट व्यक्तियों को एकत्रित कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। आयोजन की धूम-धाम और चमक-दमक के बीच अरविन्दशंकर दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक हो जाता है। उसे सारा आयोजन एक ढोंग सा प्रतीत होता है। वह सोचता है — “साठ वर्ष इस दुनिया में बिता दिये — अनुभवों का जुलूस दिल्ली में निकलने वाले गणतंत्र दिवस के रंगारंग दृश्यों की भाँति अविराम गति से चल पड़ा। एक विशाल ‘केनवास’ पर एक साथ अनगिनत चित्र उभर पड़े.... विविध अनुभवों भरे सारे जीवन ने एकाएक धावा बोलकर मेरे ध्यान का साम्राज्य जीत लिया।.... सोचता हूँ अपनी जीवन कहानी लिख डालूँ। जनम भर उपन्यास और कहानियों में दूसरों के देखे-सुने और अपने गढ़े हुए किस्से लिखे, एक अपना भी लिखकर रख जाऊँ।.... आत्मकथा के संक्षिप्त नोट्स लिखते-लिखते संभव है मेरी सरस्वती फिर से जाग उठे और उपन्यास भी आरंभ हो जाय।”<sup>३४</sup>

अरविन्दशंकर अपनी संपूर्ण जीवन-यात्रा पर नजर दौड़ाकर अपने व्यतीत का पुनरवलोकन करता है। अपने सम्मान के बीच उसे अपना अभावग्रस्त एवं अशान्त अतीत याद आता है। असन्तुलित पारिवारिक जीवन तथा जीवन की भयावह परिस्थितियाँ उसके वर्तमान को भी दुखप्रद बनाए हुए हैं। ऐसी दशा में षष्टिपूर्ति का सारा आयोजन उसे हास्यास्पद प्रतीत होता है। उसे अनुभव होता है कि सम्मान समारोह में सब अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु उपस्थित हैं।

उपन्यास का यह अंश भारत के एक मध्यवर्गीय लेखक की टूटती जिंदगी की कहानी है। इस लेखक की कुण्ठा के माध्यम से उपन्यासकार ने मानो प्रत्येक भारतीय मध्यवर्गीय लेखक की अवस्था चित्रित की है। कुंठित अरविन्दशंकर को साहित्य-सृजन, देश-प्रेम, मानवता, सत्य-न्याय और ईमानदारी सब निरुद्देश्य और व्यर्थ लगता है। उसमें उदासी और घुटन व्याप्त होने लगती है। तभी तो वह अत्यंत कुंठाग्रस्त होकर ‘आत्महत्या’ तक के बारे में सोचने लगता है।

ऐसी मानसिक परिस्थिति में हेमिंग्वे कृत उपन्यास ‘बूढ़ा मछेरा और समुद्र’ का



बूढ़ा मछेरा उसे प्रेरणा देता है और उसे जीवन-पथ पर आस्था के साथ गतिशील करता है। अपने साथ घसीटकर साथ ले चलने वाला उसका बचपन का साथी बछड़ा भी उसे प्रेरक-शक्ति प्रदान करता है। ये दोनों संदर्भ उसकी कुंठा और निराशा को समाप्त कर उसे आस्थावान और कर्मठ बनाते हैं, उसमें जीवनी शक्ति का संचार करते हैं—“जड़-चेतनमय, विष-अमृतमय, अंधकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अंधकार में ही प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।”<sup>१५</sup>

दूसरा कथानक अरविन्दशंकर द्वारा रचित उपन्यास से सम्बद्ध है। यह उपन्यास लखनऊ नगर के एक मुहल्ले से प्रारम्भ होता है। इसकी समस्त घटनाओं का केन्द्र बिन्दु राजा केशोराय की बारादरी है। इस बारादरी में मुहल्ले के मध्यवर्गीय परिवारों के युवक एकत्र होकर अपनी गतिविधियाँ संचालित करते हैं। इन नवयुवकों के माध्यम से लेखक ने उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर भारत के नवयुवकों की आशाओं, आकांक्षाओं तथा कुंठाओं को चित्रित किया है, क्योंकि आनेवाला युग तो इन्हीं का है। नवयुवकों के नायक रमेश की बहन के विवाह की तैयारियों के साथ इस दूसरे उपन्यास का आरम्भ होता है। विवाह-व्यवस्था में रमेश अपने मित्र लच्छू तथा अन्य साथियों की मदद से जी-जान से संलग्न है। विवाह के प्रबंध में महिलाओं के बीच रद्दुसिंह की बाल विधवा पुत्री रानीवाला राठौर अपनी कार्यकुशलता तथा सद्व्यवहार से लोगों को प्रभावित करती है। वह रमेश की बहन मन्नो की सहेली है। रमेश भी उसके निकट आता है और उससे प्रेम करने लगता है। रानी इंटर में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के बाद रमेश की प्रेरणा से अपनी पढ़ाई जारी रखती है। रमेश की चेष्टा से उसे 'इंडिपेन्डेन्ट' के संपादक खन्ना साहब तथा उनकी पत्नी कुसुमलता खन्ना का सद्भाव प्राप्त होता है। वे उसे ट्यूशन दिला देते हैं। रमेश और रानी को खन्ना दम्पति की अपार कृपा प्राप्त होती है और अंततः दोनों विवाह-सूत्र में আবद्ध होते हैं। वे किराए के मकान में अपनी अलग गृहस्थी जमाते हैं। इसी क्रम में रमेश अपने साथी लच्छू को सारसलेक भेजकर डॉ. आत्माराम के सेक्रेटरी के रूप में नौकरी दिला देता है। लच्छू के चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने एक शिक्षित, उत्साही तथा परिश्रमी युवक के सृजनात्मक एवं विध्वंसात्मक दोनों ही रूपों को उजागर किया है। लच्छू का चारित्रिक पतन स्वातंत्र्योत्तर युवकों की मूल्यहीनता तथा दिशाहीनता का सूचक है।

उपन्यासकार ने प्राकृतिक विपत्ति के समय युवकों की संगठित-शक्ति का संकेत देने के लिए गोमती में आई भीषण बाढ़ का चित्रण किया है। रमेश के नेतृत्व में युवा-टोली ने बाढ़ में बचाव कार्य किया और अत्यंत लोकप्रिय हो गई। केशोराय की बारादरी में लाला रुप्यन द्वारा मंदिर बनवाने के प्रयास का इस युवा-टोली ने विरोध

किया और गिरफ्तार हुए। इन संघर्षशील युवकों ने रुप्यन लाला के बारादरी पर कब्जे के षडयंत्र का पर्दाफाश किया। सड़ी-गली परंपराओं, मुनाफाखोरी, मृतधार्मिकता और जड़-बंधनों के विरुद्ध युवकों का यह आक्रोश पुरातनपंथियों को परास्त करता है।

कथा के साथ नागरजी ने उपन्यास में स्वाधीनता के बाद के भारत की गतिविधियों को भी जोड़ दिया है। आम चुनाव की सरगर्मी, राजनीतिक दलों का परस्पर संघर्ष, साम्प्रदायिक वैमनस्य, युवकों की अराजकता, असामाजिक तत्त्वों के कार्यकलाप बड़े ही प्रभावशाली रूप में उपन्यास में चित्रित हैं। लघु-कथाओं के रूप में लाल साहब और वहीदन की कथा, नवाब अनवर मिर्जा और गेहांबानू की कथा तथा चोइथराम सिंधी की कथा तत्कालीन समाज का यथार्थ अंकित करती है।

उपन्यास का सन्देश है कि यदि युवकों को समुचित मार्गदर्शन मिले तो वे समाज निर्माण में सहायक हो सकते हैं — गलत संगति उन्हें कुमार्ग पर ले जाती है।

उपन्यास का आस्थापरक अंत नागरजी के जीवनदर्शन को स्पष्ट करता है। समाज के सारे जड़बंधनों तथा संकीर्ण स्वार्थों से अनवरत युद्ध का संकल्प लेकर वे सृजन कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

इस प्रकार 'अमृत और विष' दो कथानकों को साथ लेकर लिखा गया उपन्यास है। दोनों ही कथानक एक दूसरे से स्वतंत्र हैं परन्तु नागरजी ने अपने परिश्रम से दोनों कथानकों का संबंध स्थापित कर दिया है। नागरजी पहले उपन्यास में अरविन्द शंकर का इतिवृत्त बताते हुए दूसरे उपन्यास के पात्रों की अवतारणा करते हैं और इस प्रकार वे अपनी रचना-प्रक्रिया भी स्पष्ट करते चलते हैं। प्रत्यक्षतः असंबद्ध होते हुए भी दोनों कथानक एक दूसरे से संबद्ध हो गए हैं। दोनों बेमेल कथानकों में अद्भुत सामंजस्य है। इस प्रकार नागरजी की शिल्पगत क्षमता का प्रमाण देनेवाला उपन्यास 'अमृत और विष' नागरजी की उपन्यास-यात्रा का महत्त्वपूर्ण सोपान है।

इस उपन्यास में विष की अधिकता में दीखती हुई अमृत की बूँदें नागरजी की आस्था, सृजनशील व्यक्तित्व और रचनात्मक भविष्य के प्रति संघर्षशील चेतना की द्योतिका हैं। उपन्यास में स्वाधीन भारत के विघटित होते मूल्यों, परिवर्तनशील समाज की विकृत गतिविधियों, भ्रष्टाचार, अराजकता, अकर्मण्यता और सड़ी-गली मान्यताओं को यथार्थ के स्पर्श से विष रूप में चित्रित किया गया है। लेखक ने अपने आस्थावादी चिंतन तथा मानवतावादी दृष्टि से उस विष का निराकरण करके कर्म और सत्य का अमृत निकालने का सत्प्रयास किया है। स्वार्थों और जड़-बंधनों से मुक्त होकर ही समाज का विष अमृत में बदल सकता है। विषाक्त वातावरण को अमृतत्व से युक्त करने का दायित्व स्वाधीन भारत के तरुणों का ही है। 'अमृत' शब्द प्रगतिकामी



शक्तियों के लिए तथा 'विष' शब्द प्रतिगामी शक्तियों की व्यंजना के लिए प्रयुक्त हुआ है। विषरूपी शक्तियों से अमृतरूपी शक्तियों तक ही उपन्यास की कथा फैली हुई है।

### सात घूँघट वाला मुखड़ा :

१९६८ में रचित 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित नागरजी का लघु उपन्यास है। इतिहास के रहस्यमय चरित्र बेगम समरू के बारे में ऐतिहासिक तथ्यों, प्रचलित किंवदंतियों एवं लेखक की कल्पना के योग से इस उपन्यास की कथा का गठन किया गया है। किंवदंतियों एवं कल्पना के योग से इतिहास की घटना रोचक एवं आकर्षक बन गई है।

उपन्यास की विज्ञप्ति में नागरजी ने लिखा है - "यह इतिहास नहीं, ऐतिहासिक चरित्र प्रधान उपन्यास है। तिथियों और घटनाओं के क्रम-परिवर्तन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार इसमें कर लिए गए हैं, क्योंकि बेगम समरू का इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदन्तियों से भरा हुआ है।"<sup>२६</sup>

उपन्यास का प्रतिपाद्य १८वीं सदी के अंग्रेजों एवं मुगलों के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करता है। इस समय अंग्रेजों, मीर कासिम तथा शुजाउद्दौला के आपसी संघर्ष में भारतीय राजनीति झूल रही थी। उपन्यास में मीर कासिम के पक्ष में लड़नेवाले एक फ्रांसीसी सैनिक वाल्टर रेनहार्ड का चित्रण किया गया है। रेनहार्ड ने पटना में धोखा देकर दावत में बुलाए गए १४८ अंग्रेज, यूरोपियन अफसरों की हत्या कर डाली थी। महत्वाकांक्षी वाल्टर रेनहार्ड आगे चलकर 'समरू' नाम से प्रख्यात हुआ और बादशाह को खुश करके 'सरधना' की जागीर पाकर उसका मालिक बन गया। उपन्यास की कथावस्तु इस नवाब समरू के व्यक्तिगत एवं राजनीतिक जीवन को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित करनेवाली 'बेगम समरू' के इर्द-गिर्द घूमती है। बेगम समरू के समय की ऐतिहासिक घटनाएँ कथानक को गतिशील बनाती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण उपन्यास एक ही चरित्र के आस-पास केन्द्रित है।

'सात घूँघट वाला मुखड़ा' ऐतिहासिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित होने पर भी श्रृंगारपरक उपन्यास माना जा सकता है। इस उपन्यास में नायिका के जीवन के उतार-चढ़ाव देखे जा सकते हैं। उसके विभिन्न नाम उसके चरित्र-विकास का विश्लेषण करते हैं - मुन्नी, दिलाराम, बेगम समरू, जुआना, टामस-प्रिया, लक्सूल-प्रिया आदि उसके प्रेम-व्यापार की स्पष्ट व्यंजना करते हैं। इस विवादास्पद चरित्र वाली बेगम समरू को कई लोग दिल्ली की एक बेगम मानते हैं जिसने कालान्तर में समरू से विवाह करके ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। उसका नया नाम 'जुआना' रखा गया था। उसका कई पुरुषों से यौन-संबंध था। उपन्यास में वह काम-पीड़िता के रूप में ही चित्रित हुई है।

किंवदंतियों के अनुसार उसका दूसरा विवाह 'ली वायस' नामक फ्रांसीसी युवक से हुआ था। सेनापति अंग्रेज अफसर 'सर टॉमस' से भी उसका संबंध था। 'ली वायस' (लवसूल) से विवाह करने के कारण प्रजा ने विद्रोह किया था फलतः लवसूल ने आत्महत्या कर ली थी। लवसूल की मृत्यु के बाद बेगम गिरफ्तार कर ली गई थी।

इन्हीं ऐतिहासिक पात्रों एवम् घटनाओं को लेकर उपन्यास की रचना की गई है। कल्पना के प्रयोग से कथा को नागरजी ने रोचक बना दिया है।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमिवाली कथा के सामाजिक आशय को उपन्यास के माध्यम से समझा जा सकता है। उस काल के समाज की पतित और विघटित अवस्था के चित्र उपन्यास में मिल जाते हैं। राजमहल के कर्मचारियों एवं अधिकारियों में संदेह और अविश्वास के स्पष्ट संकेतों के साथ अंतःपुर की विलासिता का सहज अंदाज उपन्यास से लग जाता है। उस काल के जन-सामान्य की दयनीय दशा उपन्यास में चित्रित है। उपन्यास के पढ़ने से उस काल की नारी की पीड़ादायक स्थिति तथा शोषण का चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। उपन्यास में विलास-जर्जर पुरुष-समाज तथा नैतिकतारहित और मर्यादाहीन नारी-समाज इस प्रकार चित्रित किए गए हैं मानों वे एक दूसरे को पतन के गर्त में गिराने की होड़ लगाए बैठे हों। इस प्रकार टूटन और पतन के चरम बिन्दु पर बैठा तत्कालीन समाज उपन्यास में वर्णित है।

यह उपन्यास मूलतः मनोरंजक एवम् घटना प्रधान है। भाषा भावानुकूल कवित्वपूर्ण और प्रवाहयुक्त है। उर्दू की मिठास और रवानगी के साथ उसका परिष्कृत रूप भी उपन्यास में परिलक्षित होता है।

समग्र रूप से विचार करने पर यह उपन्यास नागरजी के अन्य उपन्यासों की तुलना में शिथिल है। इसकी रचना से नागरजी के उपन्यासों की संख्या में वृद्धि अवश्य हुई है परन्तु उपन्यास जगत में यह उपन्यास कोई गौरवशाली स्थान नहीं बना पाता।

### एकदा नैमिषारण्ये :

सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त नागरजी ने सांस्कृतिक-पौराणिक उपन्यासों की भी रचना की है। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अदम्य निष्ठा उनकी कृतियों में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। देश की राष्ट्रीयता एवम् सांस्कृतिक एकता के वे प्रबल समर्थक हैं। यही कारण है कि जब भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने राष्ट्र की भावात्मक एकता का नारा बुलंद किया तब नैमिष की कथा-यूनिवर्सिटी के संबंध में नागरजी के विचारों को अधिक स्फूर्ति मिली। 'एकदा नैमिषारण्ये' (१९७२) इसी वैचारिक स्फूर्ति की औपन्यासिक परिणति है। कृति के प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक के साथ 'एक सांस्कृतिक उपन्यास'<sup>२०</sup> लिखकर उपन्यासकार ने इसके विषय को स्पष्ट कर दिया है। अपने पुराणकालीन पात्रों एवं प्रसंगों के कारण इस ग्रंथ को



पौराणिक उपन्यास भी माना जा सकता है। नागरजी ने सारी कथा को पुराण-शैली में प्रस्तुत करते हुए जिस विशेष कौशल का परिचय दिया है वह उन्हें सिद्ध कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। नैमिष को केन्द्र मानकर तत्कालीन वृहत्तर आर्य राष्ट्र के ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश में पाठकों को परिभ्रमण कराकर राष्ट्रीय एकता को प्रतिष्ठित करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य रहा है।

नागरजी की मान्यता है कि नैमिष का चौरासी हजार संतों का सम्मेलन कोरा धार्मिक तमाशा नहीं, राष्ट्रीय महत्त्व का आयोजन था। वे लिखते हैं — “नैमिष आन्दोलन को ही मैंने वर्तमान भारतीय या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करने वाला माना है। वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद, ज्ञानमार्ग आदि का अन्तिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में ही हुआ। अवतारवाद रूपी जादू की लकड़ी घुमाकर परस्पर विरोधी संस्कृतियों को घुला-मिलाकर, अनेकता में एकता स्थापित करनेवाली संस्कृति का उदय नैमिषारण्य में हुआ, और यह काम मुख्यतः एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था।”<sup>२८</sup>

१९७२ में रचित इस उपन्यास में इतिहास और संस्कृति का मिश्रण है। उपन्यासकार ने इतिहास को न तो अनावश्यक रूप से दुहराया है और न ही संस्कृति का व्यर्थ आरोपण किया है। अपनी पौराणिक पृष्ठभूमि के साथ उपन्यास उस काल की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करता है।

सन् ४५ में अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान नागरजी मद्रास के कपालीश्वर मंदिर में दर्शन करने गए थे जहाँ मंडप में एक पुराणवाचक तमिल भाषा में कथा सुना रहे थे। नागरजी लिखते हैं, “उनके कथा कहने के ढंग में मुझे अपने यहाँ के कथावाचकों जैसे ही लटकें दिखलाई दिये। मौज में आकर थोड़ी देर के लिए वहीं खड़ा हो गया। पुराणवाचक महोदय ने “एकदा नैमिषारण्यत्तिल.....” कहा, तो मेरे मन में अपनेपन की फुरफुरी सी दौड़ गई। लगा कि हमारी गोमती नदी के तट पर राष्ट्रीय महत्त्व का कम से कम एक पावन क्षेत्र तो है ही, जहाँ सारे पुराण, भागवत, महाभारत आदि ग्रंथ सुनाये गये थे।”<sup>२९</sup>

नागरजी के मन में यह प्रश्न चक्कर काटने लगा कि अयोध्या, काशी, प्रयाग, हरद्वार और मथुरा जैसे प्रमुख तीर्थों को छोड़कर शूत-शौनकादि ने सारे पुराण आखिर वहाँ क्यों बाँचे ? यह ८४००० संतों का मेला किसने आयोजित किया था ? चूँकि संपूर्ण भारत में पौराणिक कथाओं का प्रारंभ ‘एकदा नैमिषारण्ये.....’ से होता है अतः निश्चित रूप से अतीत काल में नैमिषारण्य में कोई महान सांस्कृतिक आयोजन संपन्न हुआ होगा। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल कृत ‘अंधकारयुगीन भारत’ में भारशिवों और वाकाटकों के शासनकाल में एक महान सांस्कृतिक-सामाजिक आन्दोलन चलाये जाने

की बात नागरजी ने पढ़ी। इस ऐतिहासिक सूत्र से उन्हें यह संभावना नजर आने लगी कि चौरासी हजार संतों का मेला उसी समय जुड़ा होगा। उपन्यासकार को प्रातःकाल "गंगा-सिन्धु-सरस्वती च यमुना, गोंदावरी गंडिका" जैसे श्लोक अपना नया राष्ट्रीय अर्थ-बोध देने लगे। सामान्य भारतवासी अपने दैनिक स्नान में सारे भारत की नदियों की कल्पना से भारत की सांस्कृतिक एकता का चित्र अपने श्लोक-पाठ में प्रगट कर देता है। "नैमिष आन्दोलन की भावनात्मक एकता वाली समन्वय-कारिणी नीति को पूर्ण निष्ठा के साथ यथामति जानने और यथाशक्ति उजागर करने"<sup>30</sup> की चेष्टा इस कृति में की गई है। "पुस्तक नवंबर सन् ६७ में गोकुलपुरा आगरे में आरंभ होकर ३१ जनवरी सन् ७१ में नैमिषारण्य के श्री गौड़ीय मठ में पूरी हुई।"<sup>31</sup>

उपन्यासकार ने नैमिष की कल्पना एक आंदोलन के रूप में की है। इस आंदोलन का नेतृत्व भार्गव सोमाहुति व्यास कर रहे हैं। उनके सहयोगी के रूप में नारद और भारतचन्द्र हैं। भार्गव सोमाहुति को केन्द्र मानकर उपन्यास की आधिकारिक कथा चलती है। सोमाहुति रेणुका तीर्थ में आश्रम बनाकर अपनी माता भार्गवी के साथ रहते हैं। उनके पास पूर्वजों के बहुमूल्य ग्रंथ हैं। वे इन ग्रंथों की सुरक्षा, लोक-कल्याण हेतु उसका प्रचार-प्रसार तथा महाभारत संहिता का नैमिषारण्य में पुनः पाठ कराना चाहते हैं। इस हेतु द्वादश वर्षीय महासत्र कराने की उनकी योजना है। इस संदर्भ में महर्षि शौनक से वे परामर्श करने जाते हैं जो अपनी सहमति देकर योगिराज नागेश्वर से सम्पर्क करने की सलाह देते हैं। नागेश्वर अपनी विघटनकारी प्रवृत्ति के कारण सोमाहुति से सहमत नहीं होते। इस बीच चंद्रगुप्त की काशी विजय के साथ नागेश्वर आत्मदाह कर लेते हैं।

इधर भार्गव सोमाहुति की अनुपस्थिति में सोमाहुति का विरोधी ईर्ष्यालु भृगुवत्स ग्रंथों को नष्ट करने के लिए रेणुकातीर्थ पर हमला करता है और ग्रंथागार में आग लगा देता है। माँ भार्गवी और इज्या उसका डटकर मुकाबला करती हैं। संघर्ष में वृद्धजननी माँ भार्गवी की मृत्यु होती है और सोमाहुति की प्रेमिका इज्या घायल होती है। कुछ विशेष ग्रंथ पेटिकाएँ बचा ली जाती हैं। संयोगवश भ्रमणशील नारद रेणुकातीर्थ पहुँचते हैं और ग्रंथपेटिकाओं के साथ इज्या को लेकर मथुरा आ जाते हैं। यहाँ अपनी शिष्या लवणशोभिका के यहाँ सुरक्षित स्थान जानकर इज्या के रहने की व्यवस्था कर देते हैं। यहाँ जगतसेठ कौरोष से उनका परिचय होता है। भ्रमण के बीच समाचार पाकर सोमाहुति मथुरा आते हैं जहाँ इज्या के साथ उनका विवाह सम्पन्न होता है। वे गृहस्थ-धर्म का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

ईर्ष्यालु भृगुवत्स मथुरा में योजना बनाकर सोमाहुति को बन्दी बना लेता है परन्तु वे शीघ्र ही मुक्त करा लिये जाते हैं। नारद, जगत सेठ कौरोष तथा गुस्ताप आदि



के प्रयासों से भृगुवत्स की पाप लीलाएँ उजागर होती हैं। अपमानित भृगुवत्स सबके समक्ष सर उठाने लायक भी नहीं रहता। सोमाहुति महाभारत लिखाने की चिन्ता में पद्मावती पहुँचकर गणपति नाग से मिलते हैं। शैव होते हुए भी गणपति नाग सोमाहुति की निष्ठा से प्रभावित होते हैं और लेखन कार्य वसंत-पंचमी से आरम्भ हो जाता है।

समय पाकर इज्या पुत्रवती होती है, पुत्र का नाम प्रचेता रखा जाता है। भार्गव सोमाहुति के वैष्णव-धर्म आंदोलन की लोकप्रियता से चिढ़कर नागराजाओं द्वारा वह नौका उलटवा दी जाती है जिसमें इज्या, पुत्र प्रचेता, भारत तथा प्रजा यात्रा कर रहे थे। इज्या की मृत्यु हो जाती है तथा प्रचेता को भारत अपनी जान की बाजी लगाकर बचा लेता है। यद्यपि इज्या की मृत्यु सोमाहुति को विरक्त करती है और एक बार महासत्र अधर में लटकता प्रतीत होता है परन्तु नारद द्वारा सचेत करने पर सोमाहुति कर्म के प्रति सजग होते हैं। गणपति के सहयोग से सोमाहुति महाभारत का लेखन कार्य और नैमिष में चौरासी हजार संतों के सात्रिध्य में बारह वर्षीय कथासत्र सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। नवयुवक प्रचेता को व्यासगद्दी पर बैठाया जाता है। सत्र के अन्त में सोमाहुति द्वारा तत्काल रचित गीता का पाठ होता है। उक्त ग्रंथ में निहित ज्ञान, कर्म का संदेश तथा धर्म की विजय का स्वर गुंजित होता है। अपना चिर-अभिलषित स्वप्न पूर्ण कर भार्गव सोमाहुति भारत भ्रमण के लिए निकलते हैं। आंध्र में जैन गृहस्थ के रूप में परम दुखी नारद से भेंटकर उन्हें पुनः संन्यास धारण कराकर भार्गव नैमिष ले आते हैं। प्रजा के विवाह के लिए योग्य ब्रह्मचारी बाला के चयन के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

इस मूलकथा के साथ महन्त वसुनाग के अर्द्धविक्षिप्त पुत्र भारत और उनकी पत्नी प्रजा की कथा भी चलती रहती है। कथा में स्थान-स्थान पर नारद का वर्णन है जिससे उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति तथा तामसी वृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। वे सोमाहुति के परम मित्र तथा सहयोगी के रूप में चित्रित हैं। भारतीय जीवन में नारद का जो मिथकीय रूप है वह इस उपन्यास में खंडित हुआ है। कृति से यह स्पष्ट होता है कि नारद किसी पौराणिक ऋषि-विशेष का नाम नहीं, तपस्वी ऋषियों की जातीय परम्परा का नाम है।

उपन्यास की कथा विस्तृत होने के कारण बहुत उलझी हुई और अस्पष्ट हो गई है। अधिक क्षेत्रों, जातियों, राजाओं तथा घटनाओं का चित्रण एक साथ करने के कारण कहीं-कहीं उपन्यास के पूर्वापर का निर्धारण करना बड़ा कठिन हो गया है। कथा-तत्त्व के अभाव तथा चिन्तन और दर्शन के बोझ ने उपन्यास को दुर्बल ही बनाया है। परन्तु इतिहास, पुराण, संस्कृति और कल्पना के संयोग से राष्ट्रीयता के आग्रह को उपन्यासकार ने सफलतापूर्वक प्रतिपादित किया है।

इस प्रकार लेखकीय कौशल से नागरजी ने नैमिषारण्य के धार्मिक महत्त्व को

नया स्वरूप प्रदानकर भावात्मक राष्ट्रीय एकता से जोड़ दिया है। उपन्यास की प्रेरणा और प्रतिपाद्य की महत्ता उसके सांस्कृतिक और राष्ट्रीय उद्देश्य में निहित है। राष्ट्र को दृढ़ करने हेतु यह भावात्मक एकता अत्यावश्यक है। सोमाहुति व्यास ने उपन्यास में इसी राष्ट्रीयता का उद्घोष किया है —“हमें अपने देश में राष्ट्र की परिभाषा को व्यापक बनाना ही होगा। हमें वह संस्कार अपने भीतर जगाना ही होगा जिसमें सिंधु-तट पर होने वाले आक्रमण की बात सुनकर काशी का नागरिक यह कह उठे कि मेरे देश पर आक्रमण हुआ। जबतक देश अथवा राष्ट्र की यह महाभावना हमारे अन्दर उत्पन्न नहीं होती है तब तक हमारा कल्याण नहीं है।”<sup>३१</sup>

### मानस का हंस :

१९७२ ई. में रचित 'मानस का हंस' गोस्वामीजी के सबल व्यक्तित्व को “अन्ध श्रद्धा के दलदल से उबारकर सही और स्वस्थ रीति से जनमानस में प्रतिष्ठित करने”<sup>३२</sup> का लेखकीय प्रयास है। इस जीवन-चरितात्मक उपन्यास के कथानक संघटन हेतु लेखक ने तुलसी के आत्मोद्गारों, विद्वानों के मतों एवं किंवदंतियों का पूरा उपयोग किया है। प्रामाणिक सामग्री के अभाव में कल्पना से अनेक सरस करुण एवं रोमांचक प्रसंगों की उद्भावना कर ली गई है जो कथा के टूटे-क्रम को जोड़कर उसे पुष्ट बनाते हैं। इस प्रकार इस कृति में युगान्तरकारी कवि तुलसीदास का मानवीय जीवन आकर्षक रूप में चित्रित किया गया है।

मानस चतुश्शती के अवसर पर स्व. महेश कौल के आग्रह से नागरजी को कृति की रचना की प्रेरणा मिली। गोस्वामीजी की प्रामाणिक जीवनी के अभाव ने लेखक के कार्य को चुनौतीपूर्ण बनाया। नागरजी को लगा कि तुलसी के बारे में रघुबरदास, वेणी माधवदास, कृष्णदत्त मिश्र, अविनाश राय और संत तुलसी साहब के लिखे पाँच जीवन चरित एक ओर अप्रामाणिक हैं तो दूसरी ओर अन्य उपलब्ध जीवन चरित भी सच से अधिक झूठ से युक्त हैं। अधिकांश किंवदंतियों में भी अंधश्रद्धा के कारण मिथ्या का आधिक्य है, परन्तु कुछ किंवदंतियाँ गोस्वामीजी की आत्मपरक कविताओं के निकट हैं। नागरजी ने कृति के 'आमुख' में इस प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने लिखा है —“इस उपन्यास को लिखने से पहले मैंने 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' को खास तौर से पढ़ा। 'विनय पत्रिका' में तुलसी के अंतः संघर्ष के ऐसे अनमोल क्षण संजोए हुए हैं कि उसके अनुसार ही तुलसी के मनोव्यक्तित्व का ढाँचा खड़ा करना मुझे श्रेयस्कर लगा।....'कवितावली' और 'हनुमान बाहुक' में खास तौर से और 'दोहावली' तथा 'गीतावली' में कहीं-कहीं तुलसी की जीवन-झाँकी मिलती है। मैंने गोसाईंजी से संबंधित अगणित किंवदंतियों में केवल उन्हीं को अपने उपन्यास के लिए स्वीकारा जो इस मानसिक ढाँचे पर चढ़ सकती थीं।”<sup>३३</sup>



युगीन परिवेश की सृष्टि के लिए लेखक ने तत्कालीन इतिहास को कृति में आत्मसात कर लिया है जिससे वणन में सजीवता आ गई है। नागरजी ने तुलसी के व्यक्तित्व को परिवेश के मध्य उभारने का प्रयास किया है। अपनी किस्सागोई के कमाल के बल पर तथा स्थान-स्थान पर सुरुचिपूर्ण वाताओं के माध्यम से नागरजी ने उपन्यास को रोचकता प्रदान की है। तुलसीदास के काव्यग्रंथों के उद्धरणों का चुनकर ऐसा प्रयोग किया गया है जिससे कथा का प्रवाह बना रहता है। कई उद्धरण पूरी तरह अपने गद्य-रूप में प्रस्तुत कर दिए गए हैं।

कल्पनापरक प्रसंगों में मोहिनी गायिका का प्रसंग आता है। यद्यपि लेखक ने इस प्रसंग की अवतारणा के लिए अपने तर्क दिए हैं परन्तु जन-मानस में तुलसी की जो मर्यादावादी छवि अंकित है उसके साथ तुलसी का वेश्या-प्रेम पाठकों के गले नहीं उतरता। नागरजी लिखते हैं - "मुझे लगता है कि तुलसी ने काम से जूझ-जूझ कर राम बनाया है। 'मृगनयनी के नयन सर, को अस लागि न जाहि' उक्ति भी गवाही देती है।"<sup>34</sup> लेखक ने 'विनय पत्रिका' में भी तुलसी के 'मदन बाय' से जुड़ने वाले प्रसंग का उल्लेख किया है। यद्यपि नागरजी के इस प्रसंग की सार्थकता विवाद से परे नहीं है परन्तु पूरा प्रसंग जिस खूबी से उठाया गया है उससे इसकी संभावना को सहज रूप से नकारा नहीं जा सकता।

इस प्रकार नागरजी ने इस कृति में तुलसी की काम से राम तक की यात्रा का चित्रण किया है। उपन्यास में तुलसीदास की काम-वृत्ति उदात्तीकृत होकर भक्ति में परिणत हुई है।

गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिष्ठा एक भक्त और महाकवि के रूप में है। उपन्यास में तुलसी के इन्हीं रूपों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। नागरजी ने भक्ति-विरोधी तत्त्वों काम, अर्थ, यश, मोह और अहं के साथ उनके संघर्ष और उन पर भक्ति की विजय का चित्रण करते हुए तुलसी की भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा की है।

उपन्यास का शीर्षक 'मानस का हंस' सार्थक है। रामचरित्र रूपी मानसरोवर में तैरते हुए तुलसी रूपी हंस के प्रतीक पर आधारित होने के कारण ग्रंथ का नामकरण उपयुक्त है। शीर्षक में प्रतीकात्मकता के साथ काव्यात्मकता भी है।

'मानस का हंस' का वैशिष्ट्य केवल तुलसी के व्यक्तित्व के कारण ही नहीं है, एक उपन्यास के रूप में भी यह कृति बहुत सारी विशिष्टताएँ समेटे हुए है। उपन्यासकार ने तुलसी की असाधारण रामभक्ति का स्रोत उनके आरंभिक व्यक्तित्व में ही खोजा है। उन्होंने लौकिक प्रणय या रतिभाव के उदात्तीकृत रूप में इसे स्वीकार किया है। तुलसी साहित्य में प्राप्त तुलसी की विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्थितियों एवं विशेषताओं को ग्रहण करते हुए उन्होंने तुलसी के संपूर्ण जीवन-चरित को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वह एक रोचक उपन्यास बन गया है।

कृति में नायक तुलसीदास स्वयं ही कथाकार हैं तथा वे अपने जीवन-प्रसंगों को अपने प्रिय शिष्य बेनीमाधवदास का क्रमबद्ध ढंग से सुनाते चलते हैं। 'मानस का हंस' की कथा तुलसीदास के संपूर्ण जीवन-प्रसंगों को समेटती है। यह कथा उस अभागे बालक की है जिसके अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेते ही माँ मर गई, ज्योतिषी पिता ने क्षुब्ध हाकर बालक को दासी के हाथ 'पार्वती' नामक निर्धन वृद्धा के पास दूर भिजवा दिया। बालक 'रामबोला' वृद्धा के साथ घूम-घूम कर भिक्षाटन करने लगा। ७ वर्ष की अवस्था में आश्रय-दायिनी माँ पार्वती भी चल बसी। भटकते हुए रामबोला सूकरखेत पहुँचा जहाँ नरहरि बाबा से उसकी भेंट हुई। नरहरिदास ने बालक के 'पंच संस्कार' कराये, 'तुलसी' नाम दिया और विद्या का आरंभ कराया। काशी की शेष सनातन पाठशाला में तुलसी का अध्ययन हुआ। विद्याध्ययन के बाद वे उसी पाठशाला में अध्यापन करने लगे। काशी में राम के अनन्य भक्त 'मेधा भगत' से परिचित हुए तथा एक वृद्ध कोतवाल की रखैल मोहिनी के गायन, रूप और यौवन से प्रभावित होकर उसकी ओर आकर्षित हुए। यहीं काम और राम के द्वन्द्व ने उन्हें उलझाया। मोहिनी को विस्मृत करने के लिए वे मेधा भगत के साथ तीर्थ-भ्रमण हेतु निकल पड़े।

तीर्थ भ्रमण करते हुए वे जन्म स्थान के मोहवश अपने गाँव विक्रमपुर लौटे। उत्कृष्ट कथावाचक तथा ज्योतिषी के रूप में सबका सम्मान प्राप्त किया। यहीं राजा भगत से मित्रता हुई और उसके नाम से अपने उजड़े हुए ग्राम को 'राजापुर' नाम दिया और पुनः बसाया। प्रख्यात ज्योतिषी दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली के सद्व्यवहार, सरलता, ज्योतिष-प्रतिभा तथा सौंदर्य से प्रभावित होकर विवाह किया। समय पाकर पुत्र तारापति का जन्म हुआ। कथाक्रम में पितृगृह गई हुई पत्नी से मिलने की आतुरता और आंधी-पानी का सामना करते हुए आधीरात को ससुराल पहुँचने का भी वर्णन है। साले, सलहज और पत्नी की कटूक्तियों से तुलसी के अहम् पर चोट लगती है तथा वे गृहस्थी त्यागकर रामभक्ति का सहारा ले वैरागी हो जाते हैं। घर छोड़ने के बाद इधर-उधर भटकते हुये वे चित्रकूट पहुँचते हैं जहाँ 'जानकी मंगल' की रचना होती है। पुत्र तारापति के निधन से दुखी होकर पत्नी रत्नावली चित्रकूट पहुँचती है। तुलसी वहाँ से पलायन कर मिथिला, सीतामढ़ी होते हुए अयोध्या पहुँचते हैं। अयोध्या में पहले एक मंदिर में कोठारी का कार्य करते हैं परन्तु महन्त से अनबन हो जाने के कारण रामकथा का वाचन आरंभ करते हैं। अयोध्या में ही रामचरित मानस की अवधी भाषा में रचना का संकल्प जाग्रत होता है। तुलसी की प्रसिद्धि से पंडित वर्ग ईर्ष्याग्रस्त हो जाता है, क्षुब्ध होकर तुलसी काशी पहुँचते हैं।

राम-कथा को संस्कृत के स्थान पर भाषा में लिखने के कारण काशी में भी तुलसी का कड़ा विरोध होता है, परन्तु वे अपने दृढ़ संकल्प से रामचरित मानस पूरा



करते हैं। काशी में टोडरमल तुलसी की बड़ी मदद करते हैं। उनकी मदद से ही तुलसी को एक मंदिर में गोस्वामी का पद प्राप्त होता है। यहाँ राजा भगत के साथ रत्नावली पुनः आती है और तुलसी के साथ रहने की इच्छा प्रगट करती है। तुलसी उसके प्रस्ताव को लोक-लाज के भय से अस्वीकृत कर देते हैं परन्तु मृत्यु के पूर्व एक बार दर्शन देने की पत्नी की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं।

मंदिर का गोसाईं पद छोड़कर तुलसीदास काशी में घूम-घूमकर रामलीला के प्रदर्शन का आयोजन करते हैं तथा युवकों के स्वास्थ्य के लिये अखाड़े खुलवाते हैं। प्लेग की महामारी फैलने पर तुलसी के नेतृत्व में युवावर्ग लोक सेवा करता है। बटेश्वर मिश्र के षड्यंत्र से तुलसी बन्दी बनाए जाते हैं परन्तु अहीर-केवट रूपी बानर सेना कोतवाली पर आक्रमण करती है, जिससे तुलसी छोड़ दिए जाते हैं। इस घटना से तुलसी की महिमा बढ़ती है। वे रामभक्ति के प्रचार में अपना समय व्यतीत करने लगते हैं। अपने जीवन के अंतिम दिनों में दो शिष्यों रामू तथा संत बेनीमाधवदास के साथ वे मरणासन्न पत्नी के पास राजापुर पहुँचते हैं। पति का दर्शन पाकर रत्नावली का शरीर शांत होता है। तुलसीदास कुछ दिन राजापुर में रहकर चित्रकूट आते हैं। वहाँ तुलसी के शरीर में 'मदन-बाय' के कारण गिल्टियाँ निकलती हैं। अंतिम समय नजदीक आया जानकर वे काशी आ जाते हैं। यहाँ स्वप्न में वे देखते हैं कि प्रभु राम ने उनकी 'विनय पत्रिका' पर सही कर दी है। श्रावण कृष्ण तीज की ब्रह्मबेला में वे इस लोक को त्याग देते हैं।

कथा में तुलसी को मानवीय रूप में प्रस्तुत करने के कारण उन्हें आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के द्वन्द्वों से जूझते हुए दिखाया गया है परन्तु इस द्वन्द्व के बीच भी उनका तेजस्वी व्यक्तित्व पूरे उत्कर्ष के साथ चित्रित हुआ है। उपन्यास के कई प्रसंग नाटकीय हैं तथा चित्रपट से उद्धृत किए गए से प्रतीत होते हैं। इस कारण उपन्यास को चलचित्रात्मक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

लेखक ने तुलसी के जीवन को 'आस्था के संघर्ष की कथा'<sup>१९</sup> के रूप में चित्रित किया है। उनका आस्थावादी स्वर इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है— "जन-जन की असीम निराशाजनित घोर अनास्था का उचित उपचार होना ही चाहिए। आस्थाहीन मनुष्य का जीवन ही उसका असह्य बोझ बन जाता है। यह स्थिति भयावह है।"<sup>२०</sup>

प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री के शब्दों में अंततः कहा जा सकता है— "मानस चतुश्शती की सामयिक प्रेरणा ने तुलसी के प्रति नागरजी की श्रद्धा को सर्जनात्मक स्तर पर 'मानस का हंस' में जिस रूप में अभिव्यंजित किया है, उसकी वर्णच्छटाओं के प्रति कहीं गंभीर तो कहीं सामान्य असहमति हो सकती है, किन्तु इससे इनकार नहीं किया

जा सकता कि नागर जी ने इसके द्वारा तुलसी की मानवीयता को कलात्मक रूप से उद्घाटित कर हिन्दी के जीवन चरितात्मक उपन्यासों में नया कीर्तिमान स्थापित किया है।<sup>136</sup>

### नाच्यौ बहुत गोपाल :

१९७८ में रचित 'नाच्यौ बहुत गोपाल' नागरजी के श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यासों में परिगणित किया जाता है। इस कृति में लेखक ने समाज की तिरस्कृत, दलित और अछूत समझी जानेवाली मेहतर जाति का यथार्थपरक चित्रण पूरी संवेदना के साथ किया है। दमन, शोषण, अपमान और विवशता की जिन्दगी जीने वाली भंगी जाति की समस्याओं को प्रामाणिक रूप में समझकर लेखक ने अपनी समाजशास्त्रीय दृष्टि से जो विवेचन प्रस्तुत किया है वह उसके व्यापक अध्ययन एवम् उसकी मानवतावादी चेतना को स्पष्ट करता है। उपन्यास की रचना के पूर्व नागरजी ने इस समाज की समस्याओं की जानकारी के लिए विभिन्न मेहतर बस्तियों में स्त्री, पुरुषों से भेंट की, उनके रीति-रिवाज, परम्पराएँ तथा किंवदंतियों को सुना-समझा। उनके इतिहास की जानकारी के लिए नागरजी ने हिन्दू शास्त्रों को पढ़ा तथा डॉ. बी.आर. अंबेदकर के विचारों का अध्ययन किया। उपन्यास के निवेदन में नागरजी ने लिखा है — “ढाई-तीन वर्ष जिस समस्या और उसके निमित्त चरित्रों की तलाश में भटका, जगह-जगह इण्टरव्यू लेते हुए जिन मनोधाराओं में बहा, जिस चिंतन-प्रक्रिया के सहारे मुझे समवयस्क और समानधर्मा लेखक पत्रकार श्री अंशुधर शर्मा और विशेष रूप से श्रीमती निर्गुनियाँ मिलीं - वह सारी मनोलीला उपन्यास के अंतिम वाक्य के साथ ही सिमट गयी।”<sup>137</sup>

अपने अध्ययन एवं शोध के द्वारा नागरजी का यह निष्कर्ष है कि “भंगी कोई जाति नहीं है और यदि है भी तो केवल गुलामों की जाति।”<sup>138</sup> उपन्यासकार ने मेहतर जाति के इतिहास का अन्वेषण करते हुए उसे दुर्गम और अंधकारयुक्त तहों से निकालकर रचनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। इस जाति का अंतरंग चित्र प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने कड़ी मेहनत से जो तथ्य बटोरे हैं वे भंगियों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति के द्योतक हैं।

उपन्यास में नागरजी ने वर्ण-व्यवस्था की रूढ़ियों एवं जड़ संस्कारों तथा उच्च वर्ग के थोथे अभिमान और पाखण्ड पर तीव्र प्रहार किया है। उपन्यासकार ने ब्राह्मणी से मेहतरानी बनी निर्गुनियाँ और भंगी जाति के मोहन के बहाने उच्च वर्ग के मिथ्या दंभ और पाखंड पर कड़ी चोट की है। लेखक ने उस मिथ्या प्रदर्शन पर भी व्यंग्य किया है जिसके कारण उच्च वर्ग के लोग एक तरफ भंगियों या नीच जाति की ओर धिनौनी दृष्टि से देखते हैं वहीं दूसरी ओर निम्नवर्ग की स्त्रियों से अवैध संबंध रखते हैं। उपन्यास में ऐसा ही व्यंग्य करते हुए निर्गुनियाँ कहती है — “बड़े-बड़े त्रिपुण्डधारी



पंडितों को भी मैंने अछूत स्त्रियों के पीछे-पीछे कुत्ते की तरह घूमते बहुत देखा है। लुक-छिपकर मुँह काला करने के बाद फिर उजागर में मुँहों पर ताव देकर 'हटो-बचो' चिल्लाना शुरू कर देते हैं।....छूत-अछूत यों ही गड्ड-मड्ड देख के मेरे मन में यह सवाल उठा कि इन दोनों में इस दम कौन ब्राह्मण है और कौन मेहतर?"<sup>४१</sup>

उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने ब्राह्मणत्व के लबादे को उतारकर अंशुधर शर्मा के रूप में मेहतर वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाली पात्र निर्गुनियाँ का इण्टरव्यू लिया है। इस प्रकार उपन्यास के पूरे वृत्तान्त के वर्णन हेतु दो पात्र कल्पित किए गए हैं - एक निर्गुनिया और दूसरे उससे इण्टरव्यू लेने वाले लेखक-पत्रकार श्री अंशुधर शर्मा। शर्माजी के आग्रह से निर्गुण अपने जीवन की कथा उन्हें सुनाती है। यह कथा कहीं श्रीमती निर्गुण के मुख से, कहीं डायरी के पत्रों से और कहीं लोगों की बातचीत द्वारा पत्रकार लेखक शर्माजी ग्रहण करते हैं। इस प्रकार उपन्यास की रचना में इंटरव्यू, डायरी और वर्णनात्मक पद्धति तीनों का सहारा लिया गया है। नागरजी की अनुभवी कलम ने तीनों पद्धतियों को इस प्रकार ग्रहण किया है जिससे उपन्यास में कहीं भी शिथिलता नहीं आती और वह रोचक बना रहता है। उपन्यास का यही वैशिष्ट्य है।

लेखक ने भंगी जाति के विषय में एकत्र सारी जानकारियों को "वृद्ध ब्राह्मण व्यापारी की तरुणी भार्या के एक मेहतर युवक के साथ भाग जाने की घटना"<sup>४२</sup> के साथ जोड़कर कल्पना के स्पर्श से जिस कथा सूत्र में पिरोया है, उसी का औपन्यासिक नामकरण है - "नाच्यो बहुत गोपाल।" उपन्यास का शीर्षक 'नाच्यो बहुत गोपाल' पूर्णतः सार्थक है। अपनी जीवन यात्रा की कठिनाइयों को झेलते-झेलते ऊबकर कथि अपने आराध्य कृष्ण से कहता है कि, 'हे प्रभु अब बस कीजिए। आपने बहुत नाच नचाया, अब तो मेरा उद्धार कीजिए।' शीर्षक के बहाने उपन्यास का भंगीवर्ग मानों यह बताना चाहता है कि उन्हें जितना और जैसा समाज ने नाच नचाया, वे नाचते रहे, अब वे नहीं नाच सकते। यह वर्ग अपनी दुरवस्था अब और नहीं सह सकता। इस प्रकार अपने काव्यात्मक अर्थ में शीर्षक मेहतर-वर्ग की पीड़ा को मुखरित करने वाला है।

एक 'मेहतरानी' को 'महत्तरानी'<sup>४३</sup> मानकर लिये गये इंटरव्यू से ही उपन्यास की कथा का सूत्र मिलता है। वह अपने घटना भरे जीवन के उत्थान-पतन का वर्णन करती चलती है और लेखकीय कौशल से नागरजी उसे उपन्यास का रूप दे डालते हैं। उपन्यास की कथा के अनुसार निर्गुण ब्राह्मण परिवार में जन्मी तथा माता की मृत्यु के बाद संस्कारशील कट्टर ब्राह्मण नाना द्वारा पाली गई थी। उसके पिता एक सेठ के यहाँ कहने को तो नौकरी करते थे परंतु थे वास्तव में सेठानी के 'रखैल'। नाना के निधन के बाद विलासी पिता ने पुत्री को सेठानी के संरक्षण में रखा। इस नए तथा घोर अनैतिक परिवेश में भ्रष्ट सेठानी के इशारे पर वह कई पुरुषों की कामुकता की शिकार हुई और

अंततः एक सत्तर वर्षीय वृद्ध व्यापारी मसुरियादीन से व्याह दी गई। शरीर की भूख की मारी निर्गुण मेहतर युवक मोहना पर निछावर हो गई और एक दिन गहने-कपड़े नकदी लेकर उसके साथ भाग निकली। अपने जातिगत पेशे को त्यागकर कोई व्यापार कर लेने का निर्गुण का आग्रह उसके प्रेमी मोहन ने स्वीकार नहीं किया और निर्गुण विवशतावश मेहतरानी बन गई। भंगी जीवन को बिताते हुए उसने यातनायें झेलीं, मार खाई, भद्दी गालियाँ सुनीं तथा मैल का टोकरा ढोया। परिस्थितिबश मोहना को डाकू बन जाना पड़ा। निर्गुण की रकम मोहन के मामा-मामी ने हड़प ली और उसे घर से निकाल दिया। अकेली निर्गुण को मसीता नाम के बूढ़े मेहतर ने शरण दी। बड़े संघर्ष से निर्गुण ने अपना जीवन आरंभ किया। मोहना डाकू अपने दल का सरदार बनकर उसकी मदद करता रहा। आर्य समाज से संपर्क बढ़ाकर निर्गुण ने हस्तकौशल केन्द्र और बच्चों की पाठशाला खोल दी। समय पाकर वह एक पुत्री और पुत्र की माँ बनी। इस बीच पुलिस मुठभेड़ में मोहन मारा गया। अंग्रेज डॉक्टर एंडरसन ने निर्गुण से प्रभावित होकर उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया जिसे निर्गुण ने स्वीकार नहीं किया। डॉ. एंडरसन निर्गुण की ३ वर्षीया पुत्री को लेकर अमेरिका चले गये जहाँ उसे पढ़ा-लिखाकर, क्रिश्चियन बनाया और उसका विवाह करा दिया। इधर अपने संरक्षक मसीते की मृत्यु के बाद निर्गुण को बच्चे के पालन हेतु गली-गली टोकरा उठाकर मेहतरानी का काम सँभालना पड़ा, परन्तु शाम का समय वह स्कूल में बिताती रही। जीवन के संघर्षों से जूझते हुए निर्गुण ने अपने बेटे को उच्च शिक्षा दिलाई, वह सरकारी विभाग में उच्च पद पर प्रतिष्ठित हुआ, क्रिश्चियन लड़की को शुद्धकर अपनी पुत्र-वधू बनाया। निर्गुण की लड़की अमरीका से लौटकर स्कूल की प्रिंसिपल बनी। कथाक्रम में निर्गुण के चरित्र को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए नागरजी के सुपरिचित पात्र बाबा रामजी दास भी उपन्यास में अवतीर्ण हुए हैं जो अपनी अलौकिक शक्ति से निर्गुण को प्रेरणा देते हैं।

इस प्रकार नागरजी ने इस कृति में निर्गुण के ब्राह्मण संस्कारों को ध्वस्त कर उसके मेहतरानी बनने के सारे अंतः संघर्षों को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। मेहतर समाज के चित्र उपस्थित करते समय वे पूरी तरह से उस समाज में रम गए हैं।

पूरे कथा-प्रसंग में नागरजी ने बड़ी सावधानी से नारी-समाज की त्रासदी और पुरुष समाज के अहं को भी चित्रित कर दिया है। संपूर्ण नारी जाति का शोषण पुरुष वर्ग किसी न किसी रूप में करता रहता है। नारी की पीड़ा निर्गुण द्वारा मार्मिक शब्दों में व्यक्त हुई है — “औरत से बढ़कर कोई भी ज्यादा गुलाम नहीं है। मैंने ब्राह्मण भी देखा, मेहतर भी देखा। मरद सब एक हैं, साँसें सब एक हैं, सब जगह औरत की एक जैसी ही मिट्टी पलीत होती है, मैंने दलितों की समस्या को दोहरे ढंग से भोगा है।”<sup>xx</sup>

उपन्यास में दलितों की समस्या को विस्तृत धरातल पर प्रस्तुत किया गया है।



उपन्यासकार ने मेहतरों के बस्ती-मोहल्ले और उनके घर भीतर तक पाठक को पहुँचाया है और सर्वत्र अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

### खंजन-नयन :

महाकवि सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करने वाली कृति 'खंजन नयन' (१९८०) नागरजी का दूसरा जीवन-चरितात्मक उपन्यास है। वे इसके पूर्व मानस-चतुश्शती के अवसर पर तुलसीदास के जीवन पर 'मानस का हंस' उपन्यास की रचना कर चुके थे। सूर पंचशती के अवसर पर कृष्ण भक्त कवि के प्रति 'निश्छल श्रद्धा' निवेदन हेतु लिखा गया यह उपन्यास सूरदास के जीवन की सार्थक प्रस्तुति है।

उपन्यास के सृजन हेतु उपन्यासकार ने सूर-सागर, श्रीमद्भागवत और पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य के अतिरिक्त कई अन्य ग्रंथों एवम् विद्वानों की सहायता ली है। वल्लभ संप्रदाय की सूचनाओं तथा सूरदास के संबंध में प्रचलित किंवदंतियों के आधार के अलावा कई तथ्यों को लेखक द्वारा पुनः कल्पित या पुनः सृजित भी किया गया है।

सूरदास के जीवन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता न होने के कारण कई मुद्दों पर विद्वानों में आज भी मतभेद है। एक प्रश्न उनके 'जन्मान्ध होने या न होने' को लेकर उठाया जाता है तो दूसरा उनके जन्म स्थान को लेकर। श्री अमृत लाल नागर ने इस संबंध में विविध विद्वानों के विचारों का अध्ययन-चिंतन करने के बाद सूरदास को 'जनम को आंधरो' माना है तथा 'परासौली' को उनकी जन्मभूमि के रूप में स्वीकार किया है। 'खंजन नयन' उपन्यास में ये तथ्य इसी आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं।

उपन्यास में नागरजी ने कन्तो मल्लाहिन के प्रसंग की अवतारणा की है तथा उसे सूरदास की प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। इस बारे में 'भूमिका' में वे लिखते हैं — "मथुरा के युवा विद्वान डॉ. विष्णु चतुर्वेदी ने मुझे बतलाया था कि एक वार्ता के अनुसार युवा सूरदास किसी मल्लाहिन के इशकिया चक्कर में फँसकर बुरी तरह से मारे-पीटे गए थे। उक्त वार्ता मुझे पढ़ने को नहीं मिल सकी इसलिए वह इसके मल्लाहिन भले ही सच हो या न हो परन्तु इस उपन्यास की कंतो मल्लाहिन युवा सूर की सार्थक प्रेमिका है।" इस प्रकार 'मानस का हंस' में तुलसी की प्रेमिका मोहिनी यदि तर्कों द्वारा कल्पित कर ली गई थी तो किंवदन्ती के आधार पर 'खंजन-नयन' में कन्तो उपस्थित हो गई है। उपन्यास में कन्तो भयंकर कुरूपा, अभागी एवं अनाथ होते हुए भी आस्था एवं प्रेम में मीरा के समकक्ष खड़ी दिखाई पड़ती है। वह अटल आस्था, निश्छल निष्ठा तथा पवित्र प्रेम की साकार मूर्ति की तरह उपन्यास में चित्रित की गई है।

उपन्यास की कथा के अनुसार परासौली ग्राम में भागवत बाँचने वाले पंडित के घर तृतीय पुत्र के रूप में एक सुंदर किन्तु नेत्र-ज्योतिहीन बालक का जन्म होता है।

पिता अपने तीनों पुत्रों को भागवत-वाचन हेतु तैयार करते हैं। जन्मांध तथा आयु में लघु होने पर भी तृतीय पुत्र संगीत एवं गायन कला में सबसे आगे रहता है। उसकी प्रतिभा अन्य दो भाइयों को ईर्ष्यालु बनाती है। बालक पिता की उपेक्षा का शिकार होकर नौ वर्ष की आयु में ही घर छोड़ने को विवश होता है। हीरो बाबा का संरक्षण प्राप्त कर वह स्पर्श एवं श्रवण के माध्यम से बाहरी दुनिया का ज्ञान प्राप्त करता है तथा नाद-स्वामी से संगीत-शिक्षा ग्रहण करता है। अपने मित्रों के अभाव से दुखी बालक कृष्ण-विग्रह से संबंध स्थापित करता है और अपने हृदय में कृष्ण की छवि का अवलोकन करता हुआ छवि से बात करता है, बाल-क्रीड़ा करता है, तर्क करता है और प्यार करता है। १९ वर्ष की अवस्था में ही सूरदास ज्योतिष, संगीत, काव्य-शास्त्र तथा काव्य-रचना में पारंगत हो जाते हैं। अपने ज्योतिषज्ञान के बल पर वे लोकप्रियता प्राप्त कर लेते हैं। कई भावी घटनाओं की पूर्व-सूचना देने के कारण वे जनसाधारण की श्रद्धा प्राप्त करते हैं। कुरूप तथा अंधी कन्तो के प्रेम निवेदन को सूरदास बार-बार निर्ममता से टुकारते हैं परन्तु वह संपूर्ण श्रद्धा से सूरदास के साथ लगी रहती है। मथुरा-वृन्दावन तथा भिखारियों की बस्ती में दोनों के पवित्र संबंधों पर लगाए गए कलंक का उत्तर वह निर्मल हृदय से देती है। अयोध्या के रास्ते में एक बार पैदल जाती हुई कन्तो आतताइयों द्वारा गला घोटकर मार दी जाती है। सूरदास अयोध्या से काशी पहुँचते हैं जहाँ उनकी गायन प्रतिभा तथा अनन्य कृष्ण भक्ति के कारण जन-मानस सूर का भक्त बन जाता है। काशी के पंडित समाज के लोग सूरदास के प्रति ईर्ष्या की अग्नि से जलने लगते हैं। अयोध्या में मुल्लर बाजपेयी तथा काशी के छिदम्मीलाल उनकी ख्याति को नष्ट करने का षडयंत्र करते हैं परन्तु सूरदास अपने ज्योतिष-ज्ञान के चमत्कार से बच जाते हैं। दो वर्ष के भ्रमण के उपरान्त ब्रजभूमि की ओर वापसी के मार्ग में उनकी भेंट आचार्य बल्लभ से होती है। बल्लभाचार्यजी द्वारा पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर वे गोवर्द्धन पर्वत पर निर्मित श्रीनाथजी के मन्दिर में कीर्तनिया नियुक्त होते हैं। इस प्रकार ३२ वर्ष की अवस्था से लेकर मृत्युपर्यंत (१०५ वर्ष) की अवस्था तक श्रीनाथजी के मंदिर में कृष्ण-भक्ति के पद रचते रहते हैं। बल्लभाचार्य जी के जल-समाधि लेने के बाद विट्ठलनाथ जी संप्रदाय की गद्दी पर विराजमान होते हैं। अष्टछाप के अन्य कवि भी सूर के साथ कीर्तनगायन करते हैं। इसी अवधि में सूरदास से भेंट करने तुलसी व मीराबाई आते हैं। राधा-कृष्ण की भक्ति के पद गाते-गाते १०५ वर्ष की उम्र में परासौली में सूरदास की मृत्यु हो जाती है।

इस मनोरम कथ्य के साथ सूर के जीवन की सम्पूर्ण जानकारी देने का प्रयास नागरजी ने किया है। अपनी नवीनतम दृष्टि से लेखक ने सूर के बारे में प्रचलित मान्यताओं की कहीं पुष्टि की है तो कहीं नवीन संदर्भ जोड़े हैं। कुछ प्रसंगों की



वास्तविकता के बारे में विद्वानों एवं शोधार्थियों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि 'खंजन नयन' के माध्यम से नागर जी जिस गहराई तक पहुँचे हैं वहाँ तक सूर साहित्य के मर्मज्ञ समीक्षक भी नहीं पहुँच सके हैं। उपन्यास की इस उपलब्धि का श्रेय उसकी शोधाश्रयी दृष्टि तथा सूर-साहित्य के व्यापक अध्ययन को जाता है। नागरजी ने महाकवि सूरदास की निर्वाण-स्थली परासौली में बैठकर उपन्यास का लेखन किया, सूर द्वारा भ्रमण किए गए सभी क्षेत्रों का दौरा किया और विविध ग्रन्थों से तथ्यों का संग्रह किया। कृति लेखन में उन्होंने अभूतपूर्व सुख का अनुभव किया। 'भूमिका' में वे लिखते हैं, "..... जैसा आनन्ददायक अनुभव मैंने इस बार पाया वैसा अपने लेखकीय जीवन में पहले कभी नहीं पाया था! इस बार लगता था कि सूर बाबा स्वयं बोल रहे हैं और मैं मात्र उनका लिखिया हूँ।"<sup>१६</sup> उपन्यास ३० नवंबर १९७९ को आरंभ होकर २३ अक्टूबर १९८० ई. को पूरा हुआ।

उपन्यास का शीर्षक युक्तियुक्त है। 'जन्मांध' सूरदास ने दृष्टिहीन होते हुए भी भक्ति, वात्सल्य, तथा वियोग के जिन पदों की रचना की है, कृष्ण के जिस अलौकिक सौन्दर्य को बन्द आँखों से देखा है, वह दृश्य तो चक्षुधारियों की खुली आँख भी देखने में अक्षम रही है। सूर की आँखों की उपमा खंजन पक्षी से दी जा सकती है। उपन्यास के अंतिम पृष्ठ पर नागरजी इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं— "खंजन नैन रूप रस माते", सूर में बसी राधा के नेत्रों की वृत्ति खंजन पक्षी के नेत्रों के समान ही चंचल हो रही है। गायक का स्वर खंजन के चंचल नेत्रों को तूलिका सा चित्रित कर रहा है। सूर की आँखें भले ही अंधी हों पर अब वे राधे रानी के नयन हैं, अतिशय चारु और विमल।"<sup>१७</sup> इस प्रकार उपन्यास का काव्यात्मक शीर्षक सार्थक है।

अपनी सभी विशिष्टताओं के बावजूद यह कृति 'मानस का हंस' की भाँति प्रभाव की सृष्टि नहीं कर पाती।

### बिखरे तिनके :

नागरजी के वृहत्काय सामाजिक उपन्यासों — 'बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष' तथा 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की तुलना में लघु आकार का उपन्यास 'बिखरे तिनके' सामाजिक यथार्थ का चित्रण बड़ी खूबी के साथ करता है। १९८२ में रचित इस उपन्यास में सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं नेताओं की स्वार्थ-केन्द्रित राजनीति का प्रभावशाली वर्णन किया गया है। उपन्यासकार ने युवकों को उपन्यास के केन्द्र में रखकर उनकी संगठित शक्ति के साथ भविष्य के प्रति उनकी चिन्ता का आभास कृति में कराया है। उपन्यास का मुख्य संदर्भ राजनीति है। स्वाधीनता के ३०-३२ वर्षों के बाद की भारतीय राजनीति का वर्णन करते हुए लेखक ने राजनीतिक दलों तथा उनकी वोट-केन्द्रित राजनीति का मखौल उड़ाया है। सिद्धान्त और उद्देश्य को त्यागकर

भारतीय नेता इस हद तक स्वार्थी हो गए हैं कि आम जनता का उनपर विश्वास ही उठ गया है— “मुझे आज देश के किसी राजनीतिक दल पर विश्वास नहीं। सबकी राजनीति आज जनता का दुःख भुनाने पर आमादा है, उन्हें दूर करने के लिए कोई भी प्रयत्नशील नहीं। दुग्धालय के साइन बोर्ड सामने टांगकर सभी ने अपने-अपने शराबखाने खोल रखे हैं।”<sup>४८</sup>

उपन्यास-नायक बिल्लू का यह कथन मानों संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के दुहरे चरित्र का पर्दाफाश कर देता है। राजनीतिक नेताओं द्वारा सर्वाधिक शोषण युवकों का होता है। चुनाव जीतने तथा राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमारे नेता युवकों की शक्ति और उनके संघर्षों तेवर का पूरा लाभ उठाते हैं परन्तु उन युवकों के भविष्य निर्माण के प्रति उनमें कोई तत्परता दिखाई नहीं पड़ती। दिशाहीन युवक राजनीतिक दलों की शतरंज का प्यादा बनकर पिटता रहता है। भविष्य के प्रति पीड़ा भरी चिन्तायें भारतीय युवक को सालती रहती हैं। वह कह उठता है— “राजनीति का सत्य चुनाव के वोटों तक सीमित हो गया है— चोर से हों और शाह से भी हों। तुम अपना स्वार्थ पूरा करो और मैं अपना। क्या यही है स्वस्थ समाज के निर्माण का स्वरूप। आखिर कहाँ जाएगा यह भारतीय समाज? क्या हालत होगी हमारी? ..... कहाँ जाएँ, क्या करें? आजाद हुए पर भविष्य के जटिल प्रश्न-जाल में कैद हो गए.....”<sup>४९</sup>

उपन्यास में राजनीतिक व्यवस्था और युवा वर्ग के अनिश्चित भविष्य के अतिरिक्त सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और नैतिक मूल्यों के अधःपतन का यथार्थ अंकन किया गया है। कथा का प्रारंभ नगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग में हेल्थ अफसर के पी.ए. पद से रिटायर होने वाले गुरसरन लाल श्रीवास्तव के कार्यकलापों से होता है। अपने जमाने में जमकर भ्रष्टाचार करने वाले तथा अवैध तरीकों से अर्थोपार्जन करने वाले गुरसरन बाबू को ‘एक्सटेंशन’ न मिल पाना उन्हें हिंसक बनाता है और वे अपने ऊपर कुटृष्टि रखने वाले ‘हेल्थ अफसर’ डॉ. गोयल और ‘इस्टेब्लिशमेंट क्लर्क’ नौबतराय से बदला लेने का बन्दोबस्त करते हुए ‘रिटायर’ हो जाते हैं। गुरसरन बाबू के शोक का वर्णन नागरजी के शब्दों में — “किसी को कबूतर पालने का शौक होता है, किसी को टिकट जमा करने का, गुरसरन बाबू की हॉबी दूसरों की कमजोरियों के प्रमाण एकत्र करने की रही है।”<sup>५०</sup> ‘कमजोरियों के प्रमाण’ गुरसरन बाबू के ‘शत्रुओं’ के भ्रष्टाचार को सिद्ध करते हैं और डॉ. गोयल और नौबतराय सस्पेण्ड हो जाते हैं।

उपन्यास में नीचे तबके से लेकर उच्च स्थान पर बैठे भ्रष्ट लोगों की पंक्ति पूर्ण सजीवता के साथ चित्रित है। इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रमुख पात्र के रूप में गुरसरन बाबू जैसे पात्र हैं क्योंकि “गुरसरन बाबू जैसे सबकी बोटी-बोटी नॉच-नॉच कर खाते रहे,



वैसा कोई बड़ा बे-दिलवाला ही खा पाता है।”<sup>५१</sup> ऐसे भ्रष्ट व्यक्ति का अपने कार्यालय के भ्रष्टाचार उजागर करने का प्रयास उसकी स्वयं की बदले की भावना है, समाज से भ्रष्टाचार मिटाने की लालसा नहीं।

जाति व्यवस्था, सामाजिक वैषम्य तथा भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ वास्तविक लड़ाई लड़ने वाले पात्रों के रूप में लेखक ने बिल्लू, रमेश, हरसुख, सत्तार, सोहागी, सरसुतिया जैसे युवा-वर्ग की सार्थक कल्पना की है। यह टोली कई युवकोचित कार्य करती है। दिशाहीनता तथा भविष्य की धुंधली तस्वीर के कारण युवक कितने कुंठित और निराश हैं, इसका संकेत भी ये युवक देते हैं। परन्तु संगठित युवा-शक्ति कितनी सक्षम है, समाज की सृजनात्मक गतिविधियों-में उनका योगदान कितना आवश्यक है, यह प्रमाण भी कृति के युवकों द्वारा प्राप्त होता है। सुहागी-सरसुतिया प्रेम, उनका विवाह और भ्रष्ट परिवेश में उनकी दर्दनाक मृत्यु, प्रत्येक अवसर पर अपने उत्साह और रोष से समाज की प्रमुख शक्ति के रूप में युवा वर्ग अपनी पहचान बनाता है।

हरिजन बिरादरी की सरसुतिया और अहीर बिरादरी के सुहागी के प्रेम का समर्थन करते हुए विवाह की सारी व्यवस्था करना उनके उत्साह को प्रतिबिम्बित करता है। यह युवा-टोली विवाह के कारण होने वाले जातिगत संघर्ष में आगे रहकर टकराव की स्थिति को मिटाने का पूरा प्रयास करती है। इस युवा शक्ति के बल पर ही कांग्रेस (आई) प्रत्याशी उत्तम सिंह राठौर चुनाव में विजयी होते हैं। पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि सेठ चुन्नीलाल के पुत्र स्वतंत्रकुमार अपनी वासना की पूर्ति के लिए सरसुतिया का अपहरण करवा लेते हैं और सुहागी को झूठी चोरी में फँसा देते हैं। बिल्लू के नेतृत्व में युवा-वर्ग इसका विरोध करने के लिए संगठित होता है। वे सेठ चुन्नीलाल की काली कमाई की धनशक्ति पर प्रहार करने के लिए उसके चोर-गोदाम का पता लगाते हैं। इस प्रकार युवाशक्ति प्रच्छन्न समाज-सेवी का वास्तविक रूप उजागर कर देती है। कथा-क्रम में नागरजी ने राजनेताओं के दो-मुँहे चरित्र तथा स्वार्थ का स्पष्ट चित्र खींचा है। एक तरफ तो वे प्रगतिशील होने का दावा करते हैं तो दूसरी तरफ पूँजीपतियों से गुप-चुप समझौता करते हैं। राजनीतिक नेताओं की इस स्वार्थान्धता का वर्णन करते हुए उपन्यास का नायक बबलू कहता है— “पहले सिद्धान्त और उद्देश्य स्वार्थ थे, अब सत्ता और अर्थ स्वार्थ हैं। पहले इमजैसी का समय देखा फिर चार घोड़ों वाली जनताई बाघी की सवारी देखी, अब यह समाजवादी लोकतंत्र भी देख रहा हूँ। समय की हवा का हर झोंका जहर भरा है। जीने के लिए कहीं से भी आस्था नहीं मिलती।”<sup>५२</sup>

इस प्रकार झूठे-सच्चे दलगत नारों के आधार पर चलनेवाली भारतीय राजनीति के साथ भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, नैतिक मूल्यों के पतन और बनते-बिगड़ते रिश्तों का यथार्थ अंकन उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा है।

उपन्यास का नाम 'बिखरे तिनके' रखने का कोई स्पष्टीकरण उपन्यास में नहीं है। उपन्यास में भूमिका भी नहीं दी गई है। प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने युवकों की बिखरी हुई शक्ति पर चिन्ता करते हुए यह संकेत किया है यदि वे समाज से कटकर स्वार्थ-सीमित युवकों के रूप में कार्य करेंगे तो तिनको की भाँति किसी भी रूप में राष्ट्र के विकास में सहयोगी नहीं होंगे। जैसे तिनकों से बटी रस्सी हाथी बाँधने की क्षमता रखती है, वैसे ही युवा वर्ग की संगठित शक्ति से ही सामाजिक परिवर्तन एवम् राष्ट्र का उन्नयन संभव है। उपन्यास में बिल्लू के शब्दों में युवकों की समाज निर्माण की पीड़ा व्यक्त होती है— "हम भले ही वह दिन न ला सकें जो हमारे सपनों में बसा है मगर उसके लिए भरसक अपने समाज में वैचारिक हिलोरें तो उठा ही देंगे।"<sup>३</sup>

नागरजी ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के उत्थान-पतन को निकट से देखा, परखा और भोगा है। उनके इन्हीं अनुभवों से यह सामाजिक उपन्यास संपन्न है।

### अग्निगर्भा :

१९८४ में रचित 'अग्निगर्भा' नागरजी का सामाजिक उपन्यास है। इस कृति में उपन्यासकार ने मूलतः दहेज की समस्या को व्यक्त करने के लिए कथा को विकसित किया है परन्तु कथा की गतिशीलता के साथ दंगा, बेकारी, सामाजिक भ्रष्टाचार, मनुष्य की कामलोलुपता, अंधविश्वास, रिश्वत, झूठी मान-मर्यादा तथा वंश परंपरा की थोथी दुहाई देने वाले प्रसंग भी जुड़ गए हैं।

उपन्यास में भारतीय नारी के जीवन की दारुण स्थिति का चित्रण किया गया है। आधुनिक समाज में नारी की ऐसी दयनीय दशा हमारी समाज व्यवस्था के दूषित चरित्र को उजागर करती है। दहेज कोढ़ के रूप में समाज में व्याप्त है। "दहेज के कारण कोई स्त्री एक तरह का दुख पाती है तो कोई किसी दूसरी तरह का। ये सारे अत्याचार निरीह स्त्री जाति पर ही हो रहे हैं, पुरुषों पर नहीं।"<sup>४</sup> वैज्ञानिक विकास और सामाजिक उन्नति के नारे पीड़िता नारी के लिए बेमानी हैं क्योंकि पुरुष समाज आज भी उसे दूसरे दर्जे का नागरिक समझता है। ऐसी स्थिति केवल अशिक्षित एवं कम पढ़ी-लिखी महिलाओं की ही नहीं है, सुशिक्षित तथा कार्यरत महिलाएँ भी इस दुर्दशा से ग्रस्त हैं।

'अग्निगर्भा' की नायिका सीता ऐसी ही नारी है जो उच्च शिक्षा प्राप्त है, महाविद्यालय में व्याख्याता है परन्तु भारतीय समाज में असीमित अधिकार सम्पन्न पति के आगे उसकी उच्च शिक्षा तथा अच्छी नौकरी कोई अहमियत नहीं रखती। पत्नी को प्रताड़ित करना, उसकी कमाई पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझना, उसके मायके वालों का अपमान करना, उससे अपनी इच्छानुसार काम करवाना, अपने अनुकूल न होने पर उसे त्याग देना तथा उसकी संतान तक से उसे अलग कर देना आदि ऐसे प्रचलित अस्त्र हैं जिनका इस्तेमाल भारतीय पति अतीत काल से अपनी पत्नियों पर



करते चले आ रहे हैं। 'अग्निगर्भा' की सीता भी इन अत्याचारों से मुक्त नहीं है। भारतीय नारी की स्थिति पर विचार करते हुए सीता की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है— "आज कहते हैं कि स्त्री-पुरुष दोनों के समान अधिकार हैं। झूठ, बिल्कुल झूठ ! स्त्री भले ही पुरुष की बराबरी में अंतरिक्ष तक उठ गई हो, तीन-तीन लोकतांत्रिक देशों में प्रधान मंत्री बन चुकी हो पर आधुनिक नारी आज भी पाषाण युग की नारी की तरह ही तरह-तरह से त्रस्त है।"<sup>५</sup>

सीता निम्न मध्यवर्ग की प्रतिभासंपन्न युवती है। वह एम.ए. (समाज शास्त्र) में स्वर्ण पदक प्राप्त कर चुकी है तथा दुलारी देवी महिला महाविद्यालय में व्याख्याता है। उसे अपने विषय का समुचित ज्ञान है, वह कई पुस्तकों की लेखिका है तथा सेमिनार आदि में खुलकर भाग लेती है। उसने अपनी कार्यकुशलता और सद्व्यवहार से दुलारी देवी महिला विद्यालय की छात्राओं, शिक्षिकाओं, प्रबंधकों एवं ट्यूटियों पर प्रभाव जमा लिया है। विकट परिस्थितियों में सूझ-बूझ से काबू पाने की उसमें अद्भुत क्षमता है। मुसीबत में पड़ी महिलाओं की सहायता वह पूरी आत्मीयता से करती है।

परन्तु सीता का अपना जीवन आरंभ से ही दुखभरा रहा है। साधारण नौकरी करने वाले निम्न मध्यवर्गीय पिता की तीन बेटियों में वह दूसरी है— अपने पिता की सीमाओं को वह जानती है। कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज में दहेज की भयावह स्थिति से वह भली-भाँति परिचित है। एम.ए. करने के बाद बेकारी का जीवन व्यतीत करते हुए वह रामेश्वर नामक युवक के संपर्क में आती है जो दुलारी देवी महिला विद्यालय का अधीक्षक है। रामेश्वर के प्रयास से सीता को 'लेक्चरर' की नौकरी मिल जाती है। दोनों एक दूसरे के निकट आते हैं और विवाह करने को राजी होते हैं। रामेश्वर के परिवार वाले दहेज के नाम पर बीस हजार रुपये नकद माँगते हैं। सीता के पिता किसी प्रकार पन्द्रह हजार की व्यवस्था कर पाते हैं। उनसे बाकी पाँच हजार रुपये का प्रोनोट लिखा लिया जाता है। दहेज लोभी रामेश्वर के परिवार वालों की नजर हर महीने सीता को मिलने वाले वेतन पर भी लगी रहती है। रामेश्वर सीता का सारा वेतन हर महीने अपने पास रख लेता है और सीता अपनी ही कमाई का उपयोग अपनी इच्छानुसार नहीं कर पाती। उसकी सास और नन्द उसके ऊपर अमानवीय अत्याचार करती हैं। अंततः सीता घर छोड़ने को विवश होती है। उसे अपने पुत्र से अलग कर दिया जाता है। सीता जैसी पढ़ी-लिखी, अर्जनरत नारी इन सारी कठिनाइयों को बिना किसी विरोध के सहती रहती है, किसी तरह का प्रतिरोध नहीं करती— यह सीता के व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष है। उपन्यासकार ने दूसरी पीड़िता नारियों के विरोध में सीता को खड़े होते दिखाया है परन्तु अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को वह मूक भाव से सहती रहती है, यह बात अटपटी लगती है। प्रतीत होता है कि उपन्यासकार आम भारतीय नारी की

अवस्था को अंकित करना चाहता है। पूरी कथा अन्य लघु कथा-सूत्रों के साथ सीता के इर्द-गिर्द घूमती रहती है।

उपन्यास का नामकरण 'अग्निगर्भा' पहली नजर में अपनी सार्थकता प्रकट करता प्रतीत नहीं होता क्योंकि उपन्यास की प्रमुख पात्र सीता अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का मुकाबला करने के लिए दृढ़ता से खड़ी होती दिखाई नहीं पड़ती— वह हृदय से हर परिस्थिति को स्वीकार करते हुए आँखों से आँसू बहाती रहती है; तथापि शीर्षक की सार्थकता इस रूप में समझी जा सकती है कि सीता जैसी नारियाँ मरकर भी मरती नहीं हैं, क्योंकि उनके अंदर एक ज्वाला धधकती रहती है। यही ज्वाला संघर्ष से लड़ने की प्रेरणा देती है और सम्पूर्ण नारी जाति में जीवनी शक्ति का संचार करती है। उपन्यास का पूर्व-नाम 'मैं मरूंगी नहीं' भी इस अर्थ की ओर संकेत करने वाला है।

इस प्रकार उपन्यासकार ने दहेज से संबद्ध अत्याचारों का चित्रण ही उपन्यास का प्रमुख विषय बनाया है। पशुवत् जीवन बिताने की भारतीय नारी की विवशता का चित्रण करके उपन्यासकार ने उपन्यास के उद्देश्य को समाज की ज्वलंत समस्या दहेज के परिप्रेक्ष्य में व्यक्त किया है। यही कारण है कि उपन्यास कथानक की दृष्टि से शिथिल होने पर भी अपने सामाजिक उद्देश्य को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। यह उपन्यास नागरजी के अन्य उपन्यासों की भाँति प्रभाव की सृष्टि नहीं करता।

### करवट :

१९८५ में रचित नागरजी के 'करवट' उपन्यास को ऐतिहासिक भी कहा जा सकता है और सामाजिक भी। निकट अतीत के इतिहास को उजागर करने के कारण इसे ऐतिहासिक और वर्तमान समाज की विविध जीवन्त समस्याओं से जुड़े होने के कारण इसे सामाजिक उपन्यास माना जा सकता है। वास्तव में किसी एक दायरे में बँधकर उपन्यास का विवेचन करना कृति के साथ अन्याय होगा।

इस उपन्यास में सन् १८५६ से १९०५ तक के समय का राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक चित्रण किया गया है। इस पूरे काल खंड का भारतीय समाज एक बड़ी करवट लेकर किस प्रकार वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है तथा उसकी विकास यात्रा की प्रमुख घटनाओं ने किस प्रकार पूरे समाज को प्रभावित किया है, इसका ब्यौरेवार वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। अतः नागरजी की इस कृति को 'सामाजिक इतिहास' भी कह सकते हैं। नागरजी ने 'निवेदनम्' में लिखा है— "समय का परिवर्तन इतिहास की पूँजी है। गदर के बाद अंग्रेजी शासन और शिक्षा के प्रभाव से हमारे समाज में एक नई मानसिकता का उदय हुआ था। संघर्ष की प्रक्रियाओं में पुरानी जातीय पंचायतों को नए जातीय "असोसिएशनों" ने करारे धक्के ही नहीं दिए वरन् कालान्तर



में उन्हें ध्वस्त ही कर डाला। इन जातीय संघर्षों से ही नई राष्ट्रीयता ने जन्म पाया था। यह इतिहास ही इस उपन्यास में काल्पनिक पात्र-पात्रियों के द्वारा अंकित हुआ है।”<sup>६</sup>

गदर के बाद के भारतीय समाज का परिवर्तित होता स्वरूप इस उपन्यास में अंकित है जो पूरी तरह इतिहास का आभास देता है। अंतर केवल इतना है कि कुछ वास्तविक ऐतिहासिक पात्रों को यथावत् रखते हुए तत्कालीन समाज के चित्रण के लिए काल्पनिक पात्रों की योजना कर ली गई है। नागरजी के शब्दों में— “इस प्रकार इतिहास को कल्पना से जोड़ते हुए मैंने कई उचित परिवर्तन किए हैं। उपन्यास भानमती का कुनबा होता है— कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा। एक अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार ‘इतिहास में तारीखों के अलावा और सब कुछ गलत होता है और उपन्यास में तारीखों के अलावा और सब सच।’ पाठक कृपया इसी दृष्टि से इसे देखें।”<sup>७</sup>

खत्री जाति के कथानायक ‘तनकुन’ के बहाने नागरजी ने अनेक जातियों के यथार्थ को लखनऊ के चौक जैसे परिचित परिवेश में घटित होते दिखाया है। कथा का विस्तार लखनऊ से कलकत्ता, फिर लाहौर तक होता है। कथाक्रम अंततः देश की अन्य घटनाओं से जुड़ जाता है। इस प्रकार १८५७ के गदर के बाद का भारतीय जीवन स्वाधीनता संघर्ष, सामाजिक संक्रमण, सांस्कृतिक नवजागरण आदि अधिक स्पष्ट रूप से उपन्यास में चित्रित किए गए हैं।

विस्तृत काल-खंड में तीन पीढ़ियों की जीवनगाथा के चित्रण से यह उपन्यास भारतीय समाज के बदलते जीवन-मूल्यों का विवेचन करता है तथा परम्परा और आधुनिकता के टकराव को व्यक्त करता चलता है। करवट का संपूर्ण कथानक महाकाव्यात्मक उपन्यास का आभास देता है। अंग्रेजों का व्यापारी के रूप में भारत-आगमन और अपने गुणों के कारण नवाबों, बादशाहों को गद्दी से उतारकर यहाँ की राजगद्दी प्राप्त कर लेने की कथा विस्तार के साथ इस उपन्यास में वर्णित है।

उपन्यास का नामकरण परिवर्तन की सूचना देने वाला है। मध्ययुगीन जड़ता से नवजागरण की ओर समाज बड़ी ‘करवट’ लेता है, शीर्षक यही अर्थ व्यंजित करता है। निष्प्राण, सुषुप्त तथा आलस्य से जकड़ा समाज करवटें लेकर नवजागरण से जुड़ गया था। इसी परिवर्तन का ऐतिहासिक-सामाजिक विवेचन कथा के माध्यम से उपन्यास में किया गया है। उपन्यास के पृष्ठ ३४४ पर इसका स्पष्ट संकेत है— “हमारा देश तेजी से करवटें बदल रहा है।”<sup>८</sup>

उपन्यास में भारतीयों का आपसी वैमनस्य, द्वेष, विलासिता, आलस्य, अदृदर्शिता के साथ-साथ वाजिद अली शाह का कला-प्रेम, उसका लंबा-चौड़ा हरम और विलासिता का चित्रण किया गया है। वाजिद अली शाह का अंग्रेजी फौजों के आगे समर्पण, जलमार्ग से कानपुर से कलकत्ते आगमन, अंग्रेजों की कैद में उसका मटियाबुर्ज में रखे

जाने का वर्णन भी उपन्यास में मिलता है। तात्या टोपे और नाना फडनवीस के प्रति अंग्रेजी-आक्रोश, सन् ५७ के गदर में दिल्ली के बादशाह को कैद करके रंगून भेज दिया जाना, १८८५ में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना तथा कांग्रेस के व्यापक प्रभाव का कालक्रमानुसार व्यवस्थित वर्णन इस कृति में प्राप्त होता है। इतिहास की ये घटनाएँ प्रामाणिक हैं। इस काल के इतिहास का इतना क्रमबद्ध वर्णन किसी अन्य कथाकृति में उपलब्ध नहीं होता।

उपन्यास में लखनऊ, कलकत्ता तथा लाहौर का समाज बड़े सजीव रूप में उपस्थित है। समाज में स्त्रियों की स्थिति, नवयुवकों में वैचारिक नवीनता का उदय, तत्कालीन समाज का रहन-सहन, वेष-भूषा, आधुनिकता, व्यक्तिवाद, नारी स्वाधीनता, पीढ़ियों में विचार वैषम्य इन सभी सामाजिक स्थितियों का आकलन 'करवट' में किया गया है। राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानंद के आर्य समाज का तत्कालीन जीवन पर प्रभाव और सनातन धर्म की रूढ़ियों, अंधविश्वासों आदि पर होनेवाले प्रहारों का भी वर्णन कृति द्वारा प्राप्त होता है।

'करवट' की मुख्य कथा लखनऊ के खत्री-समाज के वस्त्र व्यापारी के पुत्र वंशीधर टंडन उर्फ तनकुन से जुड़ी है। तनकुन के व्यवसायी पिता अपने पुत्र तनकुन का दूसरा विवाह करना चाहते हैं। पुत्र मना कर देता है और गृह त्याग देता है। साहसी युवक अंग्रेजी सीखकर अंग्रेजों से मित्रता करता है। एक बूढ़े अंग्रेज की युवा पत्नी नैन्सी के शारीरिक आकर्षण का लाभ उठाकर वंशीधर अंग्रेज शासकों का प्रिय बन जाता है। वह पुरानी पाण्डुलिपियों की खरीद-बिक्री करके फोर्ट विलियम छोटे लाट और पिन्काट तक पहुँचता है। मैट्रिकुलेशन और बी.ए. पास करने के बाद एक स्कूल का हेडमास्टर बनकर वह लखनऊ आता है और पदोन्नत होकर शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी के रूप में सेवा-निवृत्त होता है। उसे राय साहब की उपाधि दी जाती है। उसका बेटा देश दीपक लाहौर में डाक्टरी पढ़कर लखनऊ में अपने पिता के सामाजिक कार्य को आगे बढ़ाता है। १९०२ के प्लेग के साथ उपन्यास पूर्ण होता है।

उपन्यास में नारी जागरण के संदर्भ में देशदीपक की माँ चंपकलता और उसकी पत्नी कौशल्या के व्यक्तित्व स्मरणीय हैं। व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले परिवर्तन से लेकर अवध के ठेठ जीवन का मंद गति से होने वाला बदलाव बड़ी ही आकर्षक कथा द्वारा इस कृति में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार 'करवट' अपने विस्तृत 'कैनवास' पर ऐतिहासिक घटनाओं के मध्य सामाजिक आशय व्यक्त करता चलता है। १८५७ के गदर के बाद किन-किन बिन्दुओं से गुजरते हुए १९०५ का भारत निर्मित हुआ है, इसका कलात्मक लेखाजोखा 'करवट' में मिल जाता है।



उपन्यास में नागरजी के चिर परिचित 'बाबा रामजी' लंगोटीधारी वृद्ध साधु के रूप में उपस्थित हैं। उपन्यास की अंतिम पंक्तियों में उनका यह उद्घोष डॉ. देश दीपक टंडन उर्फ 'खोखा' को आस्था की ज्योति प्रदान करता है—

“चाहता नहीं मैं राज्य स्वर्ग या पुनर्जन्म

चाहता हूँ राम दीन दुखियों की पीड़ा हरूँ”<sup>११</sup>

बाबा की आँखों को देखकर “खोखा को ऐसा लगा कि जैसे उनकी आँखों से दो ज्योति रेखाएँ बढ़ते हुए उसकी आँखों में सीधे समा रही हैं। मृत्यु के महालोक में साक्षात् जीवन तक पहुँचने के लिए मानो वह ज्योति का पुल उसके रास्ते को सुगम बना रहा था।”<sup>१२</sup>

‘करवट’ उपन्यास का आस्थापरक समापन नागरजी के प्रथम उपन्यास ‘भूख’ के आस्थावादी अंत से मेल खाता है। उनकी इन दोनों कृतियों में मृत्यु के भयानक आतंक के बीच जीवन की ओर अग्रसर होने का जो दर्शन प्राप्त होता है, वह लेखक की जिजीविषा को स्पष्ट करता है। इन दोनों कृतियों के बीच के सभी उपन्यासों में यही आस्था यत्र-तत्र देखी जा सकती है। नागरजी के समस्त जीवनदर्शन का सार उनकी कर्मठ आस्था है।

नागरजी के उपन्यासों के वर्गीकरण एवं विवेचन से पता चलता है कि उनकी दृष्टि केवल समकालीन सामाजिक प्रसंगों पर ही नहीं टिकती, पुराकालीन प्रसंगों का भी स्पर्श करती है। उनके सामाजिक, आंचलिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा जीवनीपरक उपन्यास यह प्रमाणित करते हैं कि अमृतलाल नागर की दृष्टि बहु-आयामी रही है। विषय की विविधता उपन्यास की रोचकता अथवा प्रभविष्णुता को कम नहीं करती—कृति का आकर्षण बना रहता है। इस वैशिष्ट्य का प्रधान कारण उपन्यासों का सशक्त शिल्प है। अगले अध्याय में नागरजी के उपन्यासों के शिल्प-पक्ष का विवेचन करते हुए उपन्यासकार के संरचना कौशल की विस्तृत चर्चा द्वारा इस कथन की पुष्टि की जायगी।

### संदर्भ :

१. डॉ. शशिभूषण सिंघल : हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ १४; २. डॉ. जगदीश गुप्त, आलोचना, अक्टूबर १९५४, उपन्यास अंक, पृष्ठ १७७; ३. रांगेय राघव : विवाद मठ, पृष्ठ १००; ४. महाकाल : समर्पण से; ५. वही पृष्ठ “ख”; ६. भूख : भूमिका, पृष्ठ “घ”, ७. महाकाल : समर्पण से; ८. भूख : पृष्ठ १६४; ९. “अभिरुषि” (त्रैमासिक), अगस्त-नवंबर १९८१, पृष्ठ १०; १०. अमृतलाल नागर, टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ १५५; ११. सेठ बोकेमल (पॉकेट बुक संस्करण) पृष्ठ १०६; १२. तुलसीदास : रामचरितमानस, बालकांड, दोहा-१८; १३. कबीरदास : कबीर-ग्रंथावली (सटीक), पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ ११७; १४. वही, पृष्ठ ११७; १५. बूँद और

समुद्र, पृष्ठ ५८३; १६. वही, पृष्ठ ५८०; १७. डॉ. रामविलास शर्मा : आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ १५२; १८. शतरंज के मोहरे, पृष्ठ २३९; १९. वही, पृष्ठ १४१; २०. सुहाग के नूपुर, निवेदनम्; २१. वही; २२. वही, पृष्ठ २६७; २३. अमृत और विष, पृष्ठ ६३९; २४. वही, पृष्ठ १०; २५. अमृत और विष, पृष्ठ ६४८; २६. सात घूँघट वाला मुखड़ा, विज्ञप्ति से; २७. एकदा नैमिषारण्ये, प्रथम पृष्ठ; २८. वही, अपनी बात, पृष्ठ १३; २९. वही, अपनी बात, पृष्ठ ७; ३०. वही, अपनी बात, पृष्ठ १४; ३१. वही, अपनी बात, पृष्ठ १५; ३२. वही, पृष्ठ ४९३; ३३. मानस का हंस, आमुख से.; ३४. वही, आमुख से.; ३५. वही, आमुख से.; ३६. वही, पृष्ठ ४३७; ३७. वही, पृष्ठ ४३५; ३८. विष्णुकान्त शास्त्री, समीक्षा, जनवरी-फरवरी १९७३ पृष्ठ ८८; ३९. नाच्यौ बहुत गोपाल, निवेदन, पृष्ठ ७; ४०. वही, निवेदन, पृष्ठ ७; ४१. वही, पृष्ठ १७; ४२. वही, निवेदन, पृष्ठ ८; ४३. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ २०; ४४. वही, पृष्ठ ११३; ४५. खंजन नयन, भूमिका, पृष्ठ ७; ४६. वही, भूमिका, पृष्ठ ८; ४७. वही, पृष्ठ २३४; ४८. बिखरे तिनके, पृष्ठ ८८; ४९. वही, पृष्ठ ९०; ५०. वही, पृष्ठ ११; ५१. वही, पृष्ठ ६; ५२. वही, पृष्ठ ८८; ५३. बिखरे तिनके, पृष्ठ १०७; ५४. अग्निगर्भा, पृष्ठ ३१-३२; ५५. वही, पृष्ठ २३; ५६. करवट, निवेदनम्, पृष्ठ ७; ५७. वही, पृष्ठ ७; ५८. वही, पृष्ठ ३४४; ५९. वही, पृष्ठ ३५९; ६०. वही, पृष्ठ ३५९.



### नागरजी के उपन्यासों में संरचना-कौशल

साहित्य की उपन्यास विधा अत्यंत लचीली तथा निर्बन्ध मानी जाती है, ऐसी दशा में उसके मूल तत्त्वों के विषय में सभी आलोचकों का एक मत होना बड़ा ही कठिन है। फिर भी आलोचकों ने साहित्यिक अभिव्यक्ति की इस सबसे स्वच्छन्द एवम् नित्य नवीन रूप धारण करने वाली विधा को नियमबद्ध करने तथा उसके तत्त्वों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। विद्वानों के अनुसार उपन्यास के प्रधान अवयव हैं : कथानक, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली, कथोपकथन, देशकाल निरूपण एवं जीवन दर्शन।

इस अध्याय में नागरजी के उपन्यासों में उपर्युक्त प्रथम पाँच अवयवों के अवलोकन का प्रयास किया गया है। अगले अध्याय में उपन्यासों के उद्देश्य अथवा जीवन-दर्शन के माध्यम से नागरजी की प्रतिभागत विशिष्टता का आकलन करने की चेष्टा की जायेगी।

#### कथानक :

उपन्यास मूल रूप से एक कथा है। कथा के अभाव में उपन्यास का अस्तित्व असंभव है। वास्तव में कथा ही उपन्यास की रीढ़ है। 'कथानक' का संबंध उपन्यास के महत्त्वपूर्ण अंग कहानी (कथा) से होता है, परन्तु कथा और कथानक दोनों में अंतर है। लेखक उपन्यास लिखने के पूर्व कथानक का चुनाव करता है जिसमें कहानी बीज रूप में वर्तमान रहती है। तत्पश्चात् वह उसे ऐसे साँचे में ढालता है जिससे उसके उद्देश्य की सिद्धि हो सके। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार — "कहानी, कथावस्तु अथवा प्लॉट का आधार अवश्य प्रस्तुत करती है परन्तु वह कहानी की अपेक्षा उच्चस्तरीय साहित्यिक संगठन है। उपन्यासों के माध्यम से कही जानेवाली कहानी अन्य कहानियों की भाँति सीधे-सादे ढंग से लेखक द्वारा ही नहीं कह दी जाती बल्कि उपन्यासकार को उसकी समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है, उसका क्रम-निर्धारण करना पड़ता है तथा आए हुए प्रसंगों के साथ उसकी संगति बैठानी पड़ती है।"

उपन्यास में कथा वह कच्चा माल है जो कथानक में ढलकर ही अपने आकर्षक स्वरूप में ग्राह्य होता है। उपन्यासकार कथा को नया आकार प्रदान करता है जिसे कथानक की संज्ञा दी जाती है। कथा की भाँति कथानक भी घटनाओं या कार्यों का वर्णन ही है, पर इसमें कार्य-कारण-संबंध प्रधान होता है, जिसकी कथा में कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। कथा में हम 'फिर क्या हुआ' की मुद्रा में एक के बाद दूसरी घटना की जिज्ञासा रखते हैं, परन्तु कथानक में 'यह कैसे हुआ' के आधार पर प्रत्येक घटना के कारण का संकेत भी रह सकता है अथवा प्रभविष्णुता की वृद्धि के लिए घटनाक्रम का विशिष्ट संयोजन भी किया जा सकता है। इस हेतु कहीं क्रमिक वृत्तान्त-कथन, कहीं पूर्व-दीप्ति पद्धति, कहीं पत्र-लेखन तो कहीं डायरी आदि अनेक प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है। श्रेष्ठ कथानक में ढलकर ही उपन्यास की कथा व्यापक प्रभाव उत्पन्न करती है। कथा ही कथानक का आधार तत्त्व है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कथा-तत्त्व की प्रमुखता पर बल देते हुए कहा है— "उपन्यास अथवा कहानी और कुछ हो अथवा न हो, एक कहानी अथवा कथा जरूर है। कहानी अथवा कथा में जो बातें आवश्यक हैं वे उनमें अवश्य होनी चाहिए। कोई उपन्यास (या छोटी कहानी) सफल है या नहीं, इस बात की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहने वाले ने कहानी ठीक-ठीक सुनाई है या नहीं, आवश्यक बातों को छोड़ तो नहीं दिया है, जहाँ-जहाँ कहानी अधिक मर्मस्पर्शी हो सकती थी, वहाँ-वहाँ उसने उचित रीति से संभाला है या नहीं, छोटी-छोटी बातों में ही उलझकर तो नहीं रह गया, प्रसंगवशा आई हुई घटना का इतना अधिक वर्णन तो नहीं करने लगा जिससे पाठक का जी ही नहीं ऊब जाए और सौ बातों की एक बात यह कि वह शुरू से अन्त तक सुननेवाले की उत्सुकता जागृत करने में नाकामयाब तो नहीं रहा। कहानीपन इस साहित्य की पहली शर्त है।"<sup>१</sup>

अतः किसी भी उपन्यास को समझने के लिए सर्वप्रथम उसके कथा-तत्त्व की परख करना अति आवश्यक है। कथानक के आधार पर ही उपन्यास के अन्य तत्त्वों का आवरण आकार ग्रहण करता है। यद्यपि उपन्यास के क्षेत्र में होने वाले नवीन प्रयोगों एवं प्रविधियों ने कथानक के बंधन को स्वीकार नहीं किया है किन्तु यह बात बिना किसी विवाद के स्वीकार की जा सकती है कि उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही निर्मित होता है। कथानक की दृष्टि से उपन्यासों के दो भेद किए गए हैं—

१) शिथिल कथानक के उपन्यास २) सुगठित कथानक के उपन्यास

शिथिल कथानक वाले उपन्यास की घटनाओं में आपस में कोई सहज संबंध नहीं होता, बहुत सी घटनाएँ आरोपित होती हैं, परन्तु सुगठित कथावस्तु वाली कृति में घटनाएँ एक-दूसरे से इस प्रकार संबद्ध रहती हैं कि उन्हें साधारणतया पृथक् करना



संभव नहीं हो पाता। सुगठित कथानक वाले उपन्यासों में सारी घटनाएँ उपसंहार की ओर बढ़ती हुई उपन्यास को ऐसा आकार दे देती हैं जिससे भिन्न-भिन्न अवयव एक-दूसरे से मिले हुए प्रतीत होते हैं और उनको अलग-अलग करने से सब की महत्ता नष्ट हो जाती है।

कथानक का चयन एवं उसकी सुव्यवस्थित कलापूर्ण प्रस्तुति लेखक की महानता का मानदंड है। यही कारण है आज भी उपन्यास रचना सामान्यतः कथानक के माहात्म्य को स्वीकार करती है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने लिखा है — “यद्यपि आधुनिक काल में कथानक का महत्त्व कम समझा जाता है पर यह उपन्यास का मूल है।”<sup>19</sup>

### नागरजी के उपन्यासों में कथानक संगठन की दक्षता

नागरजी के उपन्यासों में कथानक को विशेष महत्त्व प्राप्त है। उनके उपन्यास कथा तत्त्व से संपन्न दिखाई पड़ते हैं। कथानक के प्रति नागरजी की यह सजगता प्रेमचन्द-युग की देन है। इस दृष्टि से वे प्रेमचन्द के योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध होते हैं। कहानीपन की महत्ता स्वीकार करते हुए नागरजी ने लिखा है— “चाहे उपन्यास हो या रंग-मंच, रेडियो अथवा फिल्मी नाटक — सबका आधार कहानी है। कहानी इंसान की घुड़ो में पड़ी आदत है, इससे कोई बच नहीं सकता, बतरस होना ही चाहिए।”<sup>20</sup> संभवतः इसीलिए नागरजी के सभी उपन्यासों की कथाएँ अत्यंत रोचक होती हैं। रोचकता को नागरजी कथानक का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। इसका कारण वह पृष्ठभूमि भी है जो नागरजी को उपन्यास-लेखन के समय प्राप्त हुई थी। किस्से सुनने का शौक भी नागरजी के उपन्यासों में कथा तत्त्व को प्रभावी बनाने वाला रहा है। अज्ञेय जी ने नागरजी से एक बार पूछा था — “क्या आप ऐसा मानते हैं कि उपन्यास में सबसे पहली चीज रोचक कहानी होनी चाहिए ?” इसके उत्तर में नागरजी ने कहा था— “..... किस्सा सुनने का प्रभाव और उसकी रोचकता मन में कहीं चुभ गयी, खूँटे-सी गड़ गयी। वह खूँटा और अधिक पुख्ता हुआ फिल्म में हमारे सात वर्ष के कैरियर में। लेकिन जो सबसे बड़ी चीज फिल्म ने हमें दी वह रोचकता बाँटने की कला थी।”<sup>21</sup>

नागरजी ने अपने उपन्यासों की रचना आंचलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा जीवनीपरक कथानकों को आधार बनाकर की है। इन उपन्यासों में आकार की दृष्टि से कुछ वृहत् हैं, कुछ लघु हैं तो कुछ मध्यम आकार के हैं। उनके बूँद और समुद्र, अमृत और विष, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस, नाच्यो बहुत गोपाल तथा करवट उपन्यास अपने विस्तृत फलक के कारण वृहदाकार के उपन्यास हैं; महाकाल, शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर, खंजन-नयन मध्यम आकार के तथा सेठ बाँकेमल, सात घूँघटवाला मुखड़ा, बिखरे-तिनके तथा अग्निगर्भा लघु आकार के

उपन्यास हैं। उपन्यासों का यह आकार-भेद उनके आधार फलक के कारण है। विभिन्न समस्याओं के चित्रण हेतु जिन उपन्यासों में व्यापक पृष्ठभूमि ली गई है वे आकार में बड़े हो गये हैं। जिन उपन्यासों में पृष्ठभूमि का दायरा व्यापक नहीं है वे मध्यम आकार के हैं तथा लघुफलक और खास समस्याओं को उठानेवाले उपन्यास लघु आकार के हैं।

श्री अमृतलाल नागर के उपन्यासों का सुनियोजित एवं श्रृंखलाबद्ध कथानक उन्हें दक्ष उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। उनके उपन्यासों के कथानक का विवेचन इस तथ्य को प्रमाणित करेगा।

नागरजी के प्रथम उपन्यास 'महाकाल' के कथानक में बंगाल के भीषण अकाल से उत्पन्न परिस्थितियों एवं परिवेश का चित्रण ही मुख्य है। १९४३ का बंग-दुर्भिक्ष इतिहास की एक भयावह एवं लोमहर्षक घटना के रूप में याद किया जाता है। लेखक ने अकाल की समस्या को भूख की समस्या से जोड़कर उसे व्यापक भाव-भूमि प्रदान की है।

उपन्यास के कथानक को यथार्थपरक तथा चित्रण को सजीव बनाने के लिए नागर जी ने महाकाल के चरित्र एवं चित्र संजोकर वहाँ की कथाएँ बटोरीं और अपने रजिस्टर में अंकित कर उन घटनाओं, चित्रों और चरित्रों का उपन्यास में पूरा उपयोग किया। उपन्यास के लिए प्रारंभिक नोट्स उपवास के दौरान लिए तथा बंबई प्रवास के समय अनुभूत भूख की पीड़ा का उपयोग उपन्यास-रचना के लिए किया। बंग दुर्भिक्ष के दृश्य कलकत्ते में लेखक ने अपनी आँखों से देखे थे, यही कारण है कि उनका चित्रण यथार्थपरक और मर्मस्पर्शी हो गया है।

अकालजन्य परिस्थिति के चित्रण को प्रभावी बनाने के लिए कथाकार ने जो कथा-सूत्र संजोए हैं उनमें अद्भुत वैसादृश्य (contrast) है। एक ओर भूख से मरती असहाय जनता है तो दूसरी ओर इस क्षुधा-पीड़ित जन-समुदाय का लाभ प्राप्त करनेवाला वह व्यापारी-वर्ग है जो लाशों को बेचकर धन कमाना चाहता है, बहू-बेटियों को वेश्या बनने को मजबूर करता है।

कथानक की मुख्य घटनाएँ बंगाल के एक छोटे से गाँव मोहनपुर में घटित होती हैं। सारा गाँव अकाल की चपेट में है, लोग एक-एक दाने चावल के लिए मोहताज हैं। इसी गाँव के एंग्लो-बंगाली स्कूल के हेडमास्टर पाँचू का परिवार भी अकाल से बुरी तरह प्रभावित होता है। गाँव के अन्य परिवारों की भाँति उसके परिवार के लोग भी एक-एक करके मर रहे हैं। इस कटु यथार्थ से लाचार पाँचू ईमानदारी और आदर्शवादी संस्कार को भूलकर स्कूल की डेस्कें बेच देने का निर्णय लेता है।

कथानक को सार्थक और सजीव बनाने के लिए लेखक ने पूँजीवादी व्यवस्था की विकृतियों का चित्रण किया है। इस हेतु उपन्यासकार का पात्र मोनाई खलनायक के रूप में कथा को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाता है।



उपन्यासकार ने घटनाओं को इस रूप में घटित होते दिखाया है जिससे कथा में रोचकता बनी रहती है। उपन्यास के अंत में पाँचू का पलायन उपन्यास को ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करता है जिससे कथा के प्रति पाठक के मन में औत्सुक्य बना रहता है।

उपन्यास का अंत बड़ा ही नाटकीय है। यह नागरजी की शिल्पगत क्षमता का ही उत्कर्ष है कि मौत की काली छाया से आर्तकित होकर पलायन करने वाला पाँचू मार्ग में नवजात शिशु के रुदन से जीवनी-शक्ति प्राप्त करता है और घर लौट पड़ता है। घर में उसकी पत्नी, पति के पलायन से दुखी और घर के चार प्राणियों की लाशों के बीच बैठे जीवन की सारी आशाएँ खो चुकी हैं। परन्तु नागरजी का कथाकार विनाश की इस भयावह परिस्थिति में भी सृजन के बीज का वपन कर जीवनेच्छा का परिचय देता है। पत्नी मंगला की गोद में नवजात शिशु को डालकर वह कहता है- “जो होना था, वह हो गया। अब इसे संभालो। इसे बचाओ। इसे बचाने के लिए ही हम-तुम जिँएँगे।”<sup>६</sup> पाँचू का यह कथन उसके धैर्य तथा उसकी जिजीविषा को प्रमाणित करता है और कथानक को चरम परिणति प्रदान कर देता है। मृत्यु की विनाश-लीला के बीच जीवन का यह संकल्प नागरजी के कथाकार की आस्था का द्योतक है। कथानक का आदर्शपरक समापन कृति को प्रेमचंद-परंपरा से जोड़ देता है।

हिन्दी के लघु उपन्यासों में ‘सेठ-बाँकेमल’ कथानक की दृष्टि से नवीन प्रयोग वाला उपन्यास है। केवल ११२ पृष्ठों वाली इस कृति में १६ रोचक कहानियों के रूप में जो घटनाएँ प्रस्तुत की गई हैं उनके तारतम्य ने ‘सेठ बाँकेमल’ को सहज ही उपन्यास बना दिया है। इस प्रकार की शैली का प्रयोग धर्मवीर भारती कृत ‘सूरज का सातवाँ घोड़ा’ तथा शिव प्रसाद मिश्र रुद्र कृत ‘बहती गंगा’ में भी मिलता है। इन कृतियों की कहानियाँ भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए अंततः उपन्यास का रूप धारण कर लेती हैं। संभवतः ‘बेताल-पचीसी’ एवम् ‘सिंहासन बत्तीसी’ कृतियों से भी लेखक ने प्रेरणा प्राप्त की होगी।

उपन्यास में संकलित कहानियाँ अलग-अलग शीर्षक के साथ प्रस्तुत की गई हैं। प्रत्येक कहानी में भिन्न घटनाओं का वर्णन है परन्तु हर घटना के बीच दलती हुई सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के इतिहास को उपस्थित करने का सफल प्रयास लेखक ने किया है। वास्तव में यही “प्रयास” वह सूत्र है जो बिखरी हुई घटनाओं एवं परिस्थितियों को एक दूसरे से जोड़कर उपन्यास का रूप दे देता है— ठीक उसी प्रकार जैसे अलग-अलग पुष्प सूते के द्वारा पिरो दिए जाने पर एक माला का रूप धारण कर लेते हैं।

कृति की हर घटना अपने में पूर्ण एवं स्वतंत्र है। एक घटना का वर्णन समाप्त होते ही सेठ बाँकेमल को फिर कोई मौका मिल जाता है जिससे वे अगली घटना का

वर्णन पूरे उत्साह से करने लगते हैं। उदाहरणार्थ पहली घटना 'बंबई फौक्स' में दोनों मित्रों की बंबई यात्रा के रोचक विवरण समाप्त होते ही 'दिल्ली का धावा' शीर्षक दिल्ली यात्रा का प्रसंग शुरू हो जाता है। इसी क्रम में 'गोकुल की गोपियों' से छेड़-छाड़ का किस्सा आरंभ होता है जिसमें उठापटक और मारपीट का वर्णन समाप्त करते-करते सेठजी 'चौबेजी' के कथन का उद्धरण दे देते हैं— "अरे भई, अखडैती कीनी है हमलोगों ने, कुछ खुसकैटी थोड़े ही कीनी है। माधो गुरु के सागिरद हैं..... जिनके नाम का डंका बजे था आगरे में।" यह वाक्य सेठजी को नई स्फूर्ति देता है और वे 'चौबेजी ने लंगोटा कसा' शीर्षक अगला नवीन प्रसंग आरंभ कर देते हैं। नागर जी ने हर कहानी के समाप्त होते-होते कोई-न-कोई ऐसा वाक्य सेठ जी से उच्चरित करवा दिया है जिससे उनका चरित नायक बाँकेमल नई घटना का वर्णन करने का अवसर पा जाता है। यह नागरजी के कथाकार का वैशिष्ट्य है। आगरा का उत्फुल्ल वर्णन करते हुए सेठ जी 'साज्हां बास्साय ने कलेजा कूटा' प्रसंग में हिन्दू-मुस्लिम दंगे की चर्चा करते हैं तथा अगली घटना 'कृष्णजी मुहम्मद बने' का भी वर्ण्य विषय प्राप्त कर लेते हैं। इस घटना के अंत में भारतवर्ष में पाखंडी साधुओं के पाप का वर्णन है जिसका क्रम अगली कहानी 'पाँच का दौंव' के आरंभ तक जारी रहता है। वे कहते हैं — "सिसार में सुसरी चोरी-बदमाशी शराब-कबाब, जुवा-जकारी ऐसी बढ़ गई है कि बस क्या कऊँ।" "जुआ" शब्द आते ही उन्हें जुआ-वर्णन का मौका मिल जाता है और लगे-हाथ सेठ जी अपने द्यूत-प्रेम की कथा सुना डालते हैं। अगले प्रसंग 'जोसे-जवानी' तथा 'तीर तलवार की आसक मासुकी' इसी तरह सूत्र पाकर प्रारम्भ होते हैं। कृति का कथानक इन्हीं कहानियों से गतिशील होता है, इस पर विराम तभी लगता है जब 'दुकान बढ़ाने का समय' आ जाता है और श्रोता के रूप में उपस्थित चौबे जी का पुत्र विदाई ले लेता है।

नागरजी ने कथानक को नवीन पद्धति का निर्वाह बड़ी कुशलता के साथ किया है। उन्होंने अपनी हास्य-व्यंग्य की क्षमता को प्रमाणित करते हुए 'किस्सागोई' का कमाल दिखाया है। किसी सुनियोजित पात्र या धारावाहिक कथा के अभाव में भी यह उपन्यास अपने ढंग का अनोखा है। गप्प और कपोल कल्पना पर आधारित किस्सों के माध्यम से मिटते हुए सामंतवादी जीवन का यथार्थ चित्रण कथानक का वैशिष्ट्य है। बिखरी हुई घटनाओं एवं कहानियों के कारण 'सेठ-बाँकेमल' को शिथिल उपन्यास माना जा सकता है परन्तु अपनी रोचकता के कारण हिन्दी में हास्य की सफल एवं प्रतिनिधि रचना के रूप में उसकी स्वीकृति पर किसी को एतराज नहीं हो सकता।

अपने दूसरे उपन्यास में ही नवीन कथा-शिल्प का सफल प्रयोग करने का साहस नागरजी की प्रतिभा तथा कथा संगठन की अद्भुत क्षमता को प्रमाणित करता है।

नागरजी के तृतीय एवम् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास 'बूँद और



समुद्र' के कथानक गठन की जानकारी हेतु लेखक का आरंभिक वक्तव्य सहायक हो सकता है। नागरजी कृति के आरंभ में लिखते हैं— "इस उपन्यास में मैंने अपना और आपका — अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आँकने का यथामति, यथासाध्य प्रयत्न किया है।" विस्तृत समुद्र की भाँति फैले हुए मध्यवर्गीय समाज के चित्रण हेतु लेखक ने लखनऊ के चौक क्षेत्र को बँद के रूप में लिया है और सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है। कथावस्तु को आकार प्रदान करने के लिए नागरजी ने मुख्य कथा और उपकथाओं के माध्यम से विभिन्न चरित्रों की सृष्टि की है।

उपन्यास की कथा के तीन सूत्र हैं — पहली कथा ताई से सम्बद्ध है; दूसरी कथा सज्जन-वनकन्या तथा उनकी गतिविधियों से जुड़ी है तो तीसरी कथा महिपाल-कल्याणी एवं डॉ. शीला रिंग के प्रेम त्रिकोण को लेकर चलती है। इन तीन प्रमुख कथाओं के अतिरिक्त और भी अनेक छोटी कथाएँ हैं जो उपन्यास के कथानक को प्रभावशाली बनाने में सहायक हैं। इनमें चौक मुहल्ले के ही भभूती सुनार के परिवार तथा वमा दम्पति की कहानी आती है। कथानक के उत्कर्ष में बाबा रामजी दास की गतिविधियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। सामान्यतः उपन्यास की सभी कथाएँ सज्जन और वनकन्या से प्रभावित होती हैं। संपूर्ण कथा के केन्द्र में ये दोनों पात्र उपस्थित हैं।

नागरजी ने कृति के कथानक के गठन हेतु यथार्थ चित्रों को सँजोकर विस्तृत कथाफलक का निर्माण किया है परन्तु अपने युग-जीवन को बहुत बड़े परिवेश में न ग्रहण कर एक सीमित क्षेत्र में केन्द्रित करके उपन्यासकार ने सामाजिक जीवन का व्यापक चित्रण किया है। कथानक का गठन करते समय लेखक ने लखनऊ नगर के चौक मुहल्ले की संपूर्ण जिन्दगी को उसकी विविधता, जटिलता और उलझाव के साथ अंकित किया है। अपने 'नगरांचलीय' रूप में स्वीकृत, समादृत होते हुए भी उपन्यास का महाकाव्यात्मक स्वरूप सारे भारत को समेट लेता है। यह उसके कथानक का वैशिष्ट्य है।

चौक मुहल्ले की बोली-बानी, रीति-रिवाज तथा गतिविधियों से भली-भाँति परिचित होने के कारण उपन्यासकार ने बड़ी बारीकी से अपनी कथा में यहाँ की गतिविधियों का चित्रण किया है। इस क्षेत्र के सामाजिक आचार-विचार, गाली-गलौज, टोना-टोटका, अंधविश्वास, वाद-विवाद सभी अपनी स्वाभाविकता के साथ कथानक के अंग बन गये हैं। कथानक का सबसे शक्तिशाली पक्ष उसकी यही यथार्थता है। कथावस्तु में मध्यवर्गीय जीवन वृहत् रूप में उपस्थित हुआ है। व्यक्तियों के अतिरिक्त मकानों, खण्डहरों, मंदिरों-चबूतरों आदि के सजीव रेखाचित्र कथानक को प्राणवान बनाते हैं। कृति में ताई के वैभव और दुर्भाग्य से लेकर सज्जन, वनकन्या, महिपाल,

कल्याणी, शीला स्विंग, कर्नल के अलावा विरहेश, बड़ी, तारा, नन्दो जैसे पात्रों की बड़ी श्रृंखला उपस्थित है। नागरजी ने इन सभी पात्रों को उपन्यास की कथा में गतिशील रखकर उन्हें जिस रूप में नियंत्रित किया है उससे तत्कालीन मध्यवर्ग अपनी जीवंतता के साथ चित्रित हो गया है। बाबा रामजी दास जैसे अस्वाभाविक लगनेवाले पात्र अपनी पारमार्थिक उपस्थिति से पूरी कथा को नया आयाम दे देते हैं।

परन्तु कथानक-गठन में कुछ कमजोरियाँ भी परिलक्षित होती हैं। वृहत् 'कैनवास' के कारण कथा की छोटी-बड़ी धाराओं का सर्वत्र सफल नियोजन नहीं हो सका है। अनेकानेक कथा सूत्रों और अंतर्कथाओं के कारण कथानक जटिल हो गया है। कई प्रसंगों का विस्तृत वर्णन उबाऊ है तथा अनावश्यक प्रसंगों की भरमार कथा-प्रवाह में बाधा पहुँचाती है। डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार— "कथावस्तु के संगठन में गहराई नहीं है। जिस समाज का जीवन उपन्यास में प्रस्तुत है, वह कलात्मक दृष्टि से पूर्णतः नियोजित नहीं हो सका है।"<sup>10</sup> डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय का मत भी इसी प्रकार का है— "नागर अपनी पीढ़ी को तो अच्छी तरह चित्रित कर सके हैं परन्तु नई पीढ़ी को वे सफलता के साथ प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।"<sup>11</sup> कथानक गठन में जिस मध्यवर्ग का चित्रण किया गया है उसकी आलोचना करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं— "निश्चित रूप से यह मध्यवर्ग वह नहीं है जिसमें हम अर्थात् आज की पीढ़ी जीती है, यह मध्यवर्ग वह है जिसमें हम जी चुके हैं, अर्थात् जो हमारे सामने चुक रही है— समाप्तप्राय हो गई है। चुनाव इत्यादि के नयेपन के बावजूद यह द्वितीय महायुद्ध के पहले का मध्यवर्ग है।"<sup>12</sup>

कथानक की इन कमजोरियों के बावजूद उपन्यास में नागरजी का सिद्ध कथाकार अपने कथा कहने की पद्धति और कथा प्रवाह के कारण रोचकता की सृष्टि करता है। उपन्यास में किसी ऐसी शिल्पविधि या तकनीक का सहारा नहीं लिया गया है जिससे 'नैरेशन' में कोई विशेषता उत्पन्न हो परन्तु उपन्यासकार की सिद्ध लेखनी, यथार्थान्वेषी दृष्टि तथा अनुभव की गहनता कथानक को प्रभावी बनाती है। कलात्मकता की दृष्टि से कथानक के नियोजन में विस्तार एवं शिथिलता के दोष के बावजूद जीवन की प्रतिकृति के रूप में यह विस्तारपूर्ण जीवन अधिक विश्वसनीय है।

'शतरंज के मोहरे' उपन्यास के कथानक का गठन इतिहास और कल्पना दोनों के मिश्रण से किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करते समय लेखक को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि कृति में ऐतिहासिक तथ्य इतनी प्रचुर मात्रा में न रहें कि सारा प्रसंग ही बोझिल हो जाय। कल्पना के किंचित् स्पर्श से ऐतिहासिक कथ्य रोचक कथा के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। नागरजी ने 'शतरंज के मोहरे' में कथा सूत्रों का चयन इसी रूप में किया है।



अवध के इतिहास के प्रति नागरजी का प्रेम सर्वविदित है। डॉ. राम विलास शर्मा ने 'धर्मयुग' में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखा है — "नागरजी को इतिहास से प्रेम है, और इतिहास में भारत के इतिहास से ..... भारत के इतिहास में अवध के इतिहास से और अवध के इतिहास में राणा वेणीमाधव और हजरत महल के इतिहास से उन्हें विशेष प्रेम है। अवध के इतिहास को जितनी गहरी जानकारी नागरजी को है उतनी मेरी परख के अनुसार, किसी इतिहासकार को नहीं है। जानकारी के अलावा उनकी मर्म दृष्टि तथ्यों की तह के नीचे सत्य की भागीरथी का पता उस सहज बुद्धि से लगा लेती है जो उनके कलाकार की विशेषता है।"<sup>13</sup>

नागरजी ऐतिहासिक तथ्यों को नीरस रूप में प्रस्तुत नहीं करते उनकी तलस्पर्शी दृष्टि घटनाओं के अंतराल में पैठती है और उनकी लेखनी इतिहास के साथ-साथ जन सामान्य के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का प्रभावशाली चित्रण भी करती है।

कथानक के गठन हेतु लेखक ने कठिन परिश्रम एवं अध्ययन के साथ-साथ अवध के अनेक जिलों का दौरा कर वहाँ के बड़े-बूढ़ों से बातचीत की तथा गदरकाल की अनेक घटनाओं का संग्रह किया। इस उपन्यास के २ वर्ष पूर्व १९५७ में प्रकाशित लेखक की शोधपरक रचना 'गदर के फूल' की विपुल सामग्री भी इस उपन्यास के निर्माण में सहायक बनी। इसके अतिरिक्त नागरजी ने अंग्रेजी और फारसी के चार विशेष इतिहास ग्रंथों से भी सामग्री-संकलन में सहायता ली है। लेखक ने ऐतिहासिक पात्रों को कल्पना की डोरी से पिरोकर कथानक को आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण बनाने में सफलता प्राप्त की है। अवध के इतिहास से संबंधित पुस्तकें, गजेटियर तथा जन-प्रचलित किंवदंतियाँ लेखक की ऐतिहासिक कथा को पुष्ट करती हैं। अपनी समर्थ प्रतिभा से लेखक ने इतिहास और कल्पना का ऐसा घोल तैयार किया है जिससे एक-दूसरे को पृथक् करना बड़ा कठिन है। यह लेखक की कथानक-गठन की क्षमता को प्रमाणित करता है।

इस उपन्यास में नवाबों का विलास-वैभव, सत्ता-प्राप्ति के लिए राजमहल में चलनेवाले कुचक्र, बादशाह बेगम तथा आगामीर के संघर्ष, अंग्रेजों की कूटनीति आदि ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार तथा नैतिक अधःपतन का खुला चित्रण मिलता है।

कथानक के माध्यम से नवाबी शासन में पिसते हुए जनजीवन की पीड़ा उभरकर सामने आई है। सामन्ती व्यवस्था की पतनोन्मुख स्थिति अपनी सभी कमजोरियों एवं गिरते हुए राजनीतिक मूल्यों के साथ अंकित की गई है। कथा अपने संपूर्ण रूप में अवध के नवाबी शासन का 'पोस्टमार्टम' कर देती है। उपन्यास की कथा में उस काल का यथार्थ पूरी तरह व्यंजित हुआ है। नवाबों की शान-शौकत तथा नाच-गानों एवं

वेश्याओं के प्रति उनकी आसक्ति के साथ तत्कालीन मुस्लिम समाज में चलने वाली अत्याशी का चित्रण ऐतिहासिक पात्रों के सहारे किया गया है। कथानक का निर्माण इस रूप में किया गया है कि उसके सभी प्रमुख पात्र शतरंज की बिसात में बिछे मोहरों की तरह आचरण करते हुए दिखाई देते हैं। यह उपन्यासकार के कथा-गठन की विशेषता है। एक सजग यथार्थ दृष्टा साहित्यकार के रूप में नागरजी ने नवाबी शासन के मलिन पृष्ठ को पाठकों के सामने उद्घाटित कर दिया है।

इस प्रकार अवध की राजगद्दी पर अंग्रेजों के आधिपत्य की पूर्व-कथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ "शतरंज के मोहरे" में चित्रित हुई है। अवध के रहन-सहन के साथ भाषा की व्यापक जानकारी कथा को प्रभावपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

नागरजी के पाँचवें उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' की कथा का आधार महाकवि इलंगोवन रचित तमिल महाकाव्य "शिलप्पदिकारम" की कथा है परन्तु नागरजी की कुशल लेखनी तथा विशिष्ट शैली ने इस उपन्यास की कथा को मौलिकता प्रदान कर दी है। कृति में नारी जीवन को केन्द्रीभूत करके दक्षिण भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन का यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। कथा के अंतर्गत उपन्यासकार ने "एक प्रेम त्रिकोण का निर्माण कर उसके कोण बिन्दुओं का स्पर्श करते हुए बहिरंग वृत्त के रूप में तत्कालीन सामाजिक जीवन, कला तथा अंतर्देशीय व्यापार को आधार बनाकर चलने वाले राजनीतिक संघर्षों, कुचक्रों तथा सांस्कृतिक जीवन की विकृतियों की झाँकी प्रस्तुत कर दी है।"<sup>५५</sup>

उपन्यासकार ने प्राचीनकाल की पृष्ठभूमि वाले इस ऐतिहासिक उपन्यास के कथानक का गठन इस रूप में किया है जिससे पाठक के सामने न केवल दक्षिण भारत के इतिहास एवं संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत हो गई है अपितु 'पत्नी बनाम वेश्या' की समस्या भी चित्रित हुई है, जो उस काल में जितनी महत्वपूर्ण थी, आज भी उससे कम महत्व की नहीं है।

कथानक के मूल स्रोत की चर्चा करते हुए नागरजी ने कृति के 'निवेदनम्' में बताया है कि रचना की कथा सर्वप्रथम उन्होंने तमिल भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासकार स्व. कृष्णमूर्ति जी 'कल्कि', कम्ब रामायणम् के सुप्रसिद्ध टीकाकार स्व. रसिकमणि टी. के. चिदम्बरनाथ मुदलियार तथा साप्ताहिक "कल्कि" पत्रिका के मैनेजिंग डायरेक्टर एवं सुब्बुलक्ष्मी जी के पति श्री टी. सदाशिवम् जी की संगति में सुनी थी। लेखक ने तमिल भाषा सीखने के दौरान भी "छठी या सातवीं पोथी में यह कथा फिर पढ़ी।"<sup>५६</sup> नागरजी ने डॉ. भारत भूषण अग्रवाल के निवेदन पर इसी कथ्य के आधार पर सवा घण्टे का रेडियो नाटक लिखा। धर्मयुग संपादक श्री सत्यकाम जी विद्यालंकार के आग्रह से इस नाटक को उपन्यास का रूप मिला। उपन्यासकार ने लिखा है - "सत्यकाम जी के



आग्रह को ध्यान में रखकर और अपने मालिक पाठक को खुश करने के लिए सिनेरियो कला का उपयोग करके हमने कागज पर सिनेमा दिखाना शुरू किया।<sup>15</sup> सिनेरियो पद्धति ने कथानक को नाटकीय तथा रोचक बना दिया है।

कथा में घटनाओं का बिखराव नहीं है। मूलकथा सुसंगठित रूप में सहज भाव से गतिशील हुई है। आवश्यकतानुसार प्रासंगिक कथाएँ भी आई हैं जो अपने में उबाऊ बिल्कुल प्रतीत नहीं होतीं। अपने दृष्टिकोण तथा विचारों पर संयम रखकर नागरजी ने लंबे-लंबे वक्तव्यों, अनर्गल सामग्री तथा व्यर्थ के प्रसंगों से इस उपन्यास को दूर रखा है। कृति की प्रवाहयुक्त कथा पाठक को प्रभावित करती है।

उपन्यास की कथा कावेरी पट्टणम् के दो अत्यंत समृद्ध एवं वैभवशाली सेठों मासात्तुवान और मानाइहन के परिवार से सम्बद्ध है। मासात्तुवान का इकलौता पुत्र कोवलन और मानाइहन की इकलौती पुत्री कन्नगी विवाह-सूत्र में आबद्ध होते हैं। परन्तु सर्वश्रेष्ठ नगर-वधू माधवी अपने अपूर्व सौन्दर्य एवं श्रेष्ठ कला से कोवलन को विवाह-पूर्व ही आकृष्ट कर चुकी थी। वह माधवी पर आसक्त था। विवाह के पहले प्यार के कोमल क्षणों में माधवी कोवलन से यह वचन ले लेती है, 'कन्नगी के सपनों की पहली रात तुम मेरे यहाँ रहोगे और ..... तुम्हारी कन्नगी मेरी नागरत्ना की तरह तुम्हारी और मेरी सेवा में .....'<sup>16</sup> दिए गए वचन के अनुसार विवाहोपरान्त कोवलन अपनी पत्नी कन्नगी को माधवी के पास ले जाता है। यहीं से उपन्यास की दोनों नारी पात्रों का संघर्ष आरंभ होता है। नागरजी ने पात्रों के अन्तर्द्वंद्व को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। कथानक के विकास में कोवलन की कभी माधवी के प्रति तो कभी कन्नगी के प्रति आसक्ति पुरुष जाति के अस्थिर चित्त का संकेत देती है। माधवी की सुहाग के नूपुर प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा कोवलन को कन्नगी के प्रति निर्दय बनाती है परन्तु कन्नगी अपने कुल एवं वंश-परंपरा के अनुकूल असीम धीरज का परिचय देती है। वह अपने सुहाग के नूपुरों को माधवी को देने से सविनय इन्कार कर देती है। माधवी नूपुर प्राप्त करने के प्रयास में असफल होकर राजपुरुष की प्रेमिका बन जाती है। कोवलन इस घटना से अत्यंत दुःखित होकर पागलों-सा चीत्कार करता है, बदले में उसे राजपुरुष के आदेश से सिपाहियों के कोड़े मिलते हैं। कन्नगी ऐसे समय में पति की बड़ी सेवा करती है और नए नगर के सिपाहियों द्वारा चोरी के आरोप में गिरफ्तार पति कोवलन को बचाती है। राजा कोवलन और कन्नगी का परिचय प्राप्त करता है और अपार धन देकर उनके व्यापार की प्रतिष्ठा करता है। उधर कुलवधू बनने की आकांक्षा रखनेवाली माधवी अंततः पागल होकर बौद्ध बिहार की शरण लेती है। भयंकर बाढ़ और भूकम्प से कावेरी पट्टणम् का वैभव समाप्त हो जाता है। कावेरी पट्टणम् के इसी जल-प्रलय से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के प्रख्यात महाकवि इलंगोवन

“शिल्पदिकारम्” नामक एक काव्य की रचना करते हैं जिसे वे घूम-घूमकर बड़े नगरों की जनता को सुनाया करते हैं। कांचीपुरम के बौद्ध बिहार की पगली भी नित्य मौन भाव से यह कथा सुनती है। अंतिम दिन कथा समाप्त होने पर वह मौन तोड़कर महाकवि से नारी जाति के प्रति उचित न्याय की मांग इन शब्दों में करती है — “पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ-भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अधांश नारी जाति पीड़ित है।”<sup>५८</sup>

उपन्यास का कथानक अपने उद्देश्यपूर्ण नाटकीय अंत के कारण यह चिन्तन करने के लिए बाध्य कर देता है कि नारी-जाति की संपूर्ण दुर्दशा का श्रेय पुरुष जाति के दंभ और स्वार्थ को है। नारी चाहे जिस रूप में हो — पीड़ित रही है और पीड़ा के मूल में पुरुष का उसके प्रति अन्याय ही है। कथाकार ने उपन्यास के कथानक को इस रूप में अत्यंत रोचक बना दिया है। डॉ. सत्यपाल चुध ने ठीक ही लिखा है, “इसमें वेश्या बनाम कुलवधू के द्वन्द्वों के आधार पर नारी पीड़ा की शोचनीय स्थिति की दीर्घकालीन समस्या को इस रूप में मुखरित किया गया है कि उस समस्या की कारणमूला पुरुष की अहमन्य उच्छृंखल प्रकृति, दुरंगी नैतिकता तथा महाजनी समाज विधान की विकृति पर भी व्यंग्य विद्रूप उजागर हो उठा है।”<sup>५९</sup>

शिल्प के क्षेत्र में नागरजी ने अपने उपन्यासों में कई नवीन तथा साहसपूर्ण प्रयोग किए हैं। ‘अमृत और विष’ का दोहरा कथानक इस क्षेत्र में उनका महत्त्वपूर्ण सफल प्रयास है। इस प्रयोगशील कृति में दो कथानक समानांतर रूप से चलते हैं। लेखक ने दोनों कथानकों को बिंब-प्रतिबिंब के रूप में ग्रहण किया है। यद्यपि दोनों कथानक एक दूसरे से जुड़े नहीं हैं, दोनों का अलग-अलग अस्तित्व है परन्तु उपन्यासकार की किस्सागोई — कथा कहने की परिपक्वता, दोनों कथाओं को पाठक के लिए सहजग्राह्य बना देती है।

इस कृति का वैशिष्ट्य इस बात में है कि इसमें उपन्यास के भीतर उपन्यास है। शिल्प की दृष्टि से इस कृति में असामान्य प्रयोग किया गया है। एक उपन्यास आत्मकथात्मक है जिसमें अरविन्दशंकर के रूप में उपन्यासकार की कल्पना की गई है। अरविन्दशंकर के जीवन परिचय को प्रस्तुत करने के क्रम में लेखक उसके पूर्वजों का इतिहास प्रस्तुत करता है और इस बहाने अंग्रेजी शासनकाल की स्थापना से लेकर स्वाधीनता-प्राप्ति के काल तक के भारत को वामन के तीन पगों की भाँति नाप लेता है; पिछले सौ डेढ़-सौ वर्षों के बदलते हुए आदर्शों और मूल्यों पर दृष्टिपात करते हुए कई पीढ़ियों की निरंतरता के क्रम में अपनी कथा को स्वाधीन भारत के जीवन-मूल्यों से जोड़ देता है। अरविन्दशंकर के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं वाला कथानक उन्नीस अध्यायों में चलता है। अंतिम अध्याय में अरविन्दशंकर के विचारों को अभिव्यक्त



किया गया है। इस अंश से नागरजी के शिल्प तथा उनके विचारों का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। इसी कथानक के अंतर्गत नागरजी उपन्यास-रचना के कई महत्त्वपूर्ण सूत्रों की विवेचना करते हुए उपन्यास की रचना-प्रक्रिया भी स्पष्ट करते चलते हैं। अरविन्दशंकर अपने जीवन की परिस्थितियों, मित्रों तथा परिचितों का उल्लेख करते हुए उनके व्यक्तित्व का प्रक्षेपण अपने उपन्यास के पात्रों पर करते हैं और उनका उपन्यास तैयार हो जाता है। यही वह उपन्यास है जिसे लिखकर देने के लिए अरविन्दशंकर ने पद्मनाभ प्रकाशन से डेढ़ वर्ष पहले दो हजार रुपए ले लिए थे परन्तु पारिवारिक दुश्चिन्ताओं के कारण उसे लिखकर देने में वे असमर्थ रहे थे। कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर वे उपन्यास लिखने बैठते हैं। इस दूसरे उपन्यास के 'प्लॉट' की समस्या का समाधान उन्हें बारात की भीड़ में मिलता है जहाँ स्वाधीन भारत के दो नौजवान बारात की व्यवस्था हेतु चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। तभी अरविन्दशंकर निश्चित करते हैं कि वे अपने जीवन के अनुभवों को इन नवयुवक पात्रों के सहारे कथा में प्रस्तुत करेंगे। सत्तावन अध्यायों वाला यह दूसरा उपन्यास "नौजवानों की आशाओं, आकांक्षाओं और कुंठाओं को चित्रित करने" के उद्देश्य से रचित होता है। इस दूसरे उपन्यास के पात्र यथार्थपरक होते हुए भी काल्पनिक हैं। एक कथा से दूसरी कथा इस स्वाभाविकता के साथ फूट पड़ती है कि कहीं भी पाठक को कठिनाई का अनुभव नहीं होता। कृति का पाठक उपन्यासकार की रचना पद्धति से भी परिचित होता चलता है। वह अपने 'प्लॉटों' का निर्माण किस प्रकार करता है, अपने पात्रों को, उनके चरित्रों को कैसे रंग देता है — इन सारी स्थितियों की जानकारी पाठक को होने लगती है और उसे यथार्थता का आभास होने लगता है। अपने जीवन में आए कुछ व्यक्तियों की स्मृति का पूरा उपयोग उपन्यासकार पात्रों का चरित्रांकन करते समय करता है। रद्वसिंह के चरित्र की कल्पना के पीछे सहपाठी कुंवर बच्चू सिंह का तथा यूसुफ की कल्पना के पीछे बाल-मित्र हिदायत का आधार उसे पात्रों के निर्माण में सहायता देता है।

डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार — "इस उपन्यास में कथानक के तीन स्तर हैं — अरविन्द शंकर के जीवन का स्तर ; उसकी सृजन प्रक्रिया से निकलने वाले पात्र और परिस्थितियाँ और उनकी कथा ; तीसरे वास्तविक लेखक यानी नागरजी की कथा दृष्टि। ये तीनों एक के अंदर एक यानी विचित्र दृष्टि से गुँथे हुए हैं। कभी एक दूसरे के पूरक होकर, कभी एक दूसरे के प्रेरक होकर, कभी एक दूसरे के विलोम होकर।"<sup>26</sup>

प्रश्न उठता है कि क्या इन कथानकों के निर्वाह में नागरजी को सफलता मिली है ? क्या इन कथानकों में संगति बैठती है ? इसके उत्तर में यह बात बिना विवाद के कही जा सकती है कि उपन्यास का आरम्भिक अंश कथा कहने के नवीन ढंग के कारण पाठकों को प्रभावित नहीं करता, परन्तु ज्यों-ज्यों कथा आगे बढ़ती है, पाठक इस नए शिल्प से परिचित होकर "थ्रिल" का अनुभव करने लगता है। अरविन्दशंकर प्रसंग के

बीच रमेश-रानी की कथा या फिर स्थान-स्थान पर अरविन्दशंकर का जीवन-प्रसंग कहीं व्यतिक्रम उत्पन्न नहीं करता और पाठक तादात्म्य का अनुभव करते हुए दोनों कथाओं का आनन्द प्राप्त करता रहता है। इस असामान्य पद्धति की कथा के निर्वाह में नागरजी पूरी तरह सफल हुए हैं।

इस पूर्णतः नवीन शिल्प के उपन्यास की रचना के खतरों की ओर आगाह करते हुए डॉ. धर्मवीर भारती ने ठीक ही लिखा है — “प्रयोग की दृष्टि से उपन्यास का यह कथा-शिल्प रोचक और सफल तो है परन्तु इस प्रयोग में दो खतरे भी थे। एक तो इसमें इतना उखड़ापन आ जाय कि कथा की गति बाधित होने लगे और दूसरे वास्तविकता या प्रामाणिकता की जो भ्रांति औपन्यासिकता का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, वह स्थापित ही न हो पाये और सारी कहानी बनावटी मालूम होने लगे। पहले खतरे से तो यह उपन्यास पूरी तरह नहीं बच पाया है लेकिन नागरजी की प्रतिभा और कथा-शैली की यह उपलब्धि है कि अपने शिल्प और पात्रों को गढ़ने की सारी प्रक्रिया को पाठक के समक्ष बिल्कुल उद्घाटित कर देने के बाद उन्होंने न केवल उससे और भी आत्मीयता और अंतरंगता स्थापित कर ली है वरन् कथा को एक नए स्तर पर वास्तविकता और प्रामाणिकता का स्वाद दे दिया है।”<sup>२३</sup>

कृति में चित्रित यथार्थ आकर्षक है, कथानक के गठन में रोचकता का पूरा ध्यान रखा गया है। उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज अत्यन्त सजीव रूप में उपस्थित हुआ है। उपन्यास का कथानक नागरजी की शिल्पगत प्रौढ़ता का परिचय देता है। परन्तु कृति के कई प्रसंग अपने विस्तृत रूप में उबाऊ हो गए हैं जो कथानक की गतिशीलता में बाधा बनते हैं। उपन्यास में बारात-वर्णन, बाढ़ का वर्णन, सारसलेक प्रसंग तथा लच्छू की रूस यात्रा का वर्णन अपेक्षा से अधिक विस्तार पा गया है। अरविन्दशंकर का चिंतन भी अधिक पृष्ठ घेरता है। वास्तव में बृहत् कथानक के उपन्यास की ये सामान्य त्रुटियाँ हैं जिनका महत्त्व नगण्य है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया लघु उपन्यास ‘सात घूँघट वाला मुखड़ा’ भारतीय इतिहास के एक अति रहस्यमय चरित्र बेगम समरू के रोमांचक और घटनापूर्ण जीवन पर आधारित है। नागरजी ने उपन्यास के कथानक निर्माण हेतु इतिहास के अतिरिक्त प्रचलित किंवदन्तियों एवं कल्पना का सहारा लिया है। विवादास्पद चरित्रवाली बेगम समरू अपने विविध रूपों में उपन्यास की कथा में आई है। नवाब समरू के व्यक्तिगत और राजनीतिक दाँव-पेचों को अद्भुत रूप से प्रभावित करने वाली बेगम समरू को केन्द्र में रखकर कथानक का गठन किया गया है। कथानक के गठन में बेगम के प्रेम व्यापार का वर्णन किया गया है तथा उसे एक अतृप्त नारी के रूप में चित्रित किया गया है। उसके भिन्न-भिन्न नाम उसके इसी चरित्र का संकेत देते हैं।



घटनाओं के आधार पर नायिका के चरित्र का विश्लेषण किया गया है। घटनाओं के माध्यम से ही कथा गतिशील होती है। इस कारण इस उपन्यास को शिथिल कथानक वाला उपन्यास माना जा सकता है। उपन्यास की कथा मनोरंजक है जो पाठक को बाँधे रखती है। उपन्यास के फ्लैप पर कहा भी गया है — “..... इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम पृष्ठ से ही यह पाठक के मन को इस तरह बाँध लेता है कि इसे पूरा पढ़े बिना उसे चैन नहीं मिलता।”<sup>२१</sup> कथानक के केन्द्र में बेगम समरू के रहने से वह श्रृंगारपरक एवं वासनापूरित हो गया है। कथानक का गठन जिस रूप में किया गया है उससे फिल्मी कथाओं जैसा आनन्द भले ही प्राप्त होता हो, कोई साहित्यिक उद्देश्य की सिद्धि नजर नहीं आती।

‘एकदा नैमिषारण्ये’ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ राष्ट्रीयता का आग्रह करने वाली नागरजी की महत्त्वपूर्ण रचना है। यद्यपि नागरजी ने अपने विशेष कौशल के साथ कृति को पुराण शैली में प्रस्तुत किया है और वस्तु तथा शिल्प की दृष्टि से सफलता प्राप्त की है, तथापि तत्कालीन समाज, साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति आदि विवरण उपन्यास की कथा को बोझिल बना देते हैं। उसका ऊँचा उद्देश्य प्रभावशाली कथानक की सृष्टि नहीं कर पाता। डॉ. विवेकी राय ने ठीक ही लिखा है “वास्तव में ‘एकदा नैमिषारण्ये’ ऐसा उपन्यास है जो बीच-बीच में कई-कई बार अन्त हो-होकर फिर उकसता है।”<sup>२२</sup>

नागरजी ने उपन्यास की भावधारा के अनुरूप अपनी शैली को कथा-प्रधान रखा है। उन्होंने किस्सागोई शैली में भागवत-पुराण की अनेक कथाओं को नारद और भार्गव के रूप में प्राचीन पौराणिक परंपरा से सजीव कर दिया है। उपन्यास की मुख्य कथा सोमाहुति भार्गव पर केन्द्रित है जो समस्त देश की भावात्मक एकता हेतु एक ज्ञान-आंदोलन चलाना चाहते हैं। नैमिषारण्य में विराट कथा-पर्व का आयोजन तथा देश के कोने-कोने से आए विद्वानों का प्रवचन कराकर वे आपसी सद्भाव स्थापित कराना चाहते हैं। विद्वानों के परस्पर विचार-विमर्श के द्वारा वे बिखराहट को दूर करना चाहते हैं। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे देश-देशान्तर में घूम-घूमकर सम्पर्क करते हैं और विविध कठिनाइयों को झेलते हुए अंततः नैमिषारण्य में बारह वर्षीय लम्बा कथा-सत्र सफलतापूर्वक सम्पन्न कराते हैं। इस सत्र में भारत के कोने-कोने से चौरासी हजार सन्तों का समागम होता है और कथा प्रवचनों तथा टीका व्याख्यानों के माध्यम से एक नई भावात्मक एकता का उदय होता है।

कथानक के गठन में नागरजी ने पुराण, इतिहास, जनश्रुति, राजनीतिक पृष्ठभूमि तथा कल्पना का ऐसा सामंजस्य उपस्थित कर दिया है जिससे किसी को पृथक् करना असंभव प्रतीत होता है। उपन्यास का यही बहुमुखी स्वरूप उसकी दुर्बलता है जो

कथानक को अस्पष्ट और अरोचक बनाता है। कथा-क्षेत्रों का बारम्बार परिवर्तन, भिन्न-भिन्न राज्यों, राजाओं, जातियों तथा सम्प्रदायों की कथाएँ — कथा को उलझा देती हैं जिसके कारण कथानक रोचक, सहज एवं स्पष्ट नहीं रह पाता। तत्कालीन भारत के राजनीतिक विघटन, सांस्कृतिक पतन, धार्मिक पाखण्ड, साम्प्रदायिक वैमनस्य, सामाजिक असुरक्षा, व्यापारिक दिवालियापन तथा आस्थाहीनता को चित्रित करने में कथानक सफल रहा है। इस पतनशील और विघटनकारी परिस्थिति में देश के उद्धार के लिए भार्गव सोमाहुति का नेतृत्व तथा विद्वद्जनों का कथा-सत्र में बैठ कर विचार-विमर्श करना कितना महत्वपूर्ण सामयिक कदम रहा होगा। कृति के कथानक का मुख्य आधार यही है।

कृति की विविध घटनायें अत्यंत रोचक हैं। नारद-इज्या भेंट प्रसंग, कौषेयलवण शोभिका-भृगुवत्स प्रसंग, लखनऊ का नागोत्सव प्रसंग, चन्द्रगुप्त स्वागत प्रसंग कथा को रोचक भले ही बनाते हैं परन्तु संपूर्णतः कृति की कथा पाठक को आकर्षित नहीं कर पाती। पूरी कथा का क्रमबद्ध स्मरण पाठक के लिए असम्भव-सा है। कई स्थलों पर ऐसा प्रतीत होता है कि नागरजी की 'किस्सागोई' प्रवृत्ति दब गयी है और चिंतक रूप अधिक मुखर हो गया है।

अज्ञेयजी को दिए गए एक इंटरव्यू में नागरजी ने इस बात को स्वीकार किया है कि इस उपन्यास को फिर से लिखे जाने की जरूरत है। वे कहते हैं — "हमको यह अनुभव हुआ कि जो पौराणिक कथाएँ हमको घुट्टी में मिली थीं — उनके पास हमारा नया पाठक नहीं आ पाता। .....हम जो बात सहज ढंग से पौराणिक बेस बनाकर लिख गये, कह गये, हमारे मन में तो उस तरह से है। पर उस बेचारे के पास वह बेस नहीं है।"<sup>२४</sup>

'मानस का हंस' के कथानक-गठन में नई पद्धति का प्रयोग किया गया है। लेखक ने तुलसी के जीवन चरित को प्रस्तुत करने हेतु इतिहासकार की भाँति अन्य-पुरुष शैली में उपन्यास नहीं लिखा है। उसने ऐसी विधि अपनाई है कि पाठक तुलसी और उनके समकालीन पात्रों के माध्यम से उनकी कथा सुनता है और स्थान-स्थान पर तुलसी की स्मृति में आए अतीत के दृश्यों को नाटकीय रूप में प्रत्यक्ष करता चलता है।

तुलसी के जीवन-प्रसंगों वाली इस कृति में मुख्य वक्ता तुलसी हैं और श्रोता बेनी माधव दास हैं। कहीं-कहीं राजा भगत बकरीदी और गंगाराम ज्योतिषी द्वारा प्लेश दिलवाया गया है। तुलसी के जन्म, माता की मृत्यु और पिता द्वारा पुत्र-त्याग की कहानी का वर्णन प्लेश-बैक पद्धति द्वारा बाल सखा वयोवृद्ध बकरीदी करते हैं। सहपाठी गंगाराम ने गुरु-गृह में पठन-काल की घटनाएँ प्रस्तुत की हैं। राजा भगत द्वारा विवाह की घटना पर प्रकाश पड़ता है। ये अतीत कथाएँ पूर्व-दीप्ति पद्धति में कही जाने के कारण



संस्मरणात्मक हैं। कथन-शैली वर्णनात्मक न होकर नाटकों और चित्र पटों की भाँति दृश्यात्मक है।

कथा का आरंभ होता है ९० वर्षीय बाबा तुलसीदास के राजापुर आगमन के दृश्य से, जहाँ ५९ वर्षों बाद अपने शिष्यों — रामू द्विवेदी एवं बेनीमाधव दास के साथ तुलसी अपनी मरणासन्न पत्नी को देखने आए हैं। परन्तु कथा गतिशील होती है भक्त एवं शिष्य बेनीमाधव दास की सतत जिज्ञासा से। कथा का विभाजन दो धाराओं में है — पहली धारा घटनापरक है जिसके अन्तर्गत उपन्यास लेखक तुलसी के शेष जीवन के प्रसंगों का अर्थात् राजापुर, चित्रकूट, काशी के अंतिम प्रकरणों का वर्णनात्मक शैली में स्वयं वर्णन करता है। कथा की दूसरी धारा संस्मरणात्मक है जिसके मुख्य वक्ता तुलसीदास हैं और श्रोता बेनीमाधव दास हैं, परन्तु कहीं-कहीं राजा भगत, बकरीदी और गंगाराम ज्योतिषी तुलसी के विगत जीवन की कथा सुनाते हैं। तुलसी के जीवन के अंतरंग अंशों को लेखक ने बड़ी चतुराई से पाठक से सामने रख दिया है। इन श्रृंगारपरक मधुर प्रसंगों को न तो राजा-भगत, गंगाराम ज्योतिषी या बकरीदी जानते हैं और न ही शिष्य बेनीमाधव दास को तुलसीदास सुना सकते हैं। नागरजी ने तुलसी के आत्मालोचन या स्वप्न के माध्यम से इन दृश्यों को उपस्थित करके अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। डॉ. सत्यपाल चुग ने ठीक ही लिखा है — “बेनीमाधव दास की जिज्ञासावृत्ति को लेखकीय आवश्यकता से अधिक उसके अपने अन्तर्द्वन्द्वों से सम्बद्ध कर दिया गया है और तुलसी कथा के अन्त के साथ ही उसकी अन्तः कथा ‘मानसिक झकोलों’ की कथा समाप्त होती है। इससे उपन्यास में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता बढ़ गई है।”<sup>२५</sup>

नागरजी की किस्सागोई का जादू इस उपन्यास को रोचक बनाए रखता है। उपन्यास अपने गंभीर उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी उबाऊ नहीं है। यद्यपि मोहिनी प्रसंग की अवतारणा लेखकीय कल्पना ही अधिक प्रतीत होती है तथापि उपन्यास के उद्देश्य प्रतिपादन तथा रोचकता की अभिवृद्धि में उसका महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। कथानक की नवीन तथा प्रयोगात्मक शैली पाठक को भटकाती नहीं है, कृति के प्रति आकृष्ट ही करती है।

उपन्यास संरचना हेतु नई पद्धति से कथानक का गठन करने में नागरजी का विशिष्ट स्थान है। सेठ-बाँकेमल, अमृत और विष तथा मानस का हंस के बाद ‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ कृति में सर्वथा नवीन पद्धति का अवलंबन ग्रहण किया गया है। मेहतर जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करनेवाली आलोच्य कृति में इस नए प्रकार की शिल्प-विधि का प्रयोग आवश्यक भी था क्योंकि यह यथार्थ लेखक का भोगा हुआ यथार्थ नहीं था। समस्या के समाधान हेतु लेखक ने अंशुधर शर्मा नामक पात्र की कल्पना की जो पेशे से पत्रकार होने के कारण मेहतर बस्तियों में जाकर वहाँ के स्त्री-पुरुषों से इंटरव्यू लेते हैं और उनके खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, जातिगत इतिहास तथा प्रचलित

किंवदंतियों की जानकारी प्राप्त करते हैं। उनके अंतरंग जीवन की सम्यक् सूचनायें पाने के लिये वे भंगी-वस्तियों के निकट परिचितों के मकान में छिपकर उनके कार्यकलाप देखते हैं, उनकी उन्मुक्त बातें सुनते हैं और फिर पूरे विश्वास के साथ उनकी जीवन-गाथा प्रस्तुत करते हैं।

कृति के 'निवेदन' में नागरजी ने उपन्यास की कथा हेतु प्राप्त सूत्र का उल्लेख किया है। "एक धनी वृद्ध ब्राह्मण व्यापारी की तरुणी भार्या के एक मेहतर युवक के साथ भाग जाने और फिर अपने प्रेमी सहित पकड़े जाने" की घटना को अपनी किस्सागोई के चमत्कार से नागरजी की कल्पना ने एक समस्या के रूप में चित्रित कर दिया है। नागरजी लिखते हैं — "वास्तविक जीवन की इस पात्री ने पकड़े जाने के बाद अपने भविष्य को किस रूप में भोगा यह जानने का साधन तो मेरे पास न था, पर कल्पना में समस्या ने एक और ही रूप धारण कर लिया।"<sup>२६</sup> 'नाच्यौ बहुत गोपाल' के केन्द्रीय पात्र निर्गुनियाँ के रूप में वास्तविक जीवन की यह पात्री प्रस्तुत हुई है और उसकी जीवन गाथा के बहाने समस्त भंगी जाति की व्यथा-कथा प्रस्तुत कर दी गई है। एक घटना के सूत्र को पकड़कर भंगी जाति का अतीत और वर्तमान जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है वह एक ओर मेहतर जीवन की कटु वास्तविकता को प्रकट करता है तो दूसरी ओर उपन्यासकार के रचना-कौशल की जानकारी दे देता है। डॉ. गोपाल राय के अनुसार "उनकी सफलता का श्रेय बहुत कुछ उनकी शिल्प-प्रविधि को भी है। अपने कथा-संसार की प्रस्तुति के लिए नागरजी ने अनेक अवलोकन बिन्दुओं का प्रयोग किया है और उनके स्थानान्तरण में ऐसी कुशलता का परिचय दिया है कि पूरा कथा-संसार एक सजीव चित्र-श्रृंखला में परिणत हो जाता है।"<sup>२७</sup> कृति में लेखक स्वयं तो अनुपस्थित रहता है परन्तु अंशुधर शर्मा के रूप में उसकी भूमिका कृति में नाटकीयता लाकर कथा को प्रभविष्णु बना देती है, फलस्वरूप पाठक पूरी कथा को अधिक विश्वास के साथ ग्रहण करने लगता है। डॉ. गोपाल राय ने लिखा है, "यदि लेखक ने मेहतर जीवन संबंधी अपने ज्ञान को अपनी ओर से कही गई कहानी में भरने की कोशिश की होती तो वह पाठकों के लिए अग्राह्य और उबाऊ हो जाता। पर अंशुधर शर्मा जब भंगी जीवन के अतीत और वर्तमान के व्योरे प्रस्तुत करते हैं तो पाठक बड़े सहज भाव से उन्हें स्वीकार कर लेता है।"<sup>२८</sup> अंशुधर शर्मा की सजीव व्यक्तित्व-रचना कथानक को नया आयाम प्रदान कर शिल्प को समृद्ध कर देती है।

'नाच्यौ बहुत गोपाल' का कथानक सुसंबद्ध, रोचक तथा यथार्थाश्रित होने के कारण अत्यंत प्रभावशाली है।

सूरदास के जीवन प्रसंगों पर आधारित उपन्यास 'खंजन-नयन' के कथानक गठन में किसी नवीन शिल्प का अवलंबन ग्रहण नहीं किया गया है, कृति को सिद्ध



शिल्प के ढाँचे में ही प्रस्तुत किया गया है। जन-मानस पर अंकित सूर के व्यक्तित्व को साकार स्वरूप प्रदान करने, किंवदंतियों, विखरी घटनाओं तथा मिथकों को व्यक्तित्व के साथ जोड़कर सार्थकता के साथ प्रस्तुत करने तथा चरित्र को नई अर्थवत्ता देने में उपन्यास का कथानक पूरी तौर पर सफल रहा है।

सूर के अंधत्व संबंधी विवाद में न पड़कर कथा में नागरजी ने सूरदास को जन्मांध माना है। उनका जन्मांध नायक सूरदास अपने कार्य-व्यापारों से पाठकों को प्रभावित करता है। डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर ने ठीक ही लिखा है — “महत्त्व इस बात का नहीं है कि सूर सीलपट्ट अंधा है अथवा जन्मान्ध या बाद में अंधा हो गया है। महत्त्व इन बातों का है कि जन-मानस में स्वीकृत उसके अंधेपन के मिथक को सूर ने अपने जीवन में कैसे झेला, उस अंधेपन की वास्तविकता ने सूर में जो ग्रंथियाँ पैदा कीं, उनको उसने कैसे अतिक्रमित किया और उस दुर्बलता को ही शक्ति का स्रोत कैसे बनाया”।<sup>१९</sup> नागरजी इस महत्त्व के प्रतिपादन में समर्थ रहे हैं। कृति के कथानक का यह भी एक वैशिष्ट्य है।

कथा में अंधेपन की हीनता से पीड़ित सूरदास अंतर्ज्ञान, गणित ज्ञान, प्रश्नकुण्डली तथा जन्म-पत्रिका की जानकारी से दूसरों को प्रभावित करता है, रईसों और हाकिम-हुक्कामों पर अपना रौब गाँठता है। इसी गुण के कारण वह जन-समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है। कथा के कई प्रसंग उसके इस गुण को सिद्ध करने में सफल हुए हैं।

कथा के विकास के साथ लेखक ने काम और श्याम का द्वन्द्व चित्रित करने के लिए कंतो जैसे नारी-पात्र की कल्पना की है। श्याम की प्राप्ति से इस द्वन्द्व का समाधान किया गया है। कथानक में काम-संवेदना की शारीरिक और मांसल अभिव्यक्ति में नागरजी सफल हुए हैं — यह चित्रण उनकी कमजोरी की ओर भी संकेत करता है। कन्तो के सान्निध्य में रहकर भी सूर का कामाग्नि पर नियंत्रण या संयम आरोपित प्रतीत होता है।

यद्यपि कथानक में कुछ ऐसे प्रसंग जोड़ दिए गए हैं जिनका सूर के व्यक्तित्व से सीधा संबंध नहीं है परन्तु अपनी जीवन्तता के कारण ये प्रसंग रोचक हैं। बंगाली-पुजारियों की चोरी, कृष्णदास-गंगा संबंध, भोजनप्रिय चौबे प्रकरण, भोलेनाथ और उसकी विधवा प्रेयसी के संबंधों का चित्रण — ऐसे ही प्रसंग हैं। संगीत-मर्मज्ञ सूरदास का स्वामी हरिदास जैसे श्रेष्ठ संगीतज्ञ से मिलने का प्रसंग सरसरी तौर पर खाना-पूरी के रूप में प्रस्तुत किया गया सा लगता है। यह प्रतीत नहीं होता कि दो संगीतकार मिल रहे हैं।

परन्तु यहाँ यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि गौण चरित्रों के रेखांकन में नागरजी पूरी तरह सफल हुए हैं। सूर-दिलखुश शाह भेंट प्रसंग, मीरा-सूर भेंट का अंश पुद्गल के भंग-तरंग-प्रसंग तथा भोलेनाथ के हृदय परिवर्तन के वृत्त को लेखक ने फक्कड़ाना अंदाज में प्रस्तुत कर जीवन्त बना दिया है। मानस चतुःशती के अवसर पर

'मानस का हंस' की रचना के उपरान्त संभवतः सूर पंचशती वर्ष ने ही लेखक को 'खंजन-नयन' उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी होगी। उपन्यास सृजन के आंतरिक काम, बाह्य दबाव से अधिक दबा उपन्यास सूरदास जैसे चरितनायक के बावजूद कृति को वह प्रभाव नहीं दे पाता जो 'मानस का हंस' उपन्यास को प्राप्त हुआ है।

'खंजन-नयन' की कथा में तत्कालीन जीवन जिस रूप में उपस्थित हुआ है, वह उसे विशिष्ट कृति बना देता है। सूर के विनय के पदों एवं लीलापदों की रचना के जो सजीव क्षण उपन्यास में पुनर्जीवित किए गए हैं उन्हें देखकर लगता है कि ठीक इन्हीं स्थितियों में ही ये पद रचे जा सकते थे। कथाकार नागर के कौशल से ये पद और सजीव बन गए हैं। परन्तु उपन्यास के अंत में सूर के कवि-व्यक्तित्व को विस्तार मिलने के स्थान पर संप्रदाय का इतिहास वर्णन रसवत्ता को कम करता है।

इन सामान्य कमजोरियों के बाद भी 'खंजन-नयन' एक अच्छी रचना है। जनमानस पर अंकित सूर के व्यक्तित्व को उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के चौखटे में लेखकीय कल्पना के सहज स्पर्श से फिल्मी शैली में व्यक्त करने के कारण कृति का कथानक पाठकों को प्रभावित करता है।

नागरजी के एक और लघु उपन्यास 'बिखरे तिनके' की कथा स्वाधीनता के ३० वर्षों बाद के भारत के युवकों की व्यथा एवं दिशाहीनता को स्पष्ट करती है। यद्यपि नौजवानों की आशा, आकांक्षा और कुण्ठा को चित्रित करनेवाला नागरजी का वृहत् उपन्यास 'अमृत और विष' १९६६ में प्रकाशित हो चुका था जिसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष, पुराने मूल्यों का विघटन, ढोंग, आडंबर आदि के चित्रण के साथ तरुण वर्ग द्वारा दुनिया को नई दृष्टि से देखने के प्रयास का संकेत भी मिलता है। 'बिखरे तिनके' में भी लगभग यही समस्याएँ कथानक में उठाई गई हैं। पूँजीपतियों, मुनाफाखोरों, चोरबाजारियों के विरुद्ध प्रगतिशील युवकों के सशक्त विरोध को कृति के कथानक में प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार 'बिखरे तिनके' का कथानक 'अमृत और विष' के कथानक से मिलता-जुलता प्रतीत होता है।

परन्तु कथानक गठन में शिल्प का जो वैशिष्ट्य 'अमृत और विष' में परिलक्षित होता है वैसे विशेषता 'बिखरे-तिनके' में दिखाई नहीं पड़ती। इस कृति की कथा सहज रूप से विकसित होती हुई युवकों की समस्याओं के साथ-साथ सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार और राजनीतिक दलों के अवसरवादी स्वरूप की ओर भी पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है। कृति में स्पष्ट किया गया है कि युवा-पीढ़ी आर्थिक विषमता के समापन के लिए समाजवादी पद्धति की आवश्यकता महसूस करती है। रोजी-रोटी की चिंता उन्हें भविष्य के प्रति चिन्तित कर रही है। कथाकार युवकों की शक्ति का समुचित उपयोग करना चाहता है, राष्ट्र की अमूल्य युवा-शक्ति का बिखराव नहीं,



संचय चाहता है। राष्ट्र के उन्नयन के लिए यह आवश्यक है। स्वाधीनता के ३०-३५ वर्षों बाद के भारत के परिवर्तित होते राजनीतिक मूल्यों का विवेचन भी उपन्यास में मिल जाता है। कथा में सरकारी दफ्तरों का भ्रष्टाचार अपने विकृत रूप में उजागर हुआ है। भ्रष्ट व्यवस्था के प्रतीक बाबू गुरसरन लाल श्रीवास्तव की गतिविधियों को व्यक्त करनेवाली कथा युवा पीढ़ी के नायक बिल्लू की गतिविधियों की अपेक्षा अधिक यथार्थपरक और रोचक बन पड़ी है। कथा-क्रम में राजनीतिक नेताओं के दुहरे व्यक्तित्व का अंकन तो किया गया है परन्तु उस चित्रण में कथाकार ने वैसी तन्मयता नहीं दिखाई है जैसी तन्मयता 'गुरसरन बाबू' और उनके सरकारी दफ्तर के कर्मचारियों के चित्रण में दिखाई गई है। कथा-क्रम में 'सुहागी-सरसुतिया' प्रसंग पाठकों में उत्सुकता का भाव जागृत रखता है — यह प्रसंग युवा-शक्ति की प्रखरता का अंकन करने में सहायक है। उपन्यास के नायक बिल्लू में उतनी प्रखरता नहीं है जितनी "अमृत और विष" के नायक रमेश में रही है। संभव है उपन्यास का लघु स्वरूप इसका कारण हो — परन्तु नायक को और क्रियाशील बनाकर इस कमी को दूर किया जा सकता था। स्पष्टतः कथानक नायक के साथ न्याय नहीं कर पाता।

परन्तु अपने रोचक तथा सुसंबद्ध कथा सूत्रों एवं 'गुरसरन बाबू' जैसे पात्र के कारण यह लघु उपन्यास भी पाठकों में प्रभाव की सृष्टि करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

समाज की ज्वलंत समस्या दहेज को केन्द्र में रखकर नागरजी ने अपने उपन्यास 'अग्निगर्भा' के कथानक का गठन किया है। कृति में कथा सहज रूप से विकसित हुई है। उपन्यास में सीता और रामेश्वर के जीवन से संबंधित प्रमुख प्रसंग स्वाभाविक रूप से गतिशील हुए हैं। इन दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त कथा के जो अन्य पात्र समाज की समस्याओं का चित्र उपस्थित करने में सफल हुए हैं उनमें सोमेश्वर इन्द्राणी, कामेश्वर, मीनाक्षी, सर्वेश्वरी, मैत्रेयी गोडबोले तथा हिम्मतराय प्रमुख हैं। कथा के प्रसंग सूत्रबद्ध हैं तथा नारी पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट चित्रण करने में समर्थ हैं। शीला शर्मा तथा उसके अंधविश्वासी पति राम खेलावन का प्रसंग भी उपन्यास के उद्देश्य को और गहरा रंग प्रदान कर देता है।

'अग्निगर्भा' उपन्यास में नारी की व्यथा-कथा बड़े ही मार्मिक ढंग से कह दी गई है। समाज में दहेज की विभीषिका में जलती हुई नारी जाति की दुर्दशा से हर भारतीय परिचित है। उच्च-शिक्षा प्राप्त, कामकाजी नारी भी दहेज की इस समस्या से अछूती नहीं है। नागरजी ने पीड़ित नारियों में शिक्षिता एवं अर्जनरत महिला को प्रमुख पात्र के रूप में चुनकर इस समस्या की विकरालता प्रकट की है। यद्यपि कृति में कथासृजन का न तो कोई वैशिष्ट्य ही है और न ही किसी कलात्मकता का परिचय लेखक ने दिया है

फिर भी दहेज की समस्या से अपने कथानक को जोड़कर भारतीय नारी की दारुण दशा के प्रति लेखक ने अपनी गहरी संवेदना का आभास कराया है। कथानक में उत्सुकता जागृत करने की शक्ति है तथा उसके सभी प्रसंग यथार्थता का आभास देने के कारण सजीव प्रतीत होते हैं। कथानक में सहजता तो है परन्तु प्रभविष्णुता नहीं है। उपन्यास की कथा एक समस्या को विशेष रूप से चित्रित तो करती है परन्तु पाठकों पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाती।

विस्तृत फलक पर लिखा गया नागरजी का सामाजिक उपन्यास 'करवट' भारतीय समाज के विकास का इतिहास प्रस्तुत करता है। अंग्रेजों के शासन से मुक्ति की चेष्टा के साथ अज्ञान, अशिक्षा तथा रूढ़ियों से लड़ने के प्रयासों को कलात्मक रूप से व्यक्त करने के लिए 'करवट' के कथानक का गठन किया गया है। कथानक में इतिहास को इस प्रकार समेट लिया गया है कि उसे सामाजिक उपन्यास भी मान सकते हैं और ऐतिहासिक भी। उपन्यासकार ने १८५० से १९०२ तक के ५२ वर्षों के समाज के चित्रण के लिए जो कथा चुनी है उसमें काल्पनिक पात्र-पात्रियों के साथ ऐतिहासिक पात्र अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हैं। इस प्रकार कृति को तत्कालीन भारत के सामाजिक इतिहास के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस उपन्यास के कथानक गठन का यही वैशिष्ट्य है।

उपन्यास की कथा में अनेक परिवार, व्यक्ति, घटनाएँ और विचित्रताएँ चित्रित हैं परन्तु कथानक का सुगठित स्वरूप पाठक को बाँधे रखता है। कथानक की विराटता विश्वसनीयता खंडित होने नहीं देती। विशाल कालखंड का चित्रण करते हुए भी लेखक ने कथानक को सुगठित और रोचक बनाए रखा है।

कृति के अंतर्गत आए लघु प्रसंग या गौण पात्र भी रोचक हैं। वंशीधर की ९ वर्ष की आयु से लेकर उसकी मृत्यु तक का सम्पूर्ण विवरण आकर्षक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। एक विशाल अल्बम की भाँति उपन्यास की कथा पृष्ठ-दर-पृष्ठ तत्कालीन जीवन की संपूर्ण जानकारी दे देती है।

कथानक में अंग्रेज गवर्नर लाट साहब की पार्टियाँ, राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज, स्वामी दयानंद के आर्य समाज तथा सनातन धर्म की कुरीतियों-कुसंस्कारों, अंग्रेजी चाल के स्कूलों, अंग्रेजी पढ़ाई की महत्ता, मैकाले की शिक्षा नीति, हिन्दी-उर्दू का आपसी द्वेष आदि सभी प्रसंग वर्णित हैं। सभी प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और नागरजी के इतिहास ज्ञान को प्रमाणित करती हैं।

कृति में जो कालखंड लिया गया है उसका विवेचन पूर्व कृति 'अमृत और विष' के अरविदशंकर से संबंधित अंश में भी किया गया है। इस दृष्टि से कथा की पुनरावृत्ति इस कृति में हुई है परन्तु नागरजी ने कथा का यथोचित विषय परिवर्तन कर



फिर भी दहेज की समस्या से अपने कथानक को जोड़कर भारतीय नारी की दारुण दशा के प्रति लेखक ने अपनी गहरी संवेदना का आभास कराया है। कथानक में उत्सुकता जागृत करने की शक्ति है तथा उसके सभी प्रसंग यथार्थता का आभास देने के कारण सजीव प्रतीत होते हैं। कथानक में सहजता तो है परन्तु प्रभविष्णुता नहीं है। उपन्यास की कथा एक समस्या को विशेष रूप से चित्रित तो करती है परन्तु पाठकों पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाती।

विस्तृत फलक पर लिखा गया नागरजी का सामाजिक उपन्यास 'करवट' भारतीय समाज के विकास का इतिहास प्रस्तुत करता है। अंग्रेजों के शासन से मुक्ति की चेष्टा के साथ अज्ञान, अशिक्षा तथा रूढ़ियों से लड़ने के प्रयासों को कलात्मक रूप से व्यक्त करने के लिए 'करवट' के कथानक का गठन किया गया है। कथानक में इतिहास को इस प्रकार समेट लिया गया है कि उसे सामाजिक उपन्यास भी मान सकते हैं और ऐतिहासिक भी। उपन्यासकार ने १८५० से १९०२ तक के ५२ वर्षों के समाज के चित्रण के लिए जो कथा चुनी है उसमें काल्पनिक पात्र-पात्रियों के साथ ऐतिहासिक पात्र अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हैं। इस प्रकार कृति को तत्कालीन भारत के सामाजिक इतिहास के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस उपन्यास के कथानक गठन का यही वैशिष्ट्य है।

उपन्यास की कथा में अनेक परिवार, व्यक्ति, घटनाएँ और विचित्रताएँ चित्रित हैं परन्तु कथानक का सुगठित स्वरूप पाठक को बाँधे रखता है। कथानक की विराटता विश्वसनीयता खंडित होने नहीं देती। विशाल कालखंड का चित्रण करते हुए भी लेखक ने कथानक को सुगठित और रोचक बनाए रखा है।

कृति के अंतर्गत आए लघु प्रसंग या गौण पात्र भी रोचक हैं। वंशीधर की ९ वर्ष की आयु से लेकर उसकी मृत्यु तक का सम्पूर्ण विवरण आकर्षक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। एक विशाल अल्बम की भाँति उपन्यास की कथा पृष्ठ-दर-पृष्ठ तत्कालीन जीवन की संपूर्ण जानकारी दे देती है।

कथानक में अंग्रेज गवर्नर लाट साहब की पार्टियाँ, राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज, स्वामी दयानंद के आर्य समाज तथा सनातन धर्म की कुरीतियों-कुसंस्कारों, अंग्रेजी चाल के स्कूलों, अंग्रेजी पढ़ाई की महत्ता, मैकाले की शिक्षा नीति, हिन्दी-उर्दू का आपसी द्वेष आदि सभी प्रसंग वर्णित हैं। सभी प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और नागरजी के इतिहास ज्ञान को प्रमाणित करती हैं।

कृति में जो कालखंड लिया गया है उसका विवेचन पूर्व कृति 'अमृत और विष' के अरविदशंकर से संबंधित अंश में भी किया गया है। इस दृष्टि से कथा की पुनरावृत्ति इस कृति में हुई है परन्तु नागरजी ने कथा का यथोचित विषय परिवर्तन कर

उसमें पूरी रोचकता ला दी है। 'करवट' का विस्तृत कथाफलक तथा उसमें चित्रित यथार्थ और बृहत् उद्देश्य उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की प्रतिष्ठा प्रदान करता है।

इस प्रकार नागरजी के उपन्यासों के कथानक उपन्यासकार की दक्षता, अनुभव सम्पन्नता तथा कलात्मक प्रौढ़ता के परिचायक हैं। यथार्थता, रोचकता, सुसंबद्धता तथा नाटकीयता उनके कथानक के गुण हैं। नागरजी ने जिन उपन्यासों में कथानक गठन संबंधी नए प्रयोग किए हैं उनमें उन्हें पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई है।

उन्होंने अपने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक या जीवनीपरक उपन्यासों में कहीं कथानक के स्वीकृत ढाँचे का अनुगमन किया है तो कहीं नवीन प्रयोग भी किए हैं। सेठ बाँकेमल की कहानियों को उपन्यास का आकार दे देना उनके जैसे प्रयोगशील उपन्यासकार के लिए ही संभव था। 'अमृत और विष' के दुहरे कथानक का निर्वाह भी नागरजी के लिए साहसपूर्ण कार्य था। इस कार्य में भी उन्हें सफलता मिली है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन प्रसंगों को उनकी काव्य पंक्तियों के अतिरिक्त अपनी कल्पना के मिश्रण से नवीन ढंग से उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करते हुए नागरजी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस कृति में भी कथानक-वैशिष्ट्य दर्शनीय है। 'एकदा नैमिषारण्ये' में नागरजी की प्रयोग-दृष्टि उन्मुक्त रूप में प्रगट हुई है। भारतीय राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता हेतु पौराणिक सत्य का अन्तर्दर्शन करते हुए उसे नवीन रूप में प्रस्तुत कर देना इस कृति के कथानक की उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस कृति की कथा पुराण-कथा के नवीनीकरण के रूप में ग्रहण की जा सकती है। परंपरा को सुचारु रूप में ग्रहण करते हुए उपन्यासकार ने जिस ढंग के उपन्यास की रचना की है वह हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का अकेला प्रयास है। 'नाच्यो बहुत गोपाल' में पत्रकार अंशुधर शर्मा की उपस्थिति तथा 'निर्गुण' के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं का डायरी तथा बातचीत के माध्यम से पाठकों तक पहुँचना कथानक को विशेषता संपन्न कर देता है। इन सभी नवीन प्रयोगों में नागरजी सफल रहे हैं।

## पात्र एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र माना जाता है अतः उसमें मनुष्य के कार्य-व्यापार, गुण-अवगुण, रुचि-अरुचि तथा उसके हृदय के आंतरिक भावों का चित्रण सहज रूप में प्राप्त किया जा सकता है। कविता या नाटक की अपेक्षा उपन्यास में मानव-चरित्र का अधिक सामयिक, व्यापक तथा स्पष्ट चित्रण होता है। यही कारण है कि उपन्यास को मानव चरित्र से उद्भूत माना जाता है। पात्रों का सजीव चित्रण तथा उनकी स्वाधीन गतिविधि उपन्यास के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। चरित्र-चित्रण की प्रभावमयी प्रस्तुति से ही महान उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।



मनुष्य का विवेचन उसके चरित्र द्वारा होता है। अतः यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र-चित्रण उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। पात्रों के चरित्र के द्वारा ही उपन्यास को समग्रता प्राप्त होती है। पात्रों के माध्यम से ही उपन्यासकार अपने सारे मंतव्य या कथ्य प्रकट करता है। सचेतन पात्र मानव-मन के स्पन्दन को मार्मिक रीति से संप्रेषित करते हैं। बाबू गुलाब राय के अनुसार — “यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र-चित्रण उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के कारण ही हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् करते हैं। चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य के आपे (पर्सनैलिटी) को प्रकाश में लाते हैं।”<sup>30</sup>

चरित्रों का गठन यद्यपि उपन्यासकार द्वारा होता है फिर भी वे “अपने मानव होने और ईश्वरीय सृष्टि होने का आभास देते हैं। .....उपन्यासकार अपने कौशल से उनमें ऐसे गुण भर देता है कि उनसे हमारा निकटतम तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उनके सुख-दुख हमारे अपने-से प्रतीत होते हैं।”<sup>31</sup> तात्पर्य यह है कि पात्रों के मनोविज्ञान का ध्यान रखते हुए उपन्यासकार को इस रूप में पात्र-निर्माण करना चाहिए कि वे पात्र हममें पूर्णतः यथार्थ का भ्रम पैदा करें और उपन्यास की समाप्ति के बाद भी हमारी स्मृति में टिके रहें।

चरित्र मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं — टाइप (वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि) और विशिष्ट व्यक्तित्व वाले। पात्रों के दो भेद और हैं — आदर्शवादी, यथार्थवादी। यथार्थ के आधार पर व्यावहारिक आदर्श का चित्रण करने वाले उपन्यास श्रेष्ठ समझे जाते हैं। पात्रों के दो वर्ग माने गये हैं— १. प्रमुख पात्र, जिसमें उपन्यास का मूल अभिप्राय केन्द्रित रहता है और जो उपन्यास में गति का स्रोत माना जाता है; २. सहायक पात्र-जिनका महत्त्व बहुत कुछ उपन्यासों को आगे बढ़ाना तथा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना होता है जो मुख्य पात्र या नायक के चरित्र विकास में सहायक हों। चूँकि इन चरित्रों का चित्रण गहराई से नहीं होता इसलिए प्रायः इन्हें सपाट चरित्र कहा जाता है।

पात्रों अथवा चरित्रों के माध्यम से उपन्यासकार मानव-जीवन के विविध पक्षों का चित्रण प्रस्तुत करता है। कृति में चरित्र निर्माण की विशेष विधि को अपनाकर उपन्यासकार अपने पात्रों का सृजन करता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार — “उपन्यासकार के लिए किसी भी चरित्र का निर्माण करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि वह अपनी कल्पना के सम्मुख किसी जीवित व्यक्ति को लाकर खड़ा नहीं कर लेता। बिना किसी एक निश्चित व्यक्ति को मस्तिष्क में लाये, यह कभी संभव नहीं है कि चरित्रों में जीवन-दायिनी शक्ति का संचार किया जा सके।”<sup>32</sup> लेखक अपने परिचितों या निकट के व्यक्तियों से प्रभावशाली चरित्र का चयन करता है और कभी-कभी लेखक स्वयं किसी पात्र के निर्माण हेतु अपने चरित्र का प्रक्षेपण करता है। उपन्यासकार यद्यपि साधारण

लोगों को धोखे में डालने के लिए प्रायः लिख दिया करते हैं कि “उपन्यास में आये सभी चरित्र काल्पनिक हैं”, परन्तु वास्तव में उनके चरित्र कल्पित नहीं हुआ करते — वे किसी न किसी व्यक्ति अथवा पात्र को सामने रखकर अपने चरित्र का गठन करते हैं। परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं है कि उपन्यासकार अपनी कृति में किसी व्यक्ति के चरित्र को यथावत् उपस्थित कर देता है। वास्तविक चरित्रों के सभी गुण-अवगुण हमें उपन्यास के चरित्रों में मिल सकते हैं परन्तु उन्हें हम वास्तविक व्यक्ति की संज्ञा नहीं दे सकते। उनकी गतिशीलता उपन्यास में ही होती है जीवन में नहीं।

चरित्र निर्माण का प्रधान स्रोत उपन्यासकार का अपना ही जीवन है। उपन्यासकार के व्यक्तित्व की छाया कहीं न कहीं उपन्यास में अवश्य अपनी झलक मार जाती है। किसी चरित्र के गठन हेतु उपन्यासकार जब अपनी सामग्री का चयन किसी व्यक्ति के जीवन से करता है तो वह उसे अपनी दृष्टि से जाँचता-परखता है, यही कारण है कि एक ही चरित्र अलग-अलग उपन्यासकारों की कलम से भिन्न-भिन्न रूप में चित्रित होता है। उपन्यासकार व्यक्तिगत रूप से चरित्रों के अवचेतन मन तक प्रवेश करता है। चरित्रों में बैठकर उपन्यासकार स्वयं बोलता है, चरित्रों के माध्यम से अपनी बात कहता है परन्तु लेखक को यह आभास नहीं रहता कि वह अपनी बात कह रहा है। अपनी कलात्मकता के कारण उपन्यास कथानक और चरित्र की संगति बैठाता है। वास्तव में कथानक और चरित्र एक-दूसरे के पूरक हैं। चरित्र का माहात्म्य जिस प्रकार कथा गठन में स्वीकार किया जाता है वैसे ही संवाद योजना, भाषा-शैली तथा उद्देश्य प्रतिपादन के लिए भी उसकी महत्ता सर्वविदित है।

## नागरजी के उपन्यासों में चरित्र सृष्टि के आयाम

नागरजी के उपन्यासों के प्रमुख पात्रों के चरित्र का विश्लेषण उनके चरित्र गठन की विशेषताओं को समझने में सहायक होगा।

इस विश्लेषण हेतु उनके उपन्यासों से जिन प्रमुख पात्रों का चयन किया गया है, वे हैं— मोनाई और पाँचू (महाकाल), सेठ जी (सेठ बाँकेमल); ताई, महिपाल, बाबा रामजी, सज्जन, वनकन्या तथा कर्नल (बूँद और समुद्र); दुलारी और ब्रह्मचारी (शतरंज के मोहरे); माधवी, कन्नगी और कोवलन (सुहाग के नूपुर); अरविन्द शंकर, रमेश और लच्छू (अमृत और विष); बेगम समरू (सात घूँघट वाला मुखड़ा); सोमाहुति और नारद (एकदा नैमिषारण्ये); तुलसी (मानस का हंस); निर्गुनियाँ (नाच्यौ बहुत गोपाल); सूरदास और कन्तो (खंजन-नयन); गुरसरन बाबू (बिखरे तिनके); सीता और रामेश्वर (अग्निगर्भा); तनकुन और देशदीपक (करवट)। उपन्यासों के क्रम से इन पात्रों का विवेचन प्रस्तुत है—



## महाकाल (भूख)

पाँचू : महाकाल उपन्यास का नायक पाँचू गोपाल मुखर्जी एक सुशिक्षित एवं बुद्धिजीवी पात्र के रूप में लेखक की विचारधारा को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास में वह एक भावुक तथा आदर्शवादी स्कूल मास्टर के रूप में चित्रित है। परन्तु वह कोरी आदर्शवादिता का वाहक पात्र नहीं है, यथार्थ स्थितियों का सामना करते हुए अपने परिवर्तित स्वरूप को भी अभिव्यक्त करता है। भूख की व्याकुलता से जब सारा गाँव मरणोन्मुख हो रहा है, स्त्री और बच्चे बेचे जा रहे हैं, पूँजीपति वर्ग के गोदामों में चावलों के बोरे भरे पड़े हैं, गरीब का जीवन कुत्तों से भी निकृष्ट हो गया है तथा महाजन अपनी तिजोरी भरने में संलग्न हैं — ऐसी विषम परिस्थिति में पाँचू की विद्वत्ता, आदर्शवादिता तथा विद्वान पिता से विरासत में पाया पांडित्य—सभी यथार्थ की पथरीली जमीन से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं। इस प्रकार लेखक ने पाँचू के चरित्र को केवल आदर्शवादी ही नहीं रखा है, उसे यथार्थ की आँच में तपाकर निखारा भी है। आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में पाँचू का चरित्र सजीव रूप में उपस्थित किया गया है। उसके आदर्शों पर यथार्थ का प्रथम प्रहार तब होता है जब उसे भूख से विवश होकर मोनाई के हाथों स्कूल की डेस्कें बेचनी पड़ती हैं और जमींदार की जी-हुजूरी करनी पड़ती है। परिवार में व्याप्त भुखमरी उसे चेतना-शून्य कर देती है। वह स्वयं की नजरों में गिर जाता है। तभी तो वह पीड़ा भरे स्वर में कह उठता है— “सारा संसार मुझसे बड़ा है। हर शख्स मुझसे बड़ा है। दुनिया की हर चीज मुझसे बड़ी है। मुझे किसी को छोटा समझने का अधिकार नहीं — कोई नीच नहीं ; कोई बुरा नहीं। सारी बुराइयाँ मुझमें हैं। मैं सबसे बुरा हूँ। मैं ही बुरा हूँ।”<sup>33</sup> पाँचू की यह स्वीकारोक्ति उसके व्यक्तित्व को विशिष्ट ऊँचाई प्रदान कर देती है।

पूँजीपतियों की स्वार्थ भावना पर पाँचू का आक्रोश इन शब्दों में व्यक्त होता है — “खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। लेकिन यह खुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं देखता?”<sup>34</sup>

पाँचू का यह मत कि जब तक मनुष्य व्यक्ति और समाज को भिन्न मानकर चलता रहेगा तब तक मौत, भूख, अकाल और शोषण की छायाएँ इसी प्रकार मँडराती रहेंगी, उसकी नायकोचित चिंताधारा के अनुरूप ही है। यद्यपि परिवार में होनेवाली मौतों तथा अकालजन्य परिस्थितियाँ उसे घर छोड़कर भागने को विवश करती हैं तथापि खण्डहर में सद्यःजात शिशु का रुदन उसे नई आस्था देता है। मौत के सत्राटे में जीवन का रुदन उसे नई शक्ति के साथ जीवन-संघर्ष में प्रवृत्त करता है। अपनी पत्नी मंगला की गोद में शिशु को डालकर बड़े धैर्य के साथ वह कहता है — “जो होना था, वह हो

गया। अब इसे सँभालो। इसे बचाओ। इसे बचाने के लिए ही हम तुम जिएँगे।”<sup>29</sup> पाँचू के माध्यम से मानवतावाद की यही प्रतिष्ठा नागरजी का अभीष्ट है।

यद्यपि पाँचू का ‘पलायन’ उसकी चारित्रिक कमजोरी की ओर इंगित करता है परन्तु “अविश्वास के वातावरण में जीवन के प्रति विश्वास की दृढ़ता”<sup>30</sup> से पाँचू की अदमनीय, चिर विजयी, विकासमयी शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। भूख और मौत से संघर्ष करने के साथ-साथ शोषक वर्ग के विरोध का संकल्प पाँचू के व्यक्तित्व को आभामंडित कर देता है।

**मोनाई :** ‘महाकाल’ (भूख) का दूसरा प्रमुख पात्र है मोनाई केवट। नागरजी द्वारा निर्मित अविस्मरणीय पात्रों में मोनाई का विशेष स्थान है। पाँचू की अपेक्षा मोनाई का चरित्र चित्रित करने में उपन्यासकार को विशेष सफलता मिली है। कृति का खलनायक मोनाई अपने दो-मुँहे और दुरंगे रूप में अत्यंत जीवन्त लगता है। यथार्थ के गाढ़े रंगों से मोनाई का चरित्र चित्रित किया गया है। वास्तव में पूँजीवादी विकृतियों को उजागर करने का उपयुक्त माध्यम मोनाई के रूप में नागरजी को मिल गया है। मोनाई की गतिविधियों से पूँजीपतियों के प्रति लेखक का आक्रोश व्यक्त होता है। उसकी व्यापारिक बुद्धि उसे घटना, दुर्घटना, संयोग-दुर्योग सभी में लाभ कमाने के लिए प्रेरित करती है। वह लाशों तक को मेडिकल कॉलेज में बेचकर लाभ कमाना चाहता है। दैवी प्रकोप को वह अपने लिए भाग्योदय मानता है। धर्म-कर्म के दिखाने के साथ उसकी लूट जारी रहती है। वह केवल चावल का व्यापारी नहीं है मौका पड़ने पर वह गाँव की बहू-बेटियों का व्यापार करने से भी नहीं चूकता। इसके लिए उसके पास धर्म की झूठी दुहाई भी है — “यों भूखी मर रही हैं बेचारी, वैसे कम से कम खाने पहनने को तो मिलेगा। वो सुखी होंगी और दो पैसे मुझको भी मिल जायेंगे। भगवान जी ने अगर इस नए व्यापार में अच्छे पैसे बनवा दिए तो आगे चलकर अनाथालय और आश्रम भी खुलवाय दूँगा। यही तो धरम की महिमा है।”<sup>31</sup> उसके लिए धर्म और ईमान का कोई महत्त्व नहीं है, उसका मुख्य धर्म धनार्जन है। वह कहता है— “कलयुग में धरम काहे का? स्वारथ है। और स्वारथ हमारा तुम्हारा एक है। हमारा स्वारथ इसी में है कि ये बड़े लोग आपस में जूझें और हम मिलकर नफा उठायें।”<sup>32</sup> उसकी वणिक् वृत्ति दूसरों के सामने अपने को धिक्कारती है। अपने स्वार्थ के कारण दयाल जर्मीदार के पैर पकड़ने में भी उसे कोई हिचक नहीं होती। उसे धर्म और ज्ञान की ऊँची-ऊँची बातों की जानकारी है परन्तु इन सबका उपयोग वह अपनी झोली भरने के लिए ही करना चाहता है। “मुख में राम बगल में छुरी’ कहावत उसके चरित्र पर खरी उतरती है। नागरजी ने विशुद्ध यथार्थवादी भूमिका पर जिन थोड़े से चरित्रों की सृष्टि की है उनमें मोनाई अन्यतम है। इस चरित्रांकन से सिद्ध होता है कि नागरजी में मानव को परखने की अद्भुत क्षमता रही है।



'महाकाल' के अन्य पात्रों में दयाल जमादार शोषक वर्ग से संबंधित है। सामंतवर्ग की विलासिता, अहंकार तथा स्वार्थपरता का स्थूल चित्रण उसके माध्यम से हुआ है। अन्य गौण पात्रों में केशव बाबू, पार्वती माँ, मंगला तथा शिवू — सभी पाँचू गोपाल मुखर्जी के परिवार के सदस्य हैं। ये सभी पात्र अपने-अपने चरित्रों के माध्यम से बंगाल के अकाल और तत्संबंधी परिस्थितियों को प्रस्तुत करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

## सेठ बाँकेमल

सेठजी : नागरजी ने 'सेठ बाँकेमल' के माध्यम से पुरानी पीढ़ी के ऐसे चरित्र को प्रस्तुत किया है जो नवयुग की परिवर्तित मान्यताओं को स्वीकार नहीं कर पाता। आगरे के गोटे के व्यापारी सेठ बाँकेमल अपनी बिताई हुई शानदार जिन्दगी की यादों से इस बदले हुए आधुनिक जमाने में जीने का सहारा खोज लेते हैं। आधुनिकता से बेहद असंतुष्ट सेठजी को उनका भोगा हुआ शानदार अतीत ही वर्तमान की नीरसता के बीच जीने का सहारा प्रदान करता है। वे सामन्ती जीवन व्यवस्था में पलनेवाले वर्ग विशेष की सजीव प्रतिमूर्ति हैं। उनमें 'आकाश-पाताल के कुलाबे भिड़ाकर' मौत के किस्से-कहानियाँ गढ़ने की अद्भुत शक्ति है ; प्राचीनता के प्रति उनके मन में अंध-भक्ति है। वे आधुनिकता के कट्टर विरोधी हैं; नृत्य-गायन, कुस्ती, कसरत, भंग-सेवन, जुआ-प्रेम तथा महफिलबाजी उनके प्रिय व्यसन हैं; 'खाओ पिओ और मौज करो' सिद्धान्त पर उनका भरोसा है। इस प्रकार सेठजी में मस्ती, फक्कड़पन, छैलापन या आवारगी है परन्तु उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष भी कृति में चित्रित हुआ है जो उन्हें घोर मानवतावादी और प्रगतिशील सिद्ध करता है। उनमें सांप्रदायिकता लेश-मात्र भी नहीं है। अंग्रेजी से उन्हें घृणा है। दीन-दुखियों के प्रति उनके तथा उनके मित्र चौबेजी के मन में हार्दिक सहानुभूति है। देवीदयाल की पुत्री के व्याह में पुराणपंथियों का विरोध बाँकेमल की प्रगतिशील चेतना का परिचय देता है। इस प्रकरण से प्रमाणित होता है कि वह पुरातन-परंपराओं में सभी कुछ यथावत् स्वीकार करने का पक्षपाती नहीं है, सड़ी-गली परंपराओं का विरोधी भी है। चरित्र के ये परस्पर विरोधी तत्त्व उसे अद्वितीय पात्र के रूप में उपस्थित कर देते हैं। ऐसे चरित्र हिन्दी उपन्यास में विरले ही हैं। नागरजी ने इस चरित्र को वह गति दी है जिससे सेठजी का पूरे उपन्यास में छाए रहना पाठक को खलता नहीं है। उनकी किस्सागोई तथा हास्य-व्यंग्य की आकर्षक कारगुजारी प्रभाव उत्पन्न करती है। गप्प अथवा कपोल कल्पना पर आधारित सारे किस्से उनके 'तरकैट' व्यक्तित्व की पुष्टि करते हैं। राजेन्द्र यादव ने ठीक ही लिखा है— "बाँकेमल तो सचमुच ही अद्वितीय चरित्र है जो हँसते-हँसते अपने युग की प्रतिक्रियावादी और

प्रगतिशील दोनों धाराओं का दिग्दर्शन कराता है। ..... वर्णनात्मक शैली की सजगता की दृष्टि से भारतीय साहित्य के बाहर भी ऐसा मस्त चरित्र मिलना मुश्किल है।”<sup>२१</sup>

कृति में सेठ बाँकेमल का चरित्र मनोरंजन की पर्याप्त सामग्री देता है। यह नागरजी के चित्रण का वैशिष्ट्य है। यद्यपि लेखक को कृति में पात्र के अंतरंग चित्रण का अवसर प्राप्त नहीं होता परन्तु वहिरंग चित्रण में नागरजी ने बाँकेमल के वर्ग, व्यवसाय से लेकर उनके स्वभाव तक की विशेषता उनके नाम के साथ ही बता दी है। डॉ. सत्यपाल चुध के अनुसार, “उनकी कुशलता इसमें है कि उन्होंने ऐसा गुण-दोषमय पात्र निर्मित किया है, जिसे हम कभी भूल नहीं सकते। उसके विचारों से बात-बात में कुल मर्यादा तथा अपने बीते जमाने की दुहाई देने और नए जमाने को सन्देह की दृष्टि से देखने की प्राचीन संस्कारों की ग्रंथि से हम सहमत नहीं हो सकते - यही तो हमें हँसाता है और इसी में व्यंग्य-गर्भित है — परन्तु उस जैसे सहृदय-सप्राण, निश्छल-निडर, चिरयुवा और मित्रता के आदर्श — सेठजी के अपने शब्दों में तरकैट व्यक्तित्व — से आज का ‘खुसकैट’ जमाना या अर्थ की निष्ठुर क्रीड़ा में संलग्न समाज बहुत कुछ सीख सकता है।”<sup>२२</sup>

कुल मिलाकर सेठ बाँकेमल का आकर्षक तथा ‘तरकैट’ व्यक्तित्व उसकी जिन्दादिली तथा सजीवता का सूचक है। एक ही पात्र में मनोरंजन के साथ-साथ उद्देश्य की प्रतिष्ठा कर देने के कारण यह उपन्यास आकर्षक बन गया है।

## बूँद और समुद्र

ताई : इस बृहद् आकार वाले उपन्यास में नागरजी ने विविध चरित्रों की अवतारणा की है जिनमें सर्वाधिक आकर्षक एवम् जीवन्त चरित्र ताई का है। अंध विश्वास और जादू टोने जैसी मृत रूढ़ियों एवं धार्मिक विकृतियों का अनुकरण करने वाली ताई अपनी समस्त विकृतियों एवं नीचताओं के बावजूद अत्यंत प्रभावशाली पात्र के रूप में कृति में प्रस्तुत की गई है। उसके चरित्र में रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा कुंटा मूर्त हो उठी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने ताई को ‘उपन्यास की धुरी’<sup>२३</sup> माना है। वास्तव में ताई की पृष्ठभूमि में कथा को नागरजी ने पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है जिससे ताई की विद्रूपता के साथ-साथ हिन्दू रूढ़िवादिता और कट्टरता भी उद्भासित हो गई है। परन्तु अन्धविश्वासों की कठोरता और जादू-टोने के दुष्टताभरे चमत्कारों के “क्रूर बाह्य के भीतर स्नेह की स्निग्धता और मानवीय करुणा की धारा”<sup>२४</sup> का प्रवाह भी है। ताई का चरित्र परस्पर विरोधी गुणों से युक्त है। उनमें “कायरता व साहस, सहिष्णुता एवं असहिष्णुता, संकीर्णता तथा उदारता की परस्पर विरोधी भावनाएँ मिलती हैं।”<sup>२५</sup>



ताई के चरित्र का निर्माण नागरजी ने बड़ी बारीकी से किया है। लेखक ने वास्तविक जगत की तीन महिलाओं के चरित्रों को 'बूंद और समुद्र' की 'ताई' में उपस्थित कर दिया है। परन्तु लेखकीय कौशल के कारण "ताई" कथा के किसी भी स्तर पर तीन चरित्रों वाली मालूम नहीं देती। नागरजी लिखते हैं— "मेरे उपन्यास 'बूंद और समुद्र' की ताई में मेरे देखे तीन चरित्र हैं— बचपन में हमारी गलियों में एक बुढ़िया दादी थीं। उनकी सबसे बड़ी मुसीबत यह थी कि आते-जाते टोकने से चिढ़ती थीं। सुबह मंगला के दर्शन करने के निमित्त जाते हुए उन्हें कोई टोक दे यह तो वे सह नहीं पाती थीं। लठिया लेकर मारने को दौड़ती थीं। दूसरा चरित्र एक मैली-कुचैली धोती, चादर पहनने वाली लम्बी, दुबली, घूँघट काढ़कर अपनी छोटी-छोटी चुंधी-सी मगर भयावनी चमक लिए आँखों की पुतलियाँ मुझे अब तक याद आ रही हैं— वह टोनही ताई थीं। हवेलीघर पतिवाले आख्यान में कुछ अंश कल्पना कुछ एक अलग कहानी का सार है।"<sup>१४</sup>

रायबहादुर द्वारकादास की परित्यक्ता ताई को सभी पर क्रोध आता है। जादू के पुतले बनाकर दूसरे के दरवाजे रख आना उनका स्वभाव है। जीवन के कटु-प्रसंगों ने उन्हें पूरे संसार का शत्रु बना दिया है। कटु-वचन, गाली-गलौज तथा दूसरों का अशुभ चाहना मानों उनकी प्रकृति बन गई है। वे मुहल्लेवालों के घरों के दरवाजे आटे के पुतले रखकर उनकी मौत की मनौती मानती रहती हैं। वे जादू-टोने पर विश्वास करती हैं और इसका उपयोग दूसरों को मार डालने के लिए करना चाहती हैं। आटे के पुतले, सिंदूर, काला डोरा, तिल आदि टोटके की वस्तुएँ उनकी गृहस्थी हैं। ताई के मुँह से 'आशीर्वचन' के रूप में यह शब्दावली प्रायः सुनी जा सकती है— "निगोड़ों के तन-मन में कीड़े पड़े, रोवें-रोवें में कोढ़ हो, मरों के पूरे घर की अर्थियाँ साथ-साथ उठें, हैजा हो, पिलेग हो, सीतला खांय।"<sup>१५</sup> ताई के चिड़चिड़ेपन, अविश्वास की भावना तथा अशिष्ट आचरण के साथ उनकी नित्य की बड़बड़ाहट के लोग अभ्यस्त हो गये हैं तभी तो वे मंदिर जाते समय लोगों द्वारा चिढ़ायी जाती हैं और उपहास का साधन बनती हैं। लेखक ने उनकी बड़बड़ाहट का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है — "अगर ताई की जीवन भर की बड़बड़ाहट का रस्सा बँटा जाय तो हनुमान जी अपनी दुम बढ़ा-बढ़ा कर थक जायेंगे, मगर दुम से रस्सा बड़ा निकलेगा।"<sup>१६</sup>

ताई पूरे मुहल्ले के लिए एक साथ भय और मनोरंजन का साधन हैं। ताई अपने परस्पर विरोधी चरित्र के बावजूद लोगों के आकर्षण का केन्द्र हैं। उनसे सभी भयभीत रहते हैं परन्तु उन्हें छेड़कर सभी आनंद प्राप्त करते हैं।

समाज के प्रति उनकी नफरत का कारण उनका अतीत है। माता-पिता की मृत्यु के बाद अनाथ दादा-दादी के लाड़-प्यार में पली ताई जब राजा बहादुर द्वारका दास की गृह लक्ष्मी बनकर आई तो द्वारका दास पर लक्ष्मी की भी अपार कृपा हुई परन्तु

सास की नजरों में वे न चढ़ सकीं। इस बीच एक पुत्री की माँ बनने पर सास की घृणा और तीव्र हो गई। आठ महीने की होकर पुत्री चल बसी। इस शोक ने ताई के मन में प्रतिहिंसा का भाव जागृत कर दिया। वे उस पूरे समाज से बदला लेने को उतावली हो उठीं जिसने उनकी इकलौती पुत्री छीन ली। द्वारकादास ने दूसरा विवाह कर लिया और वे राजाबहादुर द्वारकादास की परित्यक्ता बनकर चौक की पुरानी हवेली में रहने लगीं। इसी प्रतिहिंसा की भावना ने उनकी नारी-सुलभ ममता को नष्ट कर दिया। उन्हें शिशु-मात्र से घृणा हो गई तभी तो वे गर्भवती तारा के दरवाजे पर बिल्ली के बच्चे की सिरकटी लाश पर जलता हुआ दीपक और काला तिल, सिंदूर इसलिए रख आती हैं कि “रौंड बहुत पेट लिए घूमती है, ऐसे ही कटके गिर पड़ेगा।”<sup>१०</sup> वास्तव में उनकी यह घृणा बच्चों के प्रति नहीं कुत्सित समाज के प्रति है। उन्हें हैंसते-खिलखिलाते व्यक्तियों की हैंसी तथा उल्लास की कोई भी क्रिया नापसंद है। समाज की उपेक्षा एवं घृणा के कारण वे विद्रोहिणी बन गई हैं। उनकी इस प्रकृति का नागरजी ने हास्य-व्यंग्य की शैली में आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है — “झम्मन बजाज की छत पर जोर-जोर से हैंसती हुई लड़कियाँ-बहुएँ उनकी सात जनम की दुश्मन हैं— “निगोड़ियों के गले दाईं ने बाँस से खोले थे — जब देखो तब हा-हा-हा-हा।” फिर मुँडेर पर ताई के “निगोड़े खसम” सा कौआ बैठकर बीट कर गया; फिर आस-पास के रेडियो खुल गये— “हम तुमसे मुहब्बत करके सनम”, “भाड़ में जायँ निगोड़े सनम।”<sup>११</sup>

परन्तु ताई के चरित्र का दूसरा पक्ष भी है। वे ममतामयी होकर बिल्ली के बच्चों को दूध पिलाती हैं। तारा के प्रति हिंसक भाव रखते हुए भी असमय में उपस्थित होकर उसका प्रसव कराती हैं। यह कार्य ताई को देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है। इसी संदर्भ में उनके द्वारा तारा के पुत्र की ‘छठी’ का उल्लासभरा आयोजन और ‘राधाकृष्ण’ का धूम-धाम से विवाह संपन्न कराना भी लिया जा सकता है। वे सज्जन के विवाह पर दो तोला सोना देने की बात बार-बार करती हैं। ये सब बातें उनकी अपूर्ण इच्छाओं की प्रतिक्रिया हैं। वे कहती हैं— “मेरे मन में बड़ी-बड़ी साध रह गई, मेरे भी दोहते होते, किसी का मुंडन करती, किसी का जनेऊ करती, मेरे घर टीका आता .....।”<sup>१२</sup>

ताई का मातृवत् स्नेह सज्जन और वनकन्या को प्राप्त होता है। किराएदार सज्जन के घर मुहल्ले के लोगों के हमले का मुकाबला वे अकेले करती हैं। उनकी गरिमामयी मानवीय भूमिका का उत्कर्ष उनकी मृत्यु के समय प्रकट होता है जब वे मरते-मरते अपने पति राजाबहादुर द्वारकादास को मारने के लिए पहले मूठ चलाती हैं परन्तु वही मूठ यह सोचकर अपने ऊपर ले लेती हैं कि “मरन किनारे अब किसी का बुरा नहीं चेतूँगी।”<sup>१३</sup> इस उक्ति में पति के प्रति भारतीय नारी का संस्कार चित्रित हो गया है। ताई की मृत्यु के उपरान्त उनकी शवयात्रा में मुहल्ले के लोगों की भारी भीड़ ताई के



प्रति लोगों के आदर को व्यक्त करती है। "जनता की जबान पर ताई धन्य-धन्य हो रही थीं। उनके इधर के कार्य समाज में खूब ही सराहे गए थे। गंगा दशहरे के दिन ताई का देहान्त हुआ यह बात उनके सीधे स्वर्ग जाने के सबूत में पेश की जा रही थी।"<sup>५१</sup>

इस प्रकार लेखक ने ताई के चरित्र-चित्रण में गहन मनोवैज्ञानिक दृष्टि एवं क्षमता का परिचय देते हुए अत्यंत सजीव विश्वसनीय एवं कलात्मक चरित्र का निर्माण किया है। वास्तव में हिन्दी उपन्यास में ऐसे चरित्र बिरले ही होंगे। नागरजी की कृतियों में ताई का चरित्र अद्वितीय है।

**सज्जन वर्मा :** उपन्यास के नायक सज्जन को नागरजी ने एक सफल चित्रकार, समाजसेवी, त्यागी और आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। एक सम्पन्न परिवार से संबद्ध होने के कारण उसमें पूँजीवादी वर्ग की दुर्बलताएँ तथा दोष भी मौजूद हैं। उसे शराब पीने की लत है, उसकी दृष्टि में नारी मनोरंजन का साधन है। उपन्यास की नायिका वनकन्या से प्रेम करता हुआ भी वह चारित्रिक दृष्टि से स्वखलित होता है। चित्रा राजदान से उसकी रंगरेलियाँ उसकी इसी प्रवृत्ति का संकेत करती हैं। उसे अपनी सम्पत्ति का अहंकार है। वह अपने नौकरों से कठोर व्यवहार करता है। आज के शिक्षित नवयुवकों की जो मानसिक परेशानियाँ हैं वे सज्जन में भी हैं। सम्पन्न चित्रकार होते हुए भी वह सामाजिक सुधार एवं विकास में रुचि रखता है — इस हेतु वह चौक मुहल्ले में ताई के पड़ोस में किराए का कमरा लेकर रहता है। वह विचार से क्रांतिकारी तथा जनवादी चेतना से अनुप्राणित है। रूढ़िवादी परंपराओं के दोषों से वह भलीभाँति अवगत है, उसकी बुद्धि उसे बार-बार इन परंपराओं का विरोध करने के लिए प्रेरित करती है परन्तु उसमें दृढ़ संकल्प, इच्छाशक्ति एवम् मनोबल की कमी है। ईर्ष्या, द्वेष तथा सामाजिक मान-मर्यादा का भय आदि कमियाँ उसके भीतर जड़ जमाए बैठी हैं। अंततः उसके ये सारे दोष बाबा रामजीदास के सद् उपदेशों से दूर होते हैं। वनकन्या से विवाह करने के उपरान्त उसकी जीवन-धारा त्याग के मार्ग पर गतिशील होती है। उसके कार्य-कलापों द्वारा मानसिक ऊहापोह तथा चारित्रिक वैविध्य का परिचय मिलता है। यह ठीक है कि उपन्यासकार ने उसमें चन्द्रमा के समान कलंक का वर्णन कर उस पात्र को यथार्थपरक तथा मानवीय बनाने का प्रयत्न किया है परन्तु लेखक के तमाम प्रयासों के बाद भी सज्जन का चरित्र उतना प्रभावशाली नहीं हो पाता जितना महिपाल अथवा कर्नल का। एक अस्थिर चित्त वाले पात्र के रूप में ही पाठक के मन पर उसका प्रभाव पड़ता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सज्जन में कोई वैशिष्ट्य नहीं है। एक कलाकार की संवेदनशीलता, सहृदयता तथा विवेक बुद्धि से संपन्न सज्जन को अपनी दुर्बलताओं का भान है, तभी तो वह आत्मग्लानि से अभिभूत होकर अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त होता है। डॉ. सत्यपाल चुघ के अनुसार — "वह बार-बार गिरता

पड़ता है परन्तु बाबा रामजी के तर्कसंगत आत्मीय निर्देशन, वनकन्या जैसी एकनिष्ठ दृढ़, तेजस्विनी तथा क्रांतिकारिणी नारी के विनम्र निश्छल प्यार तथा मित्र कर्नल के सहयोग से उबरता-बढ़ता ही चलता है।”<sup>२</sup>

सज्जन का सबसे बड़ा गुण उसका मानव मात्र से प्रेम है। समष्टि साधना हेतु अनिवार्य इस प्रवृत्ति के कारण ही वह समाज सेवा की भावना से प्रेरित होकर तीन लाख रुपयों का दान करता है। समाज-सेवा के कई कार्यों में वह अग्रणी भूमिका निभाता है — महिला सेवा मंडल के कार्यकलापों का वह भंडाफोड़ करता है, सहकारी बैंक, स्कूल, अस्पताल आदि को खोलता है, पगली की सहायता करता है। वह रूपरतन तथा रईसों के वर्ग के विरोध का दृढ़ता से मुकाबला करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सज्जन को नायकत्व के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए नागरजी ने शीघ्रता से काम नहीं लिया है, चरित्र विकास की मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है और समष्टि के साथ युक्त होकर कार्य करने वाले व्यक्ति की अंतर्बाह्य कठिनाइयों का सूक्ष्म चित्रण किया है। चौक में रहते हुए उसकी चित्रकारी छूटती हुई जान पड़ती है। वहाँ वह चित्रकार कम, समाजसेवक अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु अपने इस रूप में भी वह हमें अस्वाभाविक नहीं लगता। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि सज्जन के चरित्र में जो कमजोरियाँ दिखाई पड़ती हैं वे स्वाभाविक हैं और इन दोषों को दूर कर अपने चरित्र को परिनिष्ठित करने की शक्ति सज्जन में है।

**महिपाल :** ‘बूँद और समुद्र’ में महिपाल का चरित्र एक मध्यवर्गीय पात्र की सारी विशेषताओं और दुर्बलताओं से युक्त है। वह प्रगतिशील आस्था वाला प्रतिष्ठित साहित्यकार है। कृति में उसे मध्यवर्ग के ऐसे संघर्षशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है। उसका चरित्र अंतर्विरोधों से ग्रस्त है। एक ओर वह प्रगतिशील चेतना का पक्षधर है तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय संस्कार, आभिजात्य की भावना तथा थोथे आत्मसम्मान के मोह के वशीभूत है। इन अंतर्विरोधों को लिए हुए वह जीवन-पथ पर गतिशील होता है परन्तु अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का हल न पाकर आत्महत्या करने को विवश होता है। उसमें एक ओर पारिवारिक बंधनों से मुक्त होने की छटपटाहट दिखाई पड़ती है तो दूसरी ओर पारिवारिक दायित्व पालन की चेष्टा भी परिलक्षित होती है। डॉ. शीला स्विंग के प्रति उसका प्रेम तथा यौन संबंध उसके एक पक्ष का तथा गृहिणी कल्याणी के साथ जुड़े रहने की भावना उसके दूसरे पक्ष का समर्थन करती है। परन्तु स्वच्छन्द होकर भी वह उत्तरदायित्वहीन नहीं होता।

उसकी परस्पर विरोधी बातें उसके मानसिक अंतर्द्वन्द्व को उजागर करती हैं। नागरजी ने महिपाल के माध्यम से प्रतिभासंपन्न साहित्यकारों की कुंठा और नैतिक अधःपतन का चित्रण किया है। लेखक ने मध्यवर्गीय साहित्यकार महिपाल के जीवन



को हृदय की गहराई से अंकित किया है। महिपाल के चरित्र का सूक्ष्म विवेचन करने से यह प्रतीत होता है कि नागरजी ने इस पात्र के निर्माण में निराला के चरित्र के संघर्ष और अभाव को समाहित किया है। इसके साथ ही एक साहित्यकार की कुंठा भी महिपाल के माध्यम से व्यक्त हुई है।

महिपाल का साहित्यिक चिन्तन उच्चस्तरीय है। उसकी प्रगतिशील चेतना ढोंग और धार्मिक अंधविश्वास का विरोध करती है। वह मन से शुद्ध और नीतिनिष्ठ रहना चाहता है परन्तु परिस्थितिवश चोरी करने को विवश होता है। अपने इस अधःपतन पर उसे पश्चात्ताप होता है और वह दुखी होकर आत्महत्या कर लेता है। नागरजी ने महिपाल का चरित्र सद्गुण और दुर्गुण दोनों के योग से बनाया है यही कारण है कि वह मानवीय और यथार्थपरक लगता है। गुण-अवगुण भरे घटनापूर्ण जीवन के कारण उसका चरित्र सज्जन के नायकत्व को चुनौती देता प्रतीत होता है।

महिपाल की प्रगतिशील चेतना आस्था से समन्वित है। एक ओर वह प्राचीन रूढ़ियों का कट्टर विरोधी है तो दूसरी ओर शिव-भक्त भी। दिग्भ्रमित स्वभाव के कारण वह सज्जन की उन्नति और सुख से ईर्ष्यालु होकर उसके विरुद्ध प्रचार करने लगता है। अपनी समस्त दुर्बलताओं के बावजूद महिपाल का चरित्र सजीव है। महिपाल के माध्यम से लेखक ने अनेक स्थलों पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। डॉ. सुषमा धवन ने ठीक ही लिखा है — “महिपाल के जीवन की दुखान्त गाथा एक द्विविधाग्रस्त आत्मा की दुखान्त गाथा है।”<sup>3</sup> डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार — “उसकी कहानी उस बुद्धिजीवी की कहानी है जो समाज व्यवस्था से असन्तुष्ट तो है लेकिन उसे बदलने के लिए जन-शक्ति को संगठित करने का धैर्य और दृढ़ मनोबल जिसमें नहीं है।”<sup>4</sup>

भाई जयपाल की कृतघ्नता, अर्थाभाव के कारण पारिवारिक समस्याओं की अनवरत वृद्धि और विभिन्न दुश्चिन्तायें उसकी आस्था को डिगा देती हैं। उपन्यास के अन्त में महिपाल का करुण तथा मार्मिक दुखान्त इसी का परिणाम है। उसकी आत्महत्या से पाठक द्रवित होता है। आत्महत्या के पूर्व लिखे गये पत्र में वह अपने अपराध को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करता है, व्यक्तित्व की संकीर्णता, कायरता तथा ईर्ष्यावृत्ति के रूप में अपनी कमियों को कलंक मानता है और इस प्रकार पाठकों की नजर में और ऊँचा उठ जाता है। इसी पत्र के अन्त में लिखे हुए वाक्य उसके प्रौढ़ चिंतन को प्रमाणित करते हैं। मरते-मरते वह व्यक्ति और समाज के समन्वय का संदेश दे जाता है — “व्यक्ति-व्यक्ति अवश्य रहे; पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो। — मैं अकेला भी हूँ पर बहुजन के साथ मैं हूँ, सुख-दुख, शान्ति-अशान्ति आदि व्यक्तिगत अनुभव हैं पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के हैं, अतएव हमें मानना चाहिए कि समाज एक है — व्यक्ति तो अनेक हैं।”

महिपाल की मृत्यु उसके मित्रों को किस कदर हिला देती है इसका प्रभावशाली वर्णन नागरजी ने किया है— “इन सबके जीवन से महिपाल क्या गया, जीवन का एक स्थायी क्रम उखड़ गया। एक स्पर्श, एक स्वर, रूप-वर्ण-गुण-अवगुण भरा एक जन-बन्धु-आत्मीय जरा-सी देर में ‘है’ से ‘था’ हो गया।”<sup>66</sup>

महिपाल की मृत्यु के साथ ही उपन्यास का समापन इस पात्र की महत्ता प्रतिपादित करता है।

**बाबा रामजी दास :** अपनी प्रगतिशील विचारधारा के विपरीत बाबा रामजीदास जैसा चमत्कारी पात्र नागरजी ने ‘बूँद और समुद्र’ में चित्रित किया है। इस चरित्र की कृति में उपस्थिति को लेकर आलोचकों ने प्रश्न उठाए हैं। आलोचकों का एक वर्ग ऐसे चरित्र की संभाव्यता स्वीकार नहीं करता। परन्तु नागरजी के जीवन-प्रसंग इस पात्र की यथार्थता प्रमाणित करते हैं। बाबा रामजी दास के सात्रिध्य का नागरजी के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वास्तविक जीवन के पात्र बाबा रामजी अपने भिन्न-भिन्न नामों से नागरजी के कई उपन्यासों में मिल जाते हैं।

अपनी दृढ़ सेवा भावना से बाबाजी का चरित्र पाठकों के हृदय में विशेष स्थान बना लेता है। उनका मानवतावादी रूप आस्था से ओत-प्रोत है। ‘बूँद और समुद्र’ के सभी प्रमुख पात्र इस पात्र से आस्था की ज्योति प्राप्त करते हैं। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व नागरजी ने ‘बूँद और समुद्र’ में इस रूप में चित्रित किया है — “लंगोटधारी वृद्ध साधु। बुढ़ापा केवल उनके दाँत-विहीन झुर्रियों पड़े चेहरे पर ही दीखता था, बाकी सारा शरीर फौलाद की तरह ठोस था। वर्ण श्याम होते हुए भी तेजोमय था। ..... उनकी हैसी बच्चे के किलकारी भरे निर्मल हास्य के समान थी, छोटी-छोटी आँखों की काली पुतलियों में अपार स्नेह चमक रहा था।”<sup>67</sup>

‘बूँद और समुद्र’ के बाबारामजी में सेवा और त्याग की भावना के अतिरिक्त दूसरों के मन की बात जान लेने की अद्भुत क्षमता है। वे पागलों का इलाज करते हैं तथा उपन्यास के नायक सज्जन को दीन-दुखियों एवम् पागलों के इलाज को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने के लिए संपत्ति दान हेतु प्रेरित करते हैं। व्यक्ति और समाज के समुचित समन्वय का मार्ग बाबाजी के इन शब्दों से स्पष्ट होता है— “हर बूँद का महत्त्व है क्योंकि वही तो अनन्त सागर है। एक बूँद भी व्यर्थ क्यों जाय? उसका सदुपयोग करो।”<sup>68</sup>

इस वास्तविक जीवन के चरित्र से लिए गए पात्र के प्रायः सभी गुण उपन्यास के पात्र के रूप में चित्रित कर दिए गए हैं। पात्र का नाम भी वही रखा गया है। लेखक ने उनके चरित्र का चित्रण इस प्रकार किया है जिससे वे कोरे आदर्शवादी ही न रहकर बिल्कुल यथार्थ जीवन से लिए गए प्रतीत होते हैं।



बाबाजी की करनी और कथनी में व्यष्टि और समष्टि का समन्वित आदर्श प्रतिफलित हुआ है। “वे उस आधुनिक संत के समान हैं जो ‘आकाश-पाताल’ के परमात्मा की बजाय घट-घट व्यापी राम के दर्शन करता हुआ सेवामार्गी बना हुआ है।”<sup>१५९</sup> ‘इस चौहत्तर वर्षीय संत में युवकोचित शक्ति, उत्साह तथा कार्यक्षमता है।’ ‘न राम के न श्याम के, हम सदा अपने काम के’ में उनका विश्वास है और ‘परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्’ ही एक मात्र कसौटी।”<sup>१६०</sup> आत्म संयम और ध्यान की एकाग्रता से वे दूसरों की बात सहज रूप से जान लेते हैं और अपने सहज व्यक्तित्व तथा प्रभावशाली वक्तव्यों से लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं। लेखक अपनी विचारधारा को बाबा रामजी के माध्यम से प्रकट करता है।

**वनकन्या :** सामाजिक क्रांति और न्याय के लिए आवाज उठानेवाली वनकन्या उपन्यास की नायिका है। वह प्रगतिशील विचारोंवाली है। पिता के अनैतिक संबंधों तथा असामाजिक आचरण का विरोध करते हुए वह गृह त्याग देती है। उसके तेजस्वी व्यक्तित्व तथा दृढ़ संकल्पशक्ति से सज्जन प्रभावित होता है और दोनों अन्ततः विवाह-सूत्र में आबद्ध होकर समाज के सम्यक् विकास में सहयोगी बनते हैं। पति-पत्नी एक दूसरे के प्रेरक और पूरक बनकर उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाते हैं। वनकन्या का साहस तथा उसकी निर्भीकता उपन्यास के पुरुष पात्रों की तुलना में प्रशंसनीय है। वास्तव में वर्तमान समय में देश को वनकन्या जैसी महिलाओं की जरूरत है जो पीड़ित-प्रताड़ित नारी के हक में लड़ाई लड़ सकें, समाज की बुराइयों से डटकर लोहा ले सकें। वनकन्या सिद्धान्तों एवम् मान्यताओं के सम्मुख अपने भ्रष्टाचारी पिता को भी सजा दिलाने में नहीं हिचकती। उसे राजनीतिक कुचक्रों से सख्त नफरत है। चुनाव के लिए अपना उल्लू सीधा करनेवाली राजनीतिक पार्टियों के प्रति उसकी कोई निष्ठा नहीं है। वनकन्या के चरित्र में नारीगत दुर्बलता कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। उसका चरित्र तपे हुए सोने की तरह है जिसकी प्रशंसा सभी करते हैं और गौरव की दृष्टि से देखते हैं। डॉ. रघुवंश ने उसे सामाजिक जीवन के जंगल से उगने वाला व्यक्ति चरित्र कहा है।<sup>१६१</sup>

सज्जन के साथ मिलकर वह समाजसेवा का व्रत लेती है। वह साम्यवादी चेतना से प्रेरित है। नारी की विवशता और समस्याओं के लिए जूझनेवाली वनकन्या को प्रेम के नाम पर धोखेबाजी नापसन्द है — “स्त्री पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक दूसरे को पाते हैं मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है और पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है। यह जिम्मेदारी का नाता है, रईसों, कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं।”<sup>१६२</sup>

इस प्रकार उपन्यासकार ने वनकन्या को एक प्रतिभाशाली, संस्कारशील तथा जागरूक नारी के रूप में चित्रित किया है जो किसी के लिए भी प्रेरणा का स्रोत हो

सकती है। उसका आरंभिक विद्रोही तेवर विवाहोपरान्त शान्त और शिथिल हो गया है। डॉ. सुदेश वत्रा के शब्दों में यह कहा जा सकता है — “पहले के अभावों और संघर्षों से भरा जीवन मध्यवर्गीय चेतना से ऊपर उठकर आकांक्षाओं की तृप्ति बन उसके जीवन को सीधी, विश्वास भरी राह की ओर मोड़ देता है, किन्तु निश्चय ही नारी के विद्रोह को उसने स्वर दिये हैं।”<sup>14</sup>

**कर्नल :** वनकन्या की ही भाँति निष्कलंक चरित्रवाला दूसरा पात्र कर्नल है। वह व्यावहारिक बुद्धिवाला, उदार, सत्यवादी चरित्रवान तथा न्यायप्रिय पात्र है। वह सहज एवं अकृत्रिम भाव से मानवीयता से उद्भूत एवं परिचालित है। वह दृढ़ होते हुए भी दुराग्रही नहीं है। वह उदार स्वभाव का है परन्तु अपव्ययी नहीं है। सत्य और न्याय के प्रति उसके मन में आग्रह है। नगीन चन्द्र जैन उर्फ कर्नल एक दूकानदार है जो व्यवहार में पूर्णतः मानववादी है। किसी के कष्ट को देखकर द्रवित होना और सहयोग के लिए आगे आना उसका स्वभाव है। वह बाधाओं से घबराता नहीं — डटकर उसका मुकाबला करता है। सज्जन और महिपाल के मध्य वह एक सेतु का काम करता है। दोनों की उलझनों और परेशानियों को अकुण्ठ भाव से सुलझाने के लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता है। वनकन्या को बहन बनाकर इस संबंध का निवाह करता है। यद्यपि वह बुद्धिवादी नहीं है परन्तु अपनी विवेक-शक्ति से सत्य-असत्य का समर्थन या विरोध करता है। उपन्यास में कर्नल का चरित्र बाबा रामजी की ही भाँति विशिष्ट है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष पात्रों की लंबी सूची उपन्यास में मिलती है। नारी पात्रों में प्रमुख हैं— कल्याणी, शीला स्विंग, चित्रा राजदान, बड़ी, नन्दो, तारा आदि। पुरुष पात्रों में उल्लेखनीय हैं— महाकवि बोर, सेठ रूप रतन, शंकर लाल, मनिया, सालिगराम, जानकीसरन, द्वारकादास, मुकुन्दीमल, राधेश्याम आदि।

इसके अतिरिक्त, ‘बूँद और समुद्र’ में पात्रों के रूप में विभिन्न पेशे के लोग आए हैं— साहित्यकार, चित्रकार, प्रकाशक, महाजन, राजा-रईस, महाजन, क्लर्क, साधु, सुपरिंटेंडेंट, गुंडे, पहलवान, नौकर, कथावाचक, राजनेता, हलवाई, पुजारी, कीर्तनिया, अध्यापक, गवर्नर, मंत्री, मरीज, पागल, गीतकार, माली, सुनार, दलाल, दरोगा, खोंचेवाले, केमिस्ट, बदर्ई, मुनीम, एक्टर उपन्यास में देखे जा सकते हैं। यही कारण है कि ‘बूँद और समुद्र’ समाज का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित कर सकने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

## शतरंज के मोहरे

**दुलारी :** ‘शतरंज के मोहरे’ कृति में आरंभ से अंत तक छाई रहने वाली दुलारी जैसे तो सामान्य साईस रुस्तम अली की पत्नी है परन्तु अपने रूप-यौवन से वह राजमहलों तक पहुँच जाती है। एक बदचलन युवती के रूप में उपन्यास में उसका



चित्रण हुआ है। उसके प्रेम-जाल में पहले उसके दो सौतेले देवर, फिर नवाब के बावची नईम और अंततः बादशाह नसीरुद्दीन तक फँस जाते हैं। वह अपने सौन्दर्य को अस्त्र समझती है तथा इसी के बल पर वह अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करना चाहती है। इसीलिए वह अपने पति के प्रति विश्वासघात कर विभिन्न पुरुषों के सम्पर्क में आती है और 'मलिकाए जमानियों' के पद पर प्रतिष्ठित होती है। इस बीच उसे कई साजिशों के मध्य गुजरना होता है। राजमहल के कुचक्रों तथा संघर्षों को झेलते हुए वह छल-कपट और स्वार्थ से घिर जाती है। अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह अपनी आश्रयदात्री बादशाह बेगम तक को नीचा दिखाती है तथा अपने साईस पति को कैदखाने में डलवा देती है। उसका चरित्र विचित्र उत्थान-पतन वाला है। एक रूपवती नारी का विकृत रूप उपन्यास में चित्रित है। परन्तु इस अनपढ़-गरीब नारी का बड़े-बड़े कूटनीतियों को पराजित करनेवाला रूप अवश्य प्रभावित करने वाला है। अपने पुत्र कैयांजाह को उत्तराधिकारी बनाने के लिए वह नसीरुद्दीन तक को मनाने में सफल होती है।

इस ऐतिहासिक उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्रों में गाजीउद्दीन हैदर तथा नसीरुद्दीन हैदर हैं जो अपनी विलासिता, कामुकता तथा चारित्रिक दुर्बलता के कारण अवध का शासन सँभालने में अक्षम सिद्ध हुए। ये दोनों ही शासक 'शतरंज के मोहरे' में एक भयभीत, एकाकी, क्रोधी और निरीह बादशाह के रूप में चित्रित हुए हैं। वास्तव में उनकी यही चारित्रिक दुर्बलता अवध के नवाबी शासन के पतन का कारण बनी और अवध पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। सुरा और सुन्दरी के वशीभूत इन शासकों की अकर्मण्यता और विवशता ही उन्हें राजमहल में चलनेवाले कुचक्रों के वशीभूत करती है तथा वे अपने साम्राज्य को अंग्रेजों के चंगुल से बचा नहीं पाते।

'शतरंज के मोहरे' में 'बूँद और समुद्र' के बाबा रामजी की भाँति दिग्विजय ब्रह्मचारी की उपस्थिति एक आदर्शवादी पात्र के रूप में पाठक को प्रभावित करती है। वे मानवता के सबसे बड़े समर्थक हैं। अन्याय, अत्याचार तथा जातिगत वैषम्य के खिलाफ संघर्ष करने वाले ब्रह्मचारीजी की पवित्रता, सरलता, सादगी, सदाचार तथा आस्थावादिता सब को प्रेरणा देती है।

इन चरित्रों के अतिरिक्त नईम, वजीर आगामीर, कुद्सिया बेगम, कुलसुम आदि पात्र भी अपने चरित्र के द्वारा कथा को गतिशील करते हैं। 'बूँद और समुद्र' की भाँति इस कृति में भी पात्रों की संख्या बहुत अधिक है।

## सुहाग के नूपुर

**कोवलन :** कावेरी पट्टणम् के सर्वाधिक संपन्न सेठ मासात्तुवान का इकलौता पुत्र कोवलन 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास का नायक है। सौन्दर्य एवं सद्बुद्धि के अतिरिक्त

वह कुलीन संस्कारों से युक्त है। अपने पिता के विस्तृत व्यापार के साथ-साथ सात पीढ़ियों की संचित सम्पत्ति का वह अकेला उत्तराधिकारी है। वह व्यापारिक गुण संपन्न, शीलवान तथा धैर्यवान युवक है। कोवलन के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर कावेरी पट्टणम् के दूसरे महाश्रेष्ठ मानाइहन अपनी एकमात्र पुत्री कन्नगी के साथ उसका विवाह निश्चित करते हैं। इसी बीच कोवलन का परिचय राज्य की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी माधवी से होता है। इस सुन्दरी नगरवधू के प्रति उसकी आरम्भिक धारणा थी— “चतुर पुरुष हाट में हिरती-फिरती धन-लक्ष्मी और यौवन-लक्ष्मी को महत्त्व नहीं दिया करते, वे उस लक्ष्मी का ही वरण करते हैं जो उनके घर में स्थायी रूप से आती है।”<sup>54</sup> परन्तु गृहलक्ष्मी और नगरवधू की सीमाओं की समुचित जानकारी रखनेवाला कोवलन अपने इस कथन के ठीक विपरीत आचरण करता है। वह माधवी के रूप-यौवन पर आकृष्ट होकर अंततः उसके प्रेम-बंधन में इस कदर बँधता जाता है कि उससे छूट पाना उसके लिए असम्भव हो जाता है। वह माधवी के इशारों पर अपनी गृहलक्ष्मी को कई बार अपमानित भी करता है। प्रथम रात्रि को ही वह पत्नी कन्नगी को माधवी के भवन में ले जाता है तथा माधवी के सामने दासीवत् आचरण का आदेश देता है। वह माधवी रूपी दलदल में इस प्रकार फँसता चला जाता है जहाँ से उसका निकल पाना असंभव हो जाता है। बीच में कई मौके ऐसे आए जब वह माधवी द्वारा कन्नगी के अपमान को सहन न कर सका, प्रतिक्रियास्वरूप माधवी के प्रति उसने कड़े रुख का प्रदर्शन किया परन्तु उसका यह विवेक उसकी प्रणयिनी नर्तकी माधवी की कुट्टनीलीला के आगे विवश हो गया। माधवी को भुलाकर कन्नगी के सान्निध्य में सच्ची शांति पाने के उसके सारे प्रयास विफल हुए। कोवलन की विवशता का उपयोग माधवी 'सुहाग के नूपुर' पाने के लिए करती है परन्तु कन्नगी की दृढ़ता के कारण असफल होती है। शराब के नशे में वह पत्नी कन्नगी पर तरह-तरह के अत्याचार करता है और अंततः उसे घर से भी निकाल देता है। यह उसके चरित्र का दुर्बल पक्ष है। वह द्वन्द्वग्रस्त होकर पत्नी और प्रेयसी के बीच झूलता रहता है। उसकी हृदयगत कमजोरी उसे ढुलमुल बनाती है परन्तु उसे अपने इस पतन का पूरा आभास है। माधवी के साथ पंडित के सामने भाँवरे फेरकर या माधवी की पुत्री मणिमेखला का पिता होकर भी वह जानता है कि मेखला के विवाह का प्रस्ताव राजरत्नम् चेडियार के यहाँ करना उचित नहीं है। वह कहता है— “मैं पतित तो अवश्य हो गया हूँ पर मेरी अन्तश्चेतना अभी मरी नहीं। मैं जग-हँसाई तो भोग रहा हूँ परन्तु यह कलंक न सह पाऊँगा कि मासात्तुवान के वंशधर ने ऐसी ओछी बात मुख से निकाली जो असंभव है और यदि संभव हो भी तो समाज के लिए घातक है..... इससे कुलाचार भंग हो जायेंगे।”<sup>55</sup>

माधवी के प्रेम को वह ठुकरा नहीं पाता और कन्नगी को पूरी तरह अपना नहीं



पाता। उसकी यही निरीहता उसके चरित्र को स्वाभाविकता से युक्त कर देती है। कोवलन का यह चरित्र मानव सुलभ कमजोरियों से युक्त होने के कारण अत्यंत सजीव बन पड़ा है।

**कन्नगी :** आदर्श भारतीय पत्नी ; गृहस्थ नारी ; निष्ठा तथा समर्पण की प्रतिमूर्ति; धीर-गंभीर-सहिष्णु ; कुलवधू की मर्यादा, प्रतिष्ठा और सौभाग्य का दायित्व वहन करनेवाली; कन्नगी 'सुहाग के नूपुर' के प्रेम-त्रिकोण का एक कोण अर्थात् पत्नी है। उसे कुलवधू का सम्मान तो मिला है परन्तु वह पति के अत्याचारों से पीड़ित-प्रताड़ित है। उसके प्रति कोवलन की कुदृष्टि का कारण माधवी नाम की वेश्या है जिसके सौन्दर्य पर उसका पति पूरी तरह मोहित है। तभी तो गृहवधू के तमाम गुणों से युक्त कन्नगी को प्रथम रात्रि में ही पति के तिरस्कार सूचक शब्दों को सुनना पड़ा था— "पत्नी के रूप में पुरुष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है समझीं? तुम अपनी सुन्दरता व सुशीलता के गुमान में न रहना समझीं! तुम्हारी सुन्दरता मेरी दृष्टि में कौड़ी मोल की भी नहीं ..... समझीं कि नहीं?"<sup>१६६</sup>

कन्नगी के दुर्भाग्य का अंत यहीं नहीं हुआ— पति कोवलन द्वारा प्रथम रात्रि को उसे माधवी के सामने ले जाया गया जहाँ उसे वेश्या की दासी के रूप में संबोधित किया गया। इस प्रकार विवाह के बाद से लगातार सोलह-सत्रह वर्षों तक कन्नगी को भयंकर अपमान का जीवन व्यतीत करना पड़ा। इस अपमान की पराकाष्ठा तब हुई जब कन्नगी को अपनी ही हवेली से मार-मार कर निकाल दिया गया और वहाँ वेश्या माधवी टिका दी गई। सुहाग के नूपुरों के लिए धर्मशाला में रह रही कन्नगी को शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया परन्तु कन्नगी समर्पण की प्रतिमूर्ति बनी सब कुछ सहन करती रही।

कन्नगी के धैर्य और साहस का अनूठा चित्रण उपन्यास में किया गया है। एक आदर्श भारतीय नारी की भाँति पति के अपमान और अत्याचार को बिना विरोध किए मूक भाव से सहना ही मानों उसकी नियति है। कन्नगी के मन में किसी के प्रति कोई शिकायत नहीं है। अपने पति की प्रेमिका माधवी के प्रति भी उसके मन में कोई निन्दा का भाव नहीं है। अपने श्वसुर कुल की मर्यादा तथा पति के सम्मान की रक्षा के लिए वह अपने पिता तक से झूठ बोल देती है— यह झूठ उसके उदात्त संस्कारों की सूचना देता है। वह अपनी बुद्धि एवं कुशलता से गृहस्थी का संचालन करने में समर्थ है। पति के दुराचरण से विचलित हुए बिना वह उसका यथेष्ट सम्मान करती रहती है। उसकी ये गतिविधियाँ उसके व्यक्तित्व को तेजस्विता प्रदान करती हैं।

हवेली से निकाल दिए जाने पर वह श्वसुर द्वारा बनवाई हुई धर्मशाले में साधन-हीन अवस्था में रहना पसन्द करती है परन्तु अपने पिता के घर जाना या उनकी संपत्ति स्वीकार करना पसन्द नहीं करती। अपनी निर्धनता के कारण दिए में तेल के अभाव

तक को सह लेती है पर पिता की अपार संपत्ति को न लेकर राजकोष में दे देने की सलाह देती है। उसका यह त्याग उसके व्यक्तित्व का सुदृढ़ एवं स्वाभिमानी पक्ष प्रस्तुत करता है। उसकी चिन्तन धारा स्पष्ट एवं प्रोढ़ है। माधवी द्वारा पाँवों में घुँघरू बाँधने के आग्रह को वह यह कहकर निरुत्तर कर देती है — “बहन मेरे देवतुल्य पतिकुल ने सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बाँध दिया है। ये घुँघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पाएँगे।”<sup>100</sup> अपने घुँघरूओं की शक्ति से कोवलन को रिझा लेने के माधवी के अहंकार को कन्नगी अपने शान्त किन्तु दृढ़ स्वर से पराजित कर देती है— “मुझे तुम्हारे घुँघरूओं से ईर्ष्या नहीं बहन। मेरी दृष्टि में उनका कोई मूल्य नहीं।”<sup>101</sup>

नूपुरों की प्राप्ति की कोवलन की इच्छा को वह फलीभूत नहीं होने देती क्योंकि वह जानती थी कि उसका पति इन नूपुरों को एक वेश्या को देकर कुल-मर्यादा को नष्ट कर देगा। परन्तु जब कोवलन माधवी के विलासी बंधन से मुक्त होकर दीन-हीन अवस्था में उससे मिलता है तब वही कन्नगी अपने नूपुरों को उतारकर पति को दे देती है ताकि वह उन्हें बेचकर कोई नया व्यापार आरम्भ कर सके। यह घटना उसकी दृढ़ता और उदारता दोनों का संकेत देती है।

समस्त गुणों से युक्त कन्नगी का निष्कलंक चरित्र तथा तेजस्वी व्यक्तित्व पाठकों को प्रभावित करता है। इसी तेजस्विता का कायल कोवलन भी है— “तुम्हारी निष्ठा, तुम्हारे गुण बरबस मन पर प्रभाव डालते हैं। मेरे कुल की सारी संपत्ति से भी अधिक तुम्हारे गुण मूल्यवान हैं। आश्चर्य है कन्नगी ! मेरे जैसा दर्पयुक्त पुरुष तुम्हारा आदर करता है, तुम्हें अपने से बड़ा मानता है और इसलिए एक जगह तुमसे घृणा भी करता है।”<sup>102</sup> उपन्यास के समापन के करीब कोवलन का कन्नगी से क्षमा माँगना सती कन्नगी की महत्ता को प्रतिष्ठित कर देता है — “तुम्हारे चरण छू लूँ सती, आज उच्छ्रण न हो सकूँगा।”<sup>103</sup> इस प्रकार कन्नगी के माध्यम से उपन्यासकार ने गृहलक्ष्मी की गरिमा तो व्यक्त की है परन्तु पुरुष वर्ग के स्वार्थ और सामाजिक व्यवस्था की असंगतियाँ भी उजागर की हैं।

**माधवी :** ‘सुहाग के नूपुर’ उपन्यास के प्रेम-त्रिकोण की सर्वाधिक सजीव एवं गतिशील व्यक्तित्व वाली नारी माधवी है। अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लेखक ने माधवी के माध्यम से एक ऐसी नारी का चित्रण किया है जो पत्नी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करने को इच्छुक है परन्तु समाज ने उसे वेश्या की नियति दी है। माधवी की समस्त गतिविधियों को उसकी इसी दुःखद स्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

अपने प्रेम से कोवलन को वशीभूत करके वह अपनी मुराद पूरी करना चाहती है परन्तु उसकी ओर से भी अपमान और लांछना पाकर वह प्रतिहिंसापूर्ण हो उठती है।



गृहलक्ष्मी के सुहाग के नूपुरों की प्राप्ति के लिए वह कुछ भी करने को प्रस्तुत हो जाती है। उसे इस बात से पीड़ा होती है कि पुरुष प्रधान समाज उसे राज-नर्तकी का सम्मान देकर मनोरंजन करना तो जानता है परन्तु गृहलक्ष्मी का पद देने को राजी नहीं होता। बदले की भावना से ग्रस्त होकर वह कोवलन को अपने रूप-जाल में बुरी तरह फँसा लेती है। इस योजना में वह कुछ हद तक सफल भी होती है और कोवलन को अपने इशारों पर नचाकर उसकी व्याहता बन जाती है। पंडित से फेरे करवाकर, एक पुत्री मणिमेखला की माँ बनकर तथा हवेली से गृहलक्ष्मी कन्नगी को हटाकर स्वयं निवास करने लगती है। इतनी सफलता पाकर अब उसका उद्देश्य कोषागार की चाबी प्राप्त करना तथा सुहाग के नूपुर धारण करना रह जाता है जिसके लिए कोवलन के माध्यम से कन्नगी को बड़ी प्रताड़ना मिलती है। नूपुर प्राप्त करने की माधवी की सारी चेष्टाएँ पूरे समाज तथा नगर को हतप्रभ कर देती हैं। यहाँ तक कि कावेरी पट्टणम् का वेश्या समाज तथा उसकी नृत्य गुरु चेलम्मा तक उसके अहंकार से दहल जाते हैं। माधवी का दर्प इस कदर बढ़ जाता है कि नूपुरों को प्राप्त न कर पाने की व्यथा उसे कोवलन के प्रति विश्वासघात करने के लिए प्रेरित करती है। वह एक राजपुरुष की प्रेमिका बनकर कोवलन से बदला लेना चाहती है। वास्तव में माधवी का यह प्रयास उसकी नूपुरों को न पा सकने की तीव्र प्रतिक्रिया है। वह अपने प्रेमी कोवलन को मनमाने ढंग से संचालित करने में सक्षम होती है परन्तु एक सती नारी की निष्ठा के आगे घुटने टेक देती है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि माधवी का चरित्र अत्यन्त सजीव है। उसकी सारी क्रियायें-प्रतिक्रियायें अपने विकृत एवं हिंसक रूप में भी इतनी स्वाभाविक हैं कि उपन्यासकार की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। अपने इस पात्र के माध्यम से नागरजी ने उसकी आकांक्षा और प्रतिहिंसा को सहज रूप से उभारा है, उसके शोषण के सामाजिक कारणों को बिना किसी संकोच के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. पुष्पा बंसल के शब्दों में कह सकते हैं — “नारी रूप में जन्म लेकर, नारी का तन-मन आत्मा पाकर समाज में नारीत्व के अधिकारों के लिए दृढ़तापूर्वक लड़ मरने वाली, उस युद्ध में आपादमस्तक घायल हो जाने वाली नारी का नाम है माधवी।”<sup>१४</sup>

माधवी का हठी रूप उपन्यास के कई प्रसंगों से सिद्ध होता है। अपने बुरे दिनों में वह अपनी और पुत्री की रक्षा के लिए एक राजपुरुष का आश्रय ग्रहण करती है तथा इसी बहाने कोवलन को आहत करने की चेष्टा करती है। बदले में वह राजपुरुष माधवी के एक पुरुष व्रत को निर्ममता से तोड़ता है और माधवी अपने ही हठ द्वारा पराजित होती है। नागरजी ने उसकी पराजय इन शब्दों में व्यक्त की है — “यह टूटा तेरे दर्प का दहकता महल। ओ सुहाग के नूपुरों की साध मर ! मर ! माधवी को चक्कर आ गया। हठ से फिरे सात फेरे मन के धधकते यज्ञकुंड के चारों ओर चकरधित्री से नाच

उठे। कुंड की धधकती ज्वाला भयभीत सी ठिठुर गई। तभी कड़ककर बिजली टूटी। उसे लगा, वह उसका शरीर बेध गई।”<sup>२२</sup> पगली के रूप में उपन्यास के अन्तिम पृष्ठ पर माधवी ने समस्त नारी जाति की पीड़ा अभिव्यक्त कर दी है— “पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग - नारी जाति - पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। ..... नारी के रूप में न्याय रो रहा है महाकवि ! उसके आँसुओं में अग्नि-प्रलय भी समाई है और जल-प्रलय भी।”<sup>२३</sup>

‘सुहाग के नूपुर’ के अन्य प्रमुख पात्र हैं— चेलम्मा, पेरियनायकी, पान्सा, मासात्तुवान तथा मानाइहन। चेलम्मा माधवी की नृत्य गुरु है तथा पेरियनायकी माधवी की माँ और अनुभववी वेश्या है। पान्सा के प्रति उसका एकनिष्ठ प्रेम है। इन गौण पात्रों में चेलम्मा पाठकों को प्रभावित करती है।

## अमृत और विष

अरविन्द शंकर : ‘अमृत और विष’ के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र अरविन्द शंकर हैं। नागरजी ने अपने उपन्यासों में जिन विशिष्ट चरित्रों का सृजन किया है उनमें अरविन्द शंकर अन्यतम हैं।

उपन्यास में अरविन्द शंकर का चरित्र दो रूपों में चित्रित हुआ है - एक रूप उनके अपने पारिवारिक जीवन से संबद्ध है तो दूसरा उनके उपन्यासकार का रूप है। इन रूपों में मध्यवर्गीय लेखक की विवशता व्यक्त हुई है। एक दुःखी और असन्तुष्ट परिवार के मुखिया के रूप में अरविन्द शंकर की कठिनाइयों के साथ उनकी आदर्शवादिता, ईमानदारी तथा प्रगतिशीलता की झलक कृति द्वारा प्राप्त होती है। परन्तु अपने ऊँचे आदर्शों के बदले उसे आर्थिक अभाव के साथ जीवन जगत की अनेक परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। उसे इस बात का आन्तरिक कष्ट है कि उसका भरा-पूरा परिवार उसके लिए सुख-संतोष का कारण नहीं है। अपने पुत्र-पुत्रियों के कारण उसके मन में बड़ी पीड़ा है। अपनी कुण्ठा और अनास्था के बीच उसे लगता है कि उसका “सारा श्रम और उत्साह निरर्थक और बेदम” हो गया है और उसकी इस कुण्ठा से मुक्ति का एकमात्र उपाय है ‘आत्महत्या’। इस घुटन, उदासी, मुर्दनी और आत्मविश्वास की कमी के बीच अरविन्द शंकर हेमिग्वे के बृद्धे मछरे से प्रेरणा लेता है और कुंठा से दिग्भ्रमित न होकर नवीन स्फूर्ति के साथ कर्म करने को प्रवृत्त होता है। वह कहता है— “जड़-चेतनमय, विष-अमृतमय, अंधकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा कर्म करना ही होगा, यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस



अंधकार में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।"१०५ इस प्रकार अरविन्द शंकर के माध्यम से नागरजी ने विषम परिस्थितियों से जूझने वाले ऐसे लेखक का चित्रण किया है जिसमें निराशा, विक्षोभ तथा अनास्था से गुजरने के बाद भी इन सबका मुकाबला करने और उनसे उबरने की क्षमता है। यही क्षमता उसकी आस्था और लेखकीय ईमानदारी को प्रमाणित करती है।

अरविन्द शंकर के चरित्र का विचारक और चिंतन-पक्ष प्रबल है। उसके द्वारा प्रकट विचारों से मानवता, देश-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व, सांप्रदायिक एकता तथा शान्ति के समर्थन के साथ आज की असंतुलित सामाजिक व्यवस्था की कटु आलोचना भी व्यक्त होती है। शोषित वर्ग के प्रति उसकी सहानुभूति तथा पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति उसका क्षोभ उसकी प्रगतिशीलता का परिचायक है।

अरविन्द शंकर का चरित्र इस रूप में प्रस्तुत किया गया है जिससे कई स्थलों पर वह उपन्यासकार अमृतलाल नागर का भ्रम उत्पन्न करता है। वास्तव में अरविन्द शंकर का लेखकीय-संघर्ष नागरजी का आत्मसंघर्ष ही है, उसकी आस्था नागरजी की आस्था है। यही कारण है कि 'अमृत और विष' में अरविन्द शंकर का चरित्र अत्यंत जीवन्त लगता है।

अरविन्द शंकर के अतिरिक्त 'अमृत और विष' में नायक रमेश, नायिका रानी, डॉ. आत्माराम तथा आनंद मोहन खन्ना का चरित्र प्रभावशाली बन पड़ा है। रदू सिंह और पुत्ती गुरु भी अपनी गतिविधियों के कारण आकर्षक चरित्र के रूप में उपस्थित हैं। नायिका रानी के सौम्य तथा प्रेरक व्यक्तित्व का सृजन जिस परिवेश तथा परिस्थिति में किया गया है, वह उसके चारित्रिक उत्कर्ष का सूचक है। परन्तु अरविन्द शंकर के बाद जो चरित्र सर्वाधिक सजीव प्रतीत होता है, वह चरित्र लच्छू का है।

**लच्छू :** लक्ष्मीनारायण खन्ना उर्फ लच्छू उपन्यास का सर्वाधिक क्रियाशील एवं जीवन्त पात्र है। उसके माध्यम से लेखक ने एक निम्नमध्यवर्गीय युवक को दिशाहीनता तथा कुंठा अभिव्यक्त की है। उपन्यास के आरम्भ में रमेश का मित्र लच्छू रमेश की ही भाँति कर्मठ, विद्रोही तथा उत्साही पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। परिवार की विषम आर्थिक परिस्थिति एवं कलह के कारण वह चिन्तित रहता है। सामाजिक वैषम्य एवं रूढ़िवादिता के प्रति उसके मन में गहरा क्षोभ है। अपने मित्र रमेश का वह अनन्य सहयोगी है। रमेश के प्रयास से ही उसे सारसलेक में नौकरी मिलती है जहाँ उसके चरित्र के विविध रूप हमारे सामने उपस्थित होते हैं। कभी क्रान्तिकारी के रूप में, कभी वासनाओं के आकर्षण में फँसे युवक के रूप में, कभी समाजवादी रूप में, तो कभी अवसरवादी लच्छू की भूमिका में वह हमारे सामने उपस्थित होता है। उपन्यास के समाप्त होते-होते उसका विध्वंसक और पतनोन्मुखी रूप भी दिखाई पड़ता है। लच्छू

जैसे युवक भारत में सर्वत्र मिलते हैं। यद्यपि वह कायर, प्रतिहिंसक, अवसरवादी और दुर्बल मनोवृत्ति वाला है फिर भी अपने चारित्रिक विकास हेतु वह सजग है। अपने विकास के लिए वह कुछ भी करने को तत्पर रहता है। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति उसका आक्रोश अभावग्रस्त युवक की सच्ची पीड़ा है। कुंठित, बेरोजगार तथा अभाव की पीड़ा भोगने वाले नौजवान लच्छू की उन्नति की कामना उसे अविवेकी, क्षुद्र और स्वार्थान्ध बना देती है। उसकी गतिविधियाँ उसे अपराधी बना देती हैं। परन्तु उसे अपराधी नहीं विकृत विद्रोही कहना अधिक उपयुक्त होगा। तभी तो डॉ. आत्माराम उसे रोते देखकर सांत्वना देते हुए कहते हैं — “लड़ो, विद्रोह करो। व्यूरोक्रेसी की मशीन से और समाज की अंध रूढ़ियों से लड़ना मर्दा का, सूरमाओं का काम होता है। समझे? मशीन गुस्से में आकर नहीं तोड़नी चाहिए। उस पर कब्जा करना चाहिए, उसे अपनी तरह से चलाना चाहिए।”<sup>१०४</sup> लच्छू दिशाहीन, साधनहीन और विवेकहीन युवक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यही स्थिति युवकों को अराजकता की ओर ले जाती है। लच्छू का अन्तर्द्वन्द्व तथा चारित्रिक उत्थान-पतन अपनी मार्मिकता के कारण रमेश की सक्रियता को पीछे छोड़ देता है। ‘बूँद और समुद्र’ के महिपाल की भाँति उसका भटकाव पाठकों के मन में सहानुभूति भर देता है। नागरजी ने तरुण वर्ग से संबंधित जिस उपन्यास की रचना की है उसका वास्तविक नायक लच्छू ही हो सकता है, दूध का धोया रमेश नहीं।

लच्छू के चरित्र का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि उसकी दुर्बलताओं का दोषी वह नहीं बल्कि वे सामाजिक परिस्थितियाँ हैं जो एक शिक्षित, उत्साही तथा परिश्रमी व्यक्ति को गलत रास्ते पर ले जाकर निष्क्रिय बना देती हैं। उपन्यास के अंतिम अंश में लच्छू का पश्चात्ताप पाठकों के मन में उसके प्रति आत्मीयता उत्पन्न कर देता है।

**रमेश :** अरविन्द शंकर द्वारा लिखित उपन्यास का नायक रमेश मध्यवर्गीय रूढ़िवादी परिवार का सदस्य है। अपने प्रगतिशील विचारों के साथ कर्मठता, उत्साह तथा संघर्षशील चेतना उसे युवा टोली का अगुवा बना देती है। उसकी गतिविधियों से स्पष्ट होता है कि वह पिता के प्रति यथेष्ट सम्मान रखते हुए भी उनके धार्मिक आडम्बरों का विरोधी है, वह रूढ़िवादी परंपराओं को समाप्त कर नवीन संस्कारों के विकास का समर्थक है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसकी निर्भीकता और सक्रियता उसके गतिशील व्यक्तित्व का परिचय देती है। बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपत्ति का साहसपूर्ण मुकाबला करके तथा बारादरी के मामले में अपने नौजवान साथियों के साथ अनशन करके वह अपनी नेतृत्व क्षमता को प्रमाणित करता है। ‘इंडिपेंडेंट’ पत्र के लिए कार्य करते हुए वह अपनी लेखन क्षमता को भी सिद्ध करता है। एक बाल-विधवा रानी के साथ प्रेम-विवाह करके वह सामाजिक रूढ़ियों को ध्वस्त



करता है। अपनी पत्नी रानी के समुचित विकास हेतु वह सचेष्ट रहता है। रमेश के चरित्र की ये भूमिकायें उसके स्वस्थ पक्ष को उजागर करती हैं। डॉ. सत्येन्द्र ने रमेश के विषय में लिखा है— “वह उस ज्योति का वाहक है, जो अपने प्रकाश में अपना मार्ग बनाता है। आँधियों, झपेटों, प्रलोभनों से वह ज्योति लहराती है, फरफराती है पर अपनी धुरी से च्युत नहीं होती। उसकी अविकसित मेधा अनेकों तूफानी भूमियों, फिसलपट्टियों, घनावृत्तों, कड़कड़ाहटों, विद्युत्पातों में होकर यात्रा करती है। वह प्रतिपल, प्रतिक्षण संघर्षरत है, कर्मरत है, कर्मठ और कर्मनिष्ठ है। वह जैसे कण-कण पर चलकर मानव के निर्माण को पल-पल में जाग्रत करता जाता हो।”<sup>७६</sup>

## सात घूँघट वाला मुखड़ा

**बेगम समरू :** ‘सात घूँघट वाला मुखड़ा’ उपन्यास में बेगम समरू का चरित्र ही प्रमुख रूप से चित्रित है। इस नायिका-प्रधान कृति की नायिका असाधारण सुन्दरी मुन्नी है जो अपने रूप तथा यौवन के कारण नवाब समरू को प्रभावित करके उसकी बेगम का स्थान प्राप्त कर लेती है। औरतें बेचने वाले व्यापारी वशीर खाँ द्वारा नवाब समरू के हाथों दस हजार रुपयों में बेची गई मुन्नी उसकी पत्नी के रूप में ही संतुष्ट नहीं रहती, अपने प्रेमियों को बदलती रहती है। उसके इस चरित्र के परिचायक उसके विभिन्न नाम हैं— मुन्नी, दिलाराम, बेगम समरू, जुआना, टामस-प्रिया, लवसूल-प्रिया आदि। उसकी कामुकता तथा अनैतिकता का चित्रण उपन्यास में किया गया है।

अपने प्रेमी वशीर खाँ द्वारा दिल तोड़े जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप वह कठोर बनकर सियासत के कठिन खेल खेलती है। नवाब समरू जैसे खूँखार भेड़िये को अपना पालतू कुत्ता बना लेती है। अपने हुस्न और रूप-जाल में वह सेनापति टामस तथा लवसूल को भी फँसाने में संकोच नहीं करती। ‘मलिकाए-हिन्द’ के ख्वाब को पूरा करने के लिए दिल्ली बादशाह को भी वशीभूत करती है और ‘जेबुत्रिसा’ एवं ‘दुखरे खास’ की उपाधियाँ से विभूषित होती है। उसका जीवन विविध प्रकार के घात-प्रतिघातों से भरा हुआ है। उसका वासना-पूरित व्यक्तित्व ‘शतरंज के मोहरे’ की दुलारी की याद दिलाता है। उसका आत्म-विश्लेषण जीवन के उतार-चढ़ाव की सूचना देनेवाला है— “परिस्थितियों और भावनाओं के घूँघट-दर-घूँघट उठाते-उठाते जुआना के सम्मुख यह सत्य स्पष्ट हो गया था कि मनुष्य की इच्छा केवल एक ही होती है, उसे दोहरे-तिहरे अनेक रूप देने की क्रिया गलत नहीं, लेकिन उस अनेकता की एकरूपता अनिवार्य शर्त है। प्रेम, विलास और राजनीतिक महत्वाकांक्षा दो अलग-अलग इच्छाएँ हैं, इन्हें एक में बौध्दने का प्रयत्न निष्फल होना चाहिए था। जुआना अब एक की होकर रहेगी, एक ही से लौ लगाएगी और वह ‘एक’ अब खुदा का बेटा जीज़स क्राइस्ट ही होगा। जीज़स।”<sup>७७</sup>

## एकदा नैमिषारण्ये

**सोमाहुति :** 'एकदा नैमिषारण्ये' के भागवत सोमाहुति संयमी, विद्वान, दूर-द्रष्टा तथा गंभीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। अपने असाधारण व्यक्तित्व तथा ज्ञान-गरिमा के कारण वे सबके सम्मान्य हैं। सांस्कृतिक आंदोलन के मुख्य अभियन्ता भागवत सोमाहुति व्यास का चित्रण नागरजी ने यथोचित गंभीरता के साथ किया है। क्रांतियाँ भागवत की अनुगामिनी हैं। उनमें पांडित्य और पराक्रम का समन्वय है। उन्हें कई मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ता है। महाभारत संहिता के एक लाख श्लोकों की रक्षा साधारण बात नहीं थी और न ही धार्मिक विकृतियों को हटाकर वैष्णवता की पुनर्प्रतिष्ठा ही सहज कार्य था; परन्तु अपने संतुलित चिन्तन, उदार धार्मिकता और समन्वित राष्ट्रीय दृष्टि से भागवत अपने अभियान में सफल होते हैं। डॉ. विवेकी राय के अनुसार— "कथाकार ने आदि से अंत तक उन्हें नायक के रूप में निखारा है। राष्ट्र-नेता के रूप में उनमें कृष्ण, वेदव्यास और वैशम्पायन जैसे राष्ट्र को स्वस्थ रूप प्रदान करने के सपने छाये हुए चित्रित हुए हैं।"<sup>१०८</sup>

उपन्यास में अयोध्या-मथुरा विजय प्रसंग से लेकर विदेशी विद्वानों, संतों, सेठों और राजपुरुषों को आकर्षित करने और अपने उद्देश्य की प्राप्ति में उपयोग करने आदि में सभी जगह भागवत की प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। प्रजा की रक्षा के प्रसंग में भागवत का चित्रण करते हुए नागरजी ने उनके मन के कोमल अंश को ही प्रस्तुत करना चाहा है। भागवत व्यास, नारद या गणपति जैसे पौराणिक पात्रों को अति-मानवीय न बनाकर मानव के रूप में चित्रित करना नागरजी की लेखनी की अपनी विशेषता है।

भागवत को उपन्यास में अच्छे प्रेमी और संयमी पति के रूप में चित्रित किया गया है। अपनी पत्नी इज्या के प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम है तभी तो इज्या के देहान्त से उनमें वैराग्य आता है परन्तु वे शीघ्र ही कर्म के प्रति सजग होते हैं और इज्या के साथ देखे गए स्वप्न को कार्यान्वित करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। वे गृहस्थ होकर भी साधक संयमी और तपस्वी हैं। वे समन्वयवादी हैं और अनेकता में एकता के समर्थक हैं। वे राष्ट्रनेता के रूप में उपन्यास में चित्रित हुए हैं। उनका दृढ़, आस्थावान तथा कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व पाठकों पर प्रभाव छोड़ता है।

**नारद :** 'एकदा नैमिषारण्ये' कृति का सर्वाधिक मानवीय चरित्र नारद का है। नारद की जो पारंपरिक छवि अभी तक हमारे मन में अंकित रही है, इस कृति में वह छवि विखंडित हुई है। नारद के संबंध में प्रचलित 'मिथ' टूटा है। उनके चरित्र से स्पष्ट होता है कि यह किसी पौराणिक ऋषि-विशेष का नाम नहीं तपस्वी ऋषियों की एक जातीय परंपरा का नाम है। इसी परंपरा के संभवतः अंतिम ऐतिहासिक नारद ही सोमाहुति के साथ भारत को एकता के सूत्र में आवद्ध करने हेतु संकल्पबद्ध होते हैं।



कुशल वीणावादक, घुमक्कड़ और विवादी व्यक्तित्व उनकी पूरी परंपरा का प्रमुख गुण है। इस उपन्यास के नारद में इन गुणों के अतिरिक्त तामस वृत्तियों का प्राधान्य है। अपने संन्यासी वेध में भी वे चैलियों के फेर में रहते हैं। युवा भिक्षुणियाँ उनकी कमजोरी हैं। कृति में नारद का चरित्र जटिल बना दिया गया है। वे अंत में इस बात पर पश्चात्ताप करते हैं कि अपने पाप से उन्होंने शताब्दियों पुरानी नारद परंपरा का सत्यानाश कर दिया।

उपन्यास के नारद कण्व वंश के देवव्रत हैं जो विमाता के अत्याचार से गृह त्याग कर भार्गव के शिष्य बने और जिन्होंने एक वयोवृद्ध नारद की सेवा करने के बाद नारद गद्दी के उत्तराधिकारी बनकर 'नारद' की उपाधि प्राप्त की।

हिन्दी साहित्य कोश में नारद को ब्रह्मा का पुत्र देवर्षि नारद कहा गया है। कोश में नारद का प्रिय वाद्य वीणा बताया गया है और हरि का गुणगान करते हुए विचरण करने वाले ऋषि के रूप में उनका परिचय दिया गया है। संगीत, भजन, कलह तथा विद्वत्ता के संदर्भ में भी उनका पर्याप्त उल्लेख मिलता है। नागरजी ने 'एकदा नैमिषारण्ये' में उनका वर्णन इस रूप में किया है— "वेद, उपनिषद, पूर्व उत्तर मीमांसा, स्मृति, छंद, ज्योतिष, व्याकरण आदि अनेक शास्त्रों के पंडित; इतिहास-पुराणों के व्याख्याता, राजनीति और व्यवहार-शास्त्र मर्मज्ञ महर्षि नारदजी संगीत और नृत्य के महापंडित और निपुण कलाकार थे।"<sup>०९</sup>

नागरजी ने नारद के परम्परागत चरित्र में श्रेष्ठ भक्त और तपस्वी के गुणों के साथ मानव-सुलभ कमजोरियों का समावेश कर नारद को अलौकिक होने से बचा लिया है। इन नारद जी की गृहस्थ रूप में परिणति चरित्र को आकर्षक बनाती है। उनके पास एक हजार बैल हैं और वे ऐसे गृहस्थ बनते हैं कि उनके ताबड़तोड़ आठ संतानें होती हैं। उनकी कई गतिविधियाँ तथा हँसोड़ प्रवृत्ति मनोरंजन की सृष्टि करती है। यद्यपि, उनके अस्थिर चित्त का परिचय देने वाले कई प्रसंग कृति में आए हैं परन्तु नायक सोमाहुति के स्वप्न को साकार करने में उनका प्रशंसनीय योगदान उन्हें उपनायक के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

इस पात्र-बहुल उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण चरित्र हैं — भारतचन्द्र नाग, प्रज्ञा, सरयू वाशिष्ठी, इज्या, चन्द्रगुप्त तथा भृगुवत्स। गणपति नाग भवनाग नागेश्वर तथा प्रचेता व्यास भी अपनी उपस्थिति से कथा को गति प्रदान करते हैं।

## मानस का हंस

तुलसी : 'मानस का हंस' के मुख्य पात्र तुलसीदास हैं। इस जीवनीपरक उपन्यास की रचना का मुख्य उद्देश्य गोस्वामी तुलसीदास के जीवन को मानवीय संदर्भों

के साथ प्रस्तुत करना है। अतः कृति में उनका चरित्र इसी रूप में अंकित है। तुलसी केवल महाकवि ही नहीं युग-पुरुष के रूप में भी समादृत रहे हैं। इस युगान्तरकारी कवि के लोकोत्तर चरित्र को अपनी समग्रता के साथ उजागर करना लेखक का अभीष्ट रहा है। तुलसी के रूप में उपन्यासकार ने ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण किया है जो मानवीय कमजोरियों से युक्त है परन्तु परिस्थितियों से संघर्ष कर उन पर विजय पाने की क्षमता से भी सम्पन्न है।

तुलसी का आदर्श चरित्र निर्मित करने के लिए नागरजी ने क्रमिक चरित्र विकास की मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है और तुलसी के जीवन को समस्त कठिनाइयों का सफल चित्रण किया है। जीवन-जगत की कठिन चुनौतियों से जूझते हुए, अंतःकरण से न टूटते हुए तुलसी अंततः अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं और अपनी जिजीविषा का परिचय देते हैं। राम की प्राप्ति हेतु काम से उनका जो संघर्ष चित्रित किया गया है वह उनके चरित्र को और ऊँचाई प्रदान कर देता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने ठीक ही लिखा है— “तुलसी काम के संघर्ष से पीड़ित तो होते हैं और निरन्तर होते हैं किन्तु राम तक पहुँचने के लिए उनका विवेक बराबर संघर्ष करता रहता है, वह लक्ष्य को पहचानता है। इसलिए काम की प्रक्रिया से इतना पीड़ित होकर भी तुलसी निरन्तर राम की ओर बढ़ते रहते हैं। किन्तु यह बढ़ना सीधा बढ़ना नहीं है गिर-गिर कर बढ़ना है और यह गिर-गिर कर बढ़ना, काम के शिकंजे में बार-बार बुरी तरह कसकर छटपटा कर उससे थोड़ा-सा मुक्त हो जाना एक ओर आज के सही मनुष्य की आंतरिक वास्तविकता को रूपायित करता है तो दूसरी ओर तुलसी की अदम्य शक्ति (जो ऐतिहासिक सच्चाई है) को मूर्त्त करता है।”<sup>60</sup>

लेखक ने तुलसी के भक्त रूप की प्रतिष्ठा के लिए भक्ति के अनुकूल और प्रतिकूल तत्त्वों के संघर्ष का चित्रण किया है। भक्ति विरोधी तत्त्वों में काम, अर्थ, यश, मोह और अहं आदि पर भक्ति की विजय का आकर्षक वर्णन किया गया है। कृति के कई प्रसंग तुलसी की आस्था, दृढ़ता, जिज्ञासा का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। उनका व्यावसायिक कथावाचक रूप, अध्यापक रूप तथा ज्योतिषी रूप ‘मानस का हंस’ में देखा जा सकता है। उनकी कुशलता को देखकर ही कृति में मुगलों के “बहुत बड़े नजुमी” आफताब मिर्जा कहते हैं— “यकीनन यह जवान अपने फन में माहिर है। इसकी परेशानी देखकर मैं यह सोचता हूँ कि यह नजुमी भी अकबर शाह की तरह दुनिया में कुछ कर गुजरने के लिए ही आया है। एक दिन सारी दुनिया इसके कदम चूमेगी और एक मानी में यह अकबर शाह से ज्यादा बड़ी सल्तनत का मालिक बनेगा।”<sup>61</sup> बूँद और समुद्र के बाबा रामजी दास की भाँति नब्बे वर्षीय बाबा तुलसी को नियमित स्नान-ध्यान, व्यायाम आदि में प्रवृत्त दिखाया गया है। काशी प्रवास में अखाड़ों



के दंगल और कसरत कुश्ती का शौक तथा हनुमानजी के मंदिर की स्थापना यह स्पष्ट करती है कि नौजवानों को बुद्धि के साथ बल की भी आवश्यकता है— शरीर को सुगठित रखने की जरूरत है। कृति में तुलसी का यह रूप भी आकर्षक है। नागरजी ने तुलसी को सभी पारिवारिक संबंधों के निर्वाह में पटु दिखाया है। पुत्र, पिता, मित्र, शिष्य, गुरु, पति आदि सभी स्नेह-संबंधों को सम्पूर्ण मानवीय आवेगों की उष्णता से वे इस प्रकार निभाते हैं मानों रामजी ने अपनी ड्योढ़ी तक लाने के लिए नेह-नातों की सीढ़ियाँ बनाई हों। कठिन परिस्थितियों में भी अपने मित्र नंददास को उबारने की घटना मित्र के प्रति उनके अनुराग को व्यक्त करती है। दूसरे मित्र गंगाराम ज्योतिषी की सहायता का प्रसंग इस संदर्भ में उद्धृत किया जा सकता है। शिष्य रामू के प्रति उनका पुत्रवत् स्नेह इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त होता है— “रामू का विवाह करके मुझे ऐसा ही लगेगा राजा कि जैसे तारापति को गृहस्थ बना रहा हूँ।”<sup>१८२</sup>

नागरजी के तुलसी का प्रेमी रूप विशेष चर्चित रहा है। मोहिनी की कल्पना और उसके प्रेम में तुलसी की दीवानगी के चित्रण के कारण कई आलोचकों ने नागरजी की कड़ी आलोचना की है। सामान्य पाठक को भी तुलसी का यह रूप रास नहीं आता। तुलसी के जीवन का यह प्रसंग यद्यपि उपन्यासकार की कल्पना ही है तथापि अपने प्रेमी रूप में तुलसी का चरित्र अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है।

तुलसी के पत्नी-प्रेम की प्रगाढ़ता और फिर त्याग की कथा अत्यन्त प्रचलित है। परन्तु उनके चरित्र का वैशिष्ट्य यह है कि पत्नी को त्यागकर भी वे अपराध-बोध से ग्रस्त हैं— “जो अन्याय मैं तुम्हारे प्रति कर सका वह मेरे रामचंद्र जगदंबा के प्रति नहीं कर सकते थे।”<sup>१८३</sup> वे रत्नावली के प्रति अत्यंत कृतज्ञतापूर्वक कहते हैं— “तुम्हारा आजीवन उपकार मानूँगा रत्नावली, जो दिया है उसे वापस मत माँगो।”<sup>१८४</sup> तुलसी के चरित्र को विशिष्ट गौरव से संपन्न कर देने वाला यह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है। रत्नावली की फटकार से वैराग्य धारण कर लेने पर भी रत्नावली के प्रति तुलसी की चाहत में कोई अंतर नहीं आया। इस विशेष अनुरक्ति का कारण भी था — “हम तो चाखा प्रेम रस पतिनी के उपदेस।”<sup>१८५</sup>

ठठेरों, कसेरों, केवटों, अहीरों की सुप्त लोकशक्ति को जागृत करके तुलसी ने जनशक्ति की महत्ता को स्वीकृति दी थी। तुलसी ने सामान्य मनुष्य तक को आत्मीय बनाकर ‘राम’ की शक्ति का गुण-गान किया था। “ब्राह्मण, राजपूत, गोप, अहीर, गोंड, कहार, केवट, नाऊ, जुलाहे, छोटे कौमों के मुसलमान, तमोली, छोटे-छोटे सौदागर सभी तो राम बोला बाबा को अपना मानते हैं।”<sup>१८६</sup> इस दृष्टि से तुलसी सच्चे जनवादी सिद्ध होते हैं।

जीवनभर बाधाओं और विरोधों का दृढ़तापूर्वक सामना करने वाले तुलसी का

दृढ़, तेजस्वी, शान्त तथा रामभक्त रूप 'मानस का हंस' में देखा जा सकता है। इस प्रकार तुलसी के बहुआयामी, विराट् व्यक्तित्व को अमृतलाल नागर ने अपनी कुशल लेखनी से जीवन्त मानवीय व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित कर दिया है। उनके अंतःसंघर्ष और बाह्य संघर्ष दोनों का सम्यक् एवं आकर्षक निरूपण कृति में प्राप्त होता है।

'मानस का हंस' में जिन अन्य पात्रों का चरित्र प्रभावपूर्ण है उनमें मेधा भगत, बेनीमाधव दास, मोहिनी तथा रत्नावली प्रमुख हैं। मेधा भगत का भाव विह्वल भक्त रूप स्वाभाविक तथा आकर्षक है। बेनीमाधव दास के चरित्र में महत्त्वाकांक्षा, अन्तर्द्वन्द्व तथा तुलसीबाबा के जीवन प्रसंगों को जानने की उत्सुकता सजीवता का आभास कराती है। स्त्री पात्रों में मोहिनी की कल्पना यद्यपि विवादास्पद है तथापि नागरजी ने उसकी उपस्थिति के लिए जिस वातावरण की सृष्टि की है उसे सहज रूप से अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। मोहिनी के मनोभावों का जीवन्त वर्णन नागरजी ने किया है। रत्नावली के साथ तुलसी के वैवाहिक तथा गृहस्थ जीवन की सुमधुर झँकियों के मध्य उसका त्यागी, साधना सम्पन्न, समर्पित व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। इस रूप में उसके गुण तथा विद्या के अतिरिक्त उसके दर्प का आभास भी पाठकों को हो जाता है।

## नाच्यौ बहुत गोपाल

**निर्गुनियों :** 'नाच्यौ बहुत गोपाल' नायिका प्रधान उपन्यास है। कृति की संपूर्ण कथा निर्गुण के जीवन के इर्द-गिर्द घूमती है। एक उच्च ब्राह्मण-कुल में जन्मी तथा संस्कारशील नाना के संरक्षण में पली निर्गुण अपने नाना की मृत्यु के बाद आरंभिक संस्कार से पूर्णतः विपरीत कुसंस्कारी व्यक्तियों के बीच दूषित परिवेश में पिता द्वारा रखी गई। अपनी संरक्षिका सेठानी के प्रोत्साहन से वह कम उम्र में ही 'देह-सुख' की अभ्यस्त हो गई। गोरखा खड्ग बहादुर, छोटे सरकार और वसंतलाल मास्टर की अंकशायिनी बनने के बाद वह एक बूढ़े मसुरियादीन को ब्याह दी गई। ऐसी दशा में निर्गुण में विद्रोह की भावना का प्रादुर्भाव स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप वह मेहतर जाति के युवक मोहन के साथ भागने को विवश हुई। मेहतर बस्ती के घृणित परिवेश, अस्वीकार्य जीवन प्रणाली तथा अशिष्ट भाषा-व्यवहार के बावजूद उसने मोहन के साहचर्य को स्वीकार कर लिया तथा अपने को उस परिवेश में ढालने की चेष्टा करती रही। विपरीत परिस्थितियों में भी अपने प्रेमी मोहन के प्रति उसका एकनिष्ठ भाव से समर्पण उसकी चारित्रिक दृढ़ता को प्रमाणित करता है।

मोहन को निर्गुण ने चरम विवशता के क्षणों में स्वीकार किया था। उसकी स्वीकृति का मुख्य उद्देश्य काम-सुख की प्राप्ति ही था। आरंभ में मोहन की क्रूर तथा अमानवीय गतिविधियों से वह बचाव का मार्ग खोजती सी प्रतीत होती है परन्तु बचने



का रास्ता न पाकर वह मोहन को स्वीकार कर लेती है। यह ठीक है कि यह स्वीकृति मद्य की बेसुधी में ही की गई थी परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वह मोहन के साथ बँधती गई और अंततः मोहन के नाम-साम्य के आधार पर मुरलीधर मोहन की उपासिका बन गई। वास्तव में यह उसका ब्राह्मण संस्कार ही था जो 'मेहतर मोहन' को 'मुरलीधर मोहन' के उन्नत रूप में स्वीकार कर सका।

निर्गुण के चरित्र के माध्यम से नारी जाति की त्रासदी तथा पुरुष समाज का अहं और मनमानापन स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। डॉ. गोपाल राय ने ठीक ही लिखा है— "निर्गुण के मूल ब्राह्मण संस्कार और परवर्ती मेहतर संस्कार में कितना तीव्र संघर्ष होता है, उसके भीतर निहित वेश्या और सती नारी किस प्रकार आपस में जुड़ती हैं, इसका बड़ा मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिक चित्र उपन्यास में मिलता है। मोहन तो अंततः डाकू बनकर, कुछ दिन लूटपाट और मजे की जिन्दगी बिताकर पुलिस की गोली का शिकार होता है, पर निर्गुण परिस्थितियों की आँच में तपकर खरा सोना बन जाती है।"<sup>८०</sup>

मोहन के डाकू बन जाने के बाद जब वह सास-ससुर द्वारा निकाल दी जाती है तब भी वह निराश नहीं होती और एक वृद्ध मेहतर के घर शरण लेकर, मैला ढोकर अपना जीवन यापन करती है। इसी के साथ-साथ वह आर्य समाज जाती है, पाठशाला चलाती है तथा बच्चों का पालन-पोषण करती है। उसका स्वावलंबन उसके चरित्र के उज्वल पक्ष को प्रकट करता है। पति मोहन के मारे जाने पर भी वह अपने बच्चों को उच्च शिक्षा संपन्न करती है तथा सम्मानपूर्ण नौकरी मिलने पर विवाह करती है। नगर के मेहतरों में वह शिक्षा की लगन जगाती है, मैला ढोने के अतिरिक्त अन्य धन्धों यथा बाजे बजाने के कार्य को अधिकाधिक फैलाने और उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए लगन से कार्य करती है। स्वयं मेहतर समाज में रहकर सभ्रान्त महिला का जीवन व्यतीत करती है और अपने खेतों में मजदूरों आदि द्वारा सब्जी उगाने का कार्य कराती है। शराब के नशे में धुत होकर गालियाँ बकना भी उसके चरित्र का एक अंग है। परस्पर विरोधी-गतिविधियों से युक्त निर्गुण का यह व्यक्तित्व पाठक को आकर्षित करता है। नागरजी ने निर्गुण का चरित्रांकन बड़ी तल्लीनता के साथ किया है यही कारण है कि नागरजी के कुछ विशिष्ट चरित्रों में उसकी गणना की जाती है। हिन्दी कथा साहित्य में निर्गुण का चरित्र अनोखा है।

नागरजी ने अपने कौशल से निर्गुणियों के चरित्र को केवल 'टाइप' और 'फ्लैट' चरित्र न बनने देकर विशिष्ट व्यक्तित्व संपन्न 'राउण्ड' चरित्र में ढाल दिया है। डॉ. गोपाल के अनुसार — "बात-बात में भद्दी-भद्दी गालियाँ बकनेवाली, नम्बरी पियक्कड़, अपनी जवानी में अनेक पुरुषों की अंकशायिनी बननेवाली, सिर पर मैला ढोनेवाली तथा एक डाकू की बीबी निर्गुणियों के चरित्र में समाहित उदात्त तत्त्वों का उद्घाटन और अंकन बड़े ही सुकुमार हाथों से किया गया है।"<sup>८१</sup>

कामुकता निर्गुण के चरित्र की विशेषता है। अपनी इसी दुर्बलता के कारण वह यदाकदा विचलित होने लगती है। डॉ. नन्द किशोर नवल के विचार से — “उसकी कामुकता परिस्थितियों को देन है जो उसके चरित्र को सामान्य चरित्र से एक सीमा तक अलग कर उसे ऐसी शक्ति और वेग प्रदान कर देती है कि पूरा उपन्यास अपूर्व आकर्षण से भर उठता है।”<sup>८५</sup>

निर्गुनियाँ के ब्राह्मण संस्कारों का मेहतर जीवन की घृणित परिस्थितियों से अन्तः संघर्ष तथा पराजय अत्यंत मार्मिक है। वह कहती है — “तब तक मैंने कहावत में ही सुना था कि मार-मार के भंगी बनाया जाता है। मैं सचमुच ही मार-मार कर भंगिन बनायी गयी थी।”<sup>८६</sup> नारी जाति की गुलामी की तुलना भंगी जाति की गुलामी से करते हुए वह कहती है — “मैंने तो नसीब को मार से मेहतरानी बनके ये सीखा बाबूजी कि दुनिया में दो पुराने गुलाम हैं — एक भंगी और दूसरी औरत। जब तक ये गुलाम हैं आपकी आजादी रुपये में पूरे सौ के सौ नये पैसे भर झूठी है।”<sup>८७</sup>

निर्गुण के जुझारूपन का सबूत उसका वह संघर्ष है जहाँ वह भंगी समाज की परिस्थितियों से लड़ती हुई पराजय स्वीकार नहीं करती। आरम्भ में भद्र जीवन व्यतीत करने का उसका परामर्श जब मोहन अस्वीकृत कर देता है तब वह स्वयं भंगी जीवन व्यतीत करते हुए मेहतर समाज के उद्धार के लिए आजीवन प्रयत्न करती है और आंशिक सफलता भी प्राप्त करती है। निर्गुनियाँ के चरित्र का आकर्षण आरंभिक पृष्ठों से ही पाठक को बाँध लेता है। यह बंधन उपन्यास के अंत तक ही छूट पाता है, या फिर तब भी पाठक को नहीं छोड़ पाता।

## खंजन - नयन

सूरदास : ‘खंजन-नयन’ में सूरदास के जीवन की समस्त घटनाओं का क्रमानुसार वर्णन किया गया है जिससे सूर का संपूर्ण जीवन आँखों के सामने मूर्त हो उठता है। कृष्ण भक्त कवि सूरदास के तेजस्वी चरित्र के अतिरिक्त उनका चमत्कारी रूप ‘खंजन-नयन’ में देखा जा सकता है। वह कवि के अतिरिक्त साधक है, ज्योतिषी है, नक्षत्र-ज्ञान संपन्न है, संगीतशास्त्र में पारंगत है तथा अंतर्मन के विविध प्रश्नों को सहज ही जान-समझ लेनेवाला चमत्कारी पात्र है। ज्योतिषज्ञान से वह मथुरा के सेठ की डूबी नौका और संपत्ति का पता बता देता है तथा कई अन्य महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ करता है। नागरजी के सूरदास की भविष्य जान लेने की बात कहीं-कहीं पाठक के गले नहीं उतरती।

तुलसी और मोहिनी की भक्ति नागरजी ने सूर और कन्तो का सात्रिध्य प्रदर्शित कर श्याम और काम के द्वन्द्व को उभारा है। इस संघर्ष में अंततः श्याम की ही विजय



होती है। यद्यपि कंतो का साहचर्य विशेष समीक्षा की अपेक्षा रखता है परन्तु सूर की 'सार्थक प्रेमिका' कंतो को उपन्यासकार ने राधा-भाव से ओत-प्रोत दिखाकर प्रभविष्णुता उत्पन्न कर दी है।

सूर के बाह्य व्यक्तित्व का अंकन नागरजी के शब्दों में — "लंबा, दुर्बल, गोरा, नाक लंबी और सुतवां, उभरी हुई हठीली ठोड़ी, उन्नत कपाल, लहराती हुई घुंघराली लटें, जटाओं-सी झूल रही हैं। हल्की-हल्की दाढ़ी-मूछें भी हैं, कान बड़े हैं। कितना सुन्दर होता यदि यह आदमी देख भी पाता। बड़ी-बड़ी आँखें हैं मगर बेजान।"<sup>१२</sup>

सूर में अंधेपन के कारण हीनता-ग्रंथि उत्पन्न हुई और इसी हीनत्व-बोध के कारण वह गणित-ज्ञान, प्रश्नकुण्डली, जन्मपत्रिका तथा अंतर्ज्ञान से दूसरों को प्रभावित करना चाहता है। इसी दृष्टि से नागरजी ने सूर के व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण किया है। डॉ. चंद्रकान्त बांदिवडेकर ने ठीक ही लिखा है — "चरित्र नायक सूर के अंधेपन का तथ्य स्वीकार कर उसका जो कलात्मक उपयोग नागरजी ने किया है, उसके लिए उनके बौद्धिक चातुर्य की सराहना करनी होगी क्योंकि इस गृहीत तथ्य को संपूर्ण चरित्र-विकास की नींव बनाकर उसके महत्त्व को पहली बार नये संदर्भ में देखा है।"<sup>१३</sup>

परन्तु 'खंजन-नयन' के सूर का संपूर्ण चरित्र 'मानस का हंस' के तुलसी की तुलना में कम प्रभावशाली है, यही कारण है कि वह कमजोर पात्र लगता है। इस संदर्भ में डॉ. बांदिवडेकर का कथन उद्धृत किया जा सकता है— "खंजन-नयन का नायक तुलसी की तरह सामाजिक दायित्व के प्रति सजग और प्रतिबद्ध लोक-नायक नहीं है, वह तो अपने श्याम-सखा के साथ केलि करनेवाला आत्म-केन्द्रित चरित्र है जो मूलतः उद्धारक नहीं कलाकार है।"<sup>१४</sup>

कंतो : 'खंजन-नयन' की कुरूपा, अनाथ, निपट-अकेली, अंधी कन्तो पाठकों की सहज सहानुभूति प्राप्त कर लेती है। अत्यंत काली और माता के दाग वाली कंतो अपनी कुरूपता की पीड़ा से द्रवित होकर सूर से कहती है— "कोऊ मरद मेरे पास नाय फटके हैं— सब दुरदुरावे हैं, घिरना करे हैं। म्होड़े पे थूक देवे हैं सामीजी। का करूं।"<sup>१५</sup> यद्यपि युवा-अंधे सूर की ओर उसके आकर्षण का कारण अंग-संग-लोभ था तथापि सूर की भक्ति और निष्ठा के आगे उसकी वासना की तृष्णा बुझ जाती है और वह अपना शेष-जीवन 'सामीजी' की सेवा में लगाने का संकल्प करती है। अपमान, घडयंत्र, मारपीट तथा अन्य आकर्षण भी उसे संकल्पच्युत नहीं कर पाते। वह कहती है— "मेरा किनारा तो तुमी हो सामी जी। इतने प्रेम से आज तलक मोंसे कोऊ बोल्याइ नांय, तुम्हीं पहले हो।"<sup>१६</sup>

"..... मोसाँ रूठियो मत सामी जी। या दुनिया में मेरा कोऊ नाय है।"<sup>१७</sup>

"..... तुम जैसे चाहो वैसे रखियो। मैं क्या करके तिहारी जात नाय

बिगाड़ुंगी।”<sup>१८८</sup> अनपढ़ कन्तो की एकनिष्ठता का प्रमाण देने वाली ये उक्तियाँ प्रेम के क्षेत्र में उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित कर देती हैं। अपने ‘सामी जी’ की लाठी का सिरा पकड़कर उन्हें चलाती, यात्राएँ कराती कन्तो जब नूर खाँ की अमानवीयतावश मार दी जाती है तब वह पाठकों के हृदय को द्रवीभूत कर देती है। उसके व्यक्तित्व के आगे सूर के अलावा उपन्यास के सभी पात्र फीके पड़ जाते हैं। अपनी आस्था और प्रेमाभिव्यक्ति में छल-छद्म रहित कन्तो को सांसारिक आवश्यकताओं ने कभी विमुख नहीं किया। डॉ. पुष्पा बंसल की दृष्टि में— “उपन्यास के अन्य फार्मूलाबद्ध, स्टंटबाज, एकांगी, तन-सुख-कामना से लपलपाते, केवल हिंसा व काम की बोली बोलते अनेकानेक पात्रों के बीच कन्तो एक सजीव मानवीय मूर्ति है, एक ठण्डी बयार है, एक टीस-भरी आवाज है और एक सचमुच के इन्सान का रक्तोष्ण हृदय है।”<sup>१८९</sup>

## बिखरे-तिनके

**गुरसरन बाबू :** ‘बिखरे-तिनके’ उपन्यास के सर्वाधिक प्रभावशाली पात्र हैं ‘गुरसरन बाबू’। नगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग के पी. ए. के पद से रिटायर होनेवाले गुरसरन बाबू के चरित्र का निर्माण नागरजी ने बड़े मन से किया है। सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी जिस रूप में व्याप्त है उसके प्रतिनिधि पात्र के रूप में गुरसरन बाबू का चित्रण किया गया है। उनका परिचय उपन्यास में इस रूप में मिलता है— “गुरसरन बाबू ने जूनियर क्लर्क की नौकरी से शुरू किया था। तरक्की करते-करते हेल्थ अफसर के पी.ए. के पद पर पहुँचे, चींटा भैंसा बनकर रिटायर हो रहा है।”<sup>१९०</sup>

दफ्तर की ऊपरी आमदनी से सिविल लाइन्स में तीन कोठियाँ तथा दरीबे में एक छः दूकानों वाली इमारत बनानेवाले गुरसरन बाबू अच्छी आमदनी वाले क्षेत्र में अपनी नियुक्ति करवाने के लिए फूड-इन्स्पेक्टरों से अच्छी-खासी रकम वसूलते रहे हैं— “यों खाते तो सभी हैं परन्तु गुरसरन बाबू जैसे सबकी बोटी-बोटी नोचकर खाते रहे वैसा कोई बड़ा बेदिल वाला ही खा पाता है।”<sup>१९१</sup> ये पंक्तियाँ उनकी घूसखोरी की वृत्ति का उद्घाटन करती हैं। भ्रष्टाचार में लिप्त सरकारी कार्यालय के कर्मचारी एवं अफसरों का एक वर्ग भी उपन्यास में चित्रित है। अपने कार्यालय के कुछ लोगों से गुरसरनलाल जी को विशेष चिढ़ है। एक्सटेंशन मिले या न मिले उनकी कुटिल गतिविधियाँ जारी रहेंगी। अगर उन्हें दो बरसों का एक्सटेंशन मिला तो हेल्थ अफसर को “ऐसे ठौर पर मारेंगे जहाँ पानी भी न मिले”<sup>१९२</sup> और “अगर रिटायर हुए तो भी उसकी जन्मपत्री ऐसी बिगाड़ जाएँगे जैसी तेजाब से सूरत बिगड़ती है।”<sup>१९३</sup>

गुरसरन बाबू स्वभाव से काइयों तथा अपना काम बनाने के लिए किसी भी हद तक गिर जाने को तैयार रहनेवाले व्यक्ति हैं। दूसरों की कमजोरियों को इकट्ठा करना



और उचित अवसर पर उनसे लाभ उठाना या ब्लैक मेल करना उनकी आदत है — “चालाक से चालाक मनुष्य बेहोशी में कभी-न-कभी और कहीं-न-कहीं चूक कर ही बैठता है। गुरसरन बाबू चतुरों के उन्हीं बेहोश क्षणों की चूकों का संग्रह किया करते हैं। अपनी इसी आदत के कारण गुरसरन बाबू से दफ्तर में ऊपर से नीचे तक सब लोग आतंकित रहते हैं।”<sup>१०५</sup> नागरजी ने उनका चरित्रांकन करते हुए अन्यत्र लिखा है— “किसी को कबूतर पालने का शौक होता है, किसी को टिकट जमा करने का, गुरसरन बाबू की हॉबी दूसरों की कमजोरियों के प्रमाण एकत्र करने की रही है।”<sup>१०६</sup> दफ्तर के इस्टेब्लिशमेंट क्लर्क के शब्दों में — “हजार हरामियों के साँचे जोड़कर ब्रह्माजी ने इसको ढाला था। इसकी थाह न धरती के भीतर लगती है और न आकाश में।”<sup>१०६</sup>

कृति में गुरसरन बाबू व्यक्ति पात्र के रूप में भले ही चित्रित किए गए हों परन्तु उनकी गतिविधियाँ उन्हें ‘टाइपड’ पात्र बना देती हैं। उनके जैसे भ्रष्ट कार्यकलापों वाले पात्र किसी भी सरकारी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्र हैं - बिल्लू, सुहागी, सरसुतिया, घुरीलाल, सुनन्दा, डॉ. गोयल, संतोषी, कुँवर उत्तर सिंह राठौर तथा चक्रपाणि चौबे। इस लघु उपन्यास के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु इन सभी पात्रों का महत्त्वपूर्ण योग है।

## अग्निगर्भा

**सीता :** दहेज की समस्या का चित्रण करने के कारण ‘अग्निगर्भा’ उपन्यास नायिका-प्रधान है जिसकी नायिका सीता है। निम्न मध्यवर्ग की सुशिक्षिता युवती सीता ने अपनी प्रतिभा तथा सद्ब्यवहार से अपने महाविद्यालय की छात्राओं, शिक्षिकाओं, अधिकारियों तथा सभी संपर्क के व्यक्तियों को प्रभावित कर लिया है। वह धैर्यवान महिला है। विकट स्थितियों में भी वह धैर्य नहीं खोती, स्थिति को कुशलता से संभालने की चेष्टा करती है। नारियों के ऊपर हो रहे अत्याचार का वह प्रतिरोध करती है। शीला शर्मा के शराबी पति को सही रास्ते पर लाने के लिए उसने जो युक्ति अपनाई उससे राम खेलावन का हृदय परिवर्तित हो गया। उसमें भीड़ के विपरीत रुख को अपनी ओर मोड़ लेने की अद्भुत क्षमता है। महाविद्यालय की प्रिंसिपल के आकस्मिक निधन पर वाइस-प्रिंसिपल के प्रति छात्राओं में व्याप्त रोष को सीता ने अपनी बुद्धिमत्ता से ही नियंत्रित किया था। कठिनाई के क्षणों में बिना घबराए उनका मुकाबला करने के लिए वह सदैव तत्पर रहती है। पास-पड़ोस के लोगों पर होनेवाले अत्याचारों को अखबारों तथा पुलिस के माध्यम से उजागर करने में वह रंचमात्र भी भयभीत नहीं होती।

वह गृहकार्य में दक्ष गृहस्थ महिला है। वह अपने परिवार के गुरुजनों के प्रति सेवा-भावना रखती है। परन्तु उसके चरित्र में कुछ दुर्बलताएँ भी परिलक्षित होती हैं।

सब कुछ जानते, समझते तथा देखते हुए भी वह रामेश्वर के काले-कारनामों को उजागर करने का प्रयास नहीं करती। चाहे अपने भाई ब्रजेश को शराब के नशे में धुत कराकर उससे एक साल की तनख्वाह के कागज पर हस्ताक्षर कराना हो, प्रमिला सरीन को ब्लैक मेल करके ऑफसेट प्रेस खरीदना हो या कॉलेज के पैसे से सीता-रामेश्वरम् भवन बनवाना हो—अपने पति के इन सभी अनैतिक कार्यों की जानकारी रखते हुए भी उसका मौन रहना अखरता है। रामेश्वर को नैतिकता के मार्ग पर लाने का प्रयास सीता की तरफ से न किया जाना खटकता है।

सास-ननद के अत्याचारों को मूक-भाव से सहकर रोते रहना उसके चरित्र की कमजोरी को प्रकट करता है। ससुराल में पति की माता और बहनों द्वारा वह लात-घूसों से मार खाती है, ठण्डे पानी की गगरी उलट दिए जाने पर भी वह रोने के अलावा कुछ नहीं करती, अत्याचार के विरुद्ध आवाज नहीं उठाती। यद्यपि बाद में वह पीड़ित नारियों के लिए कार्य करने का संकल्प लेती है परन्तु अपनी ससुराल में उसका सास-ससुर, जेठानी और पति द्वारा चुपचाप शोषित होते रहना अविश्वसनीय लगता है। पति से क्रुद्ध होकर पुत्र को पति के पास छोड़कर अलग घर में निवास करने की घटना भी नारी-मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं है।

उपन्यास के पूर्व-शीर्षक 'मैं मरूंगी नहीं' या वर्तमान नाम 'अग्निगर्भा' के अनुकूल सीता का चरित्र प्रभाव प्रकट नहीं करता। ससुराल के अत्याचारों के खिलाफ वहीं रहकर आवाज उठाना घर छोड़कर जाने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता। घर के भीतर अत्याचार सहते रहने की प्रवृत्ति से उसके चरित्र में उस पारम्परिक नारी का आभास मिलता है जो निम्न-मध्यवर्ग की है तथा अपने को असुरक्षित महसूस करती है।

**रामेश्वर :** उपन्यास के नायक रामेश्वर का चरित्र वर्तमान समाज के मूल्यरहित व्यक्ति का चरित्र है। प्रत्येक अवसर पर अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु प्रयास करनेवाला रामेश्वर घोर अवसरवादी है। वह अपने संपर्क में आनेवाले हर व्यक्ति से लाभ प्राप्त कर लेना चाहता है। उचित-अनुचित की परवाह किए बिना अपना काम निकाल लेना ही उसका सबसे बड़ा जीवन-दर्शन है। उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है — येन-केन-प्रकारेण पैसा कमाना। वह सीता से विवाह भी इसी उद्देश्य से करता है कि हर महीने सीता को मिलनेवाली तनख्वाह से उसे जीवनभर दहेज मिलता रहेगा। रामेश्वर तथा उसके परिवार के लोगों द्वारा दहेज के रूप में सीता के पिता से प्राप्त होने वाली रकम न मिलने पर कागज लिखा लेना रामेश्वर की अर्थलोभी प्रकृति का परिचायक है। अपनी पत्नी सीता की हर छोटी-बड़ी त्रुटियों के लिए आर्थिक जुर्माना करना उसके स्वभाव की कठोरता प्रमाणित करता है।



वह अत्यंत कुटिल व्यक्ति है। जिन माता-पिता की वह विवाह-पूर्व अश्रद्धा करता है उन्हीं के नाम पर सीता के पिता से दहेज की मांग करता है। अपनी पत्नी के मनोबल को दबाने के लिए बच्चे से न मिलने देना उसकी रणनीति का हिस्सा है। ऑफसेट प्रेस हथियाने के लिए प्रमीला सरिन के साथ किया गया षडयंत्र उसको धोखेबाज सिद्ध करता है। उसमें मानवता, उदारता, सज्जनता, शील, सहानुभूति आदि गुणों का सर्वथा अभाव है। वह दहेज का लालची है और पैसे का भूखा है। उसके वार्तालाप में गालियों का प्रयोग उसकी अशिष्टता का परिचय देता है। अपने पिता तथा सीता के पिता को अपशब्द कहना उसकी आदत सी हो गई है। कॉलेज की अध्यापिकाओं से उसके संबंध भी उसे दुराचारी सिद्ध करते हैं। कुल मिलाकर रामेश्वर के रूप में लेखक ने एक भ्रष्ट, कृतघ्न, अशिष्ट, दुराचारी तथा स्वार्थी व्यक्ति का चित्रण किया है। उसके चरित्र से पाठकों के मन में घृणा का भाव पूरी तरह से उभरता है।

उपन्यास में सोमेश्वर, इन्द्राणी तथा मिथिलेश नारायण पिछली पीढ़ी के पात्रों के रूप में और मैत्रेयी, गीता, रामखेलावन, हिम्मत राय सहायक पात्रों के रूप में चित्रित हुए हैं।

## करवट

वंशीधर टंडन उर्फ तनकुन : 'करवट' का प्रमुख पात्र है वंशीधर टंडन। वह परम मेधावी, साहसी तथा दृढ़ चरित्र वाला है। प्राचीन परंपराओं, संस्कारों तथा स्वाभिमान को बलि देकर भी वह खुद की उन्नति करना चाहता है। उपन्यास के आरम्भ में दूसरा विवाह न करने की उसकी हठवादिता और दृढ़ता प्रभावित करनेवाली है। घर त्याग कर स्वाध्याय तथा अध्यापन के बल पर विकास की चेष्टा तथा अंग्रेज पादरी से अंग्रेजी सीखकर उन्नति करने का प्रयास उसके स्वावलंबी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व का परिचय देता है। पार्किन्सन तथा नैन्सी मालकम के सम्पर्क में आकर उसने अपने विकास का मार्ग प्राप्त कर लिया था। नैन्सी से उसका मधुर संबंध इतना प्रगाढ़ था कि नैन्सी के पति की मृत्यु के उपरान्त वह नैन्सी के साथ कलकत्ता चला आया। यहीं उसके जीवन का विविध क्षेत्रों में विकास हुआ। अपनी व्यवहार कुशलता, चतुराई, प्रगतिशील चेतना तथा समयानुकूल ढाल लेने की प्रकृति के कारण वह सबका प्रिय बना रहा। केवल पुरातनपंथी, रूढ़िवादी एवं अंधविश्वासी प्रकृति के व्यक्ति ही उसके विरोधी बने रहे। तनकुन अंधविश्वासों के खिलाफ दृढ़ता से खड़ा होता है। आधुनिकता, उन्मुक्तता तथा नारी स्वातंत्र्य के प्रगतिशील विचारों वाले तनकुन के बहाने १९वीं शताब्दी के अंतिम समय के कालखण्ड की समाज व्यवस्था 'करवट' में अंकित की गई है। यह वही कालखण्ड था जब बंगाल में राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज तथा

पंजाब एवं उ. प्र. में स्वामी दयानन्द का आर्य समाज कुसंस्कारों, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों पर प्रहार कर रहा था तथा नारी जागरण और शिक्षा पर जोर दे रहा था।

यद्यपि वंशीधर का आरंभिक व्यक्तित्व अंग्रेजों का अनुगामी होने के कारण बहुत आकर्षक नहीं लगता परन्तु तत्कालीन समाज में अंग्रेजी ज्ञान, उनकी रीति-नीति, आचार-विचार तथा सम्पर्क से अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करनेवाला पात्र तनकुन हमें प्रभावित करता है। अपनी पत्नी 'चमेली' को कलकत्ता बुलाकर उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा तौर-तरीकों में बदलाव लाकर उसे सुसंस्कृत करना एवम् 'चंपकलता' के रूप में प्रस्तुत करना उसकी परिष्कृत रुचि के साथ नारी-मुक्ति के प्रगतिशील विचारों का परिचायक है।

उसकी संपूर्ण गतिविधियों से पता चलता है कि वंशीधर अपने आदर्शों के द्वारा उतना प्रभाव नहीं डाल पाता जितना अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण। अपने पुत्र देशदीपक के विवाह के लिए 'कौशल्य' जैसी तिरस्कृता का चयन उसके प्रगतिशील विचारों का सूचक है। पुत्र देशदीपक की शिक्षा तथा डाक्टरी पेशे में जन्मे की संपूर्ण गतिविधियों के पीछे उसके व्यावहारिक ज्ञान तथा कुशल गृहस्थ की छवि स्पष्ट होती है।

पत्नी की मृत्यु के उपरांत यद्यपि वह अकेला पड़ गया था और चान्दको जी के मंदिर के पास कुटिया बनाकर रहने लगा था तथापि अपने कार्यों के बल पर उसे अंतिम दिनों में 'राय साहब' की उपाधि मिली। आरंभिक जीवन में सफलता के लिए निरंतर प्रयास और अंतिम समय में शांति की प्राप्ति हेतु उसके कार्य एक संघर्षशील सफल व्यक्ति के अनुरूप हैं।

कुल मिलाकर वंशीधर के रूप में नागरजी ने एक ऐसे चरित्र का अंकन किया है जो देश, समाज, संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति सम्मान रखते हुए भी उन्नति हेतु अंग्रेजी और अंग्रेजियत को स्वीकार करता है।

**देशदीपक :** वंशीधर का एक मात्र पुत्र देशदीपक अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति तथा परिवेश में पला-बढ़ा भारतीय है। उसमें पिता वंशीधर की भाँति भारतीय और अंग्रेजी सभ्यता के बीच अंग्रेजी संस्कृति के चयन का अपराध बोध नहीं है क्योंकि वह इन द्वन्द्वों से रहित होकर अंग्रेजी वातावरण में विकसित होता है। उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष तब प्रकट होता है जब वह आगे की पढ़ाई के लिए विलायत जाने से इन्कार कर देता है। एक धनी व्यक्ति के द्वारा विदेश भेजे जाने तथा उनके दामाद बनने का प्रस्ताव भी अस्वीकृत कर देता है। वह लाहौर में हकीम रामलाल की विवाहिता पुत्री कौशल्य को गुण्डों द्वारा उठा लेने के प्रसंग से मर्माहत होता है तथा पिता और ससुर द्वारा ठुकरा दी गई कौशल्य को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। आर्य-समाजी होने के कारण वह मूर्तिपूजा नहीं करता, मंदिर में नहीं जाता परन्तु एक कुशल



डॉक्टर की भाँति मानवता की सेवा तन-मन-धन से करता है। 'प्लेग' की महामारी में वह जी-तोड़ मेहनत करके अपने इलाज से पीड़ित मानवता की रक्षा करता है। चमत्कारी बाबा के प्रभाव से देशदीपक के मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा उमड़ती है।

देशदीपक का चरित्र यह संकेत देता है कि प्रतिभा, लगन, श्रम, अध्यवसाय तथा वैज्ञानिक उन्नति के साथ जीवन में अध्यात्म का सान्निध्य ही पूर्ण शान्ति प्रदान करता है।

'करवट' के स्त्री पात्रों में चंपकलता, कौशल्या तथा नैन्सी प्रमुख हैं। चंपकलता वंशीधर की पत्नी है और कौशल्या देशदीपक की। दोनों ही पति परायणा, व्यवहार कुशल, मुदुभाषिणी, कर्तव्यनिष्ठ तथा पति के काम में हाथ बँटानेवाली महिलायें हैं। वे आदर्श हिन्दू नारी के रूप में चित्रित हुई हैं परन्तु उनमें प्रगतिशीलता के भी पर्याप्त तत्त्व हैं। नैन्सी खुले विचारों वाली महिला है तथा अंग्रेज माल्कम की पत्नी है। पति की मृत्यु के बाद वह तनकुन के साथ कलकत्ता भाग आती है और कलकत्ते में गवर्नर से विवाह रचाती है।

'करवट' में इन पात्रों के अतिरिक्त अनेक हिन्दू-मुस्लिम और अंग्रेज पात्र हैं जो उपन्यास को महाकाव्यात्मक बनाने तथा कथा को रोचक बनाने में सहयोगी हैं। पात्रों का वैविध्य तथा उनका समुचित संचालन अमृतलाल नागर जैसे कुशल कथाकार के वश की ही बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागरजी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न चरित्रों की अवतारणा की है। नागरजी के पात्र अपने वैविध्य और वैशिष्ट्य के कारण ही पाठकों को प्रभावित करते हैं। उनके अधिकांश पात्र यथार्थ जगत से सम्बद्ध हैं और वे हमारे बीच के-से प्रतीत होते हैं, यही कारण है कि पाठक उन्हें विस्मृत नहीं कर पाता। नागरजी ने स्वयं कहा भी है— "कलाकार का बड़प्पन इसी में है कि उससे अधिक पाठकों को उसके पात्रों की याद आए।"<sup>१००</sup>

नागरजी के पात्रों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उनके अधिकांश पात्र कथा के स्वाभाविक अंग के रूप में आए हैं। यद्यपि उनके कुछ पात्रों में आदर्शवादी स्पर्श है जिसके कारण वे अतिरंजित एवं अलौकिक लगते हैं परन्तु ऐसे पात्र वास्तव में लेखक के सिद्धान्त-निरूपण एवं वैचारिक अभिव्यक्ति में ही सहायक हैं। ऐसे पात्रों में 'बूंद और समुद्र' के बाबा रामजी दास ; 'शतरंज के मोहरे' के दिग्विजय ब्रह्मचारी; 'मानस का हंस' के तुलसीदास; 'खंजन-नयन' के सूरदास तथा 'करवट' के स्वामीजी लिए जा सकते हैं। लेखकीय सिद्धांत एवं जीवन दर्शन का प्रतिपादन 'अमृत और विष' के अरविंद शंकर द्वारा भी किया गया है। ये सभी पात्र आस्थावादी चेतना से युक्त हैं तथा निराशा, पीड़ा और कुंठा के क्षणों को आस्था से दीप्त करने में समर्थ हैं।

नागरजी के कई पात्र सामाजिक समस्याओं को विश्लेषित करते हुए देखे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों के गौण पात्र भी प्रमुख-पात्रों की भूमिका को प्रभावशाली बनाने में सहायक हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि नागरजी "प्रेमचंदजी की तरह जिन्दगी की गहरी छानबीन करते हैं और बनावटी पात्रों की सृष्टि से बचते हैं किसी पूर्व-धारणा या विचार को वे पात्र-रचना का मूलाधार नहीं बनाते।"<sup>100</sup> नागरजी ने पात्रों का चयन कथा की स्वाभाविक पृष्ठभूमि या उद्देश्य के अनुसार किया है। उनके बुद्धिवादी पात्रों में पाँचू (महाकाल); महिपाल, सज्जन, वनकन्या (बूँद और समुद्र); रमेश, आत्माराम, खन्ना दम्पति (अमृत और विष); सोमाहुति (एकदा नैमिषारण्ये); बेनीमाधवदास (मानस का हंस); निर्गुनियाँ (नाच्यौ बहुत गोपाल); सीता (अग्निगर्भा) तथा तनकुन (करवट) की गणना की जा सकती है। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के मध्य बौद्धिक वर्ग के विचारों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। कहीं इस वर्ग के अंतर्द्वन्द्व तथा विरोधाभास की अभिव्यक्ति हुई है तो कहीं समाज के सम्यक् विकास में उनके चिंतन से ध्रुमित पात्रों को सुमार्ग प्राप्त करते दिखाया गया है।

पूँजीवादी तथा महाजनी वृत्ति का प्रतिनिधित्व करनेवाले अनेक पात्र भी उपन्यासों में भिन्न-भिन्न रूपों में आए हैं। 'महाकाल' का मोनाई बनिया ; 'बूँद और समुद्र' के सेठ रूपरतन, लाला जानकी शरण तथा राय बहादुर द्वारका दास; 'अमृत और विष' के रेवती रमन, लाला रूपचन्द, खोखा मियाँ तथा 'बिखरे तिनके' के सेठ चुन्नीलाल और स्वतंत्र कुमार ऐसे ही पात्र हैं।

इन पात्रों के अतिरिक्त नारी पात्रों का व्यापक प्रवेश नागरजी की कृतियों में मिलता है। इनमें महाकाल की मंगला ; बूँद और समुद्र की ताई, वनकन्या, कल्याणी, डॉ. शीला स्विंग, चित्रा राजदान, बड़ी, तारा, नंदो, लाले की घरवाली ; शतरंज के मोहरे की बादशाह बेगम और दुलारी ; सात घूँघटवाला मुखड़ा की बेगम समरू; सुहाग के नूपुर की चेलम्मा, माधवी तथा कन्नगी; अमृत और विष की रानी ; एकदा नैमिषारण्ये की इज्या, प्रज्ञा ; मानस का हंस की रत्नावली तथा मोहिनी ; नाच्यौ बहुत गोपाल की निर्गुनियाँ ; खंजन नयन की कन्तो ; बिखरे तिनके की सरसुतिया ; अग्निगर्भा की सीता तथा करवट की नैन्सी और कौशलया प्रमुख हैं। ये सभी नारियाँ अपनी-अपनी भूमिकाओं के अनुसार पारंपरिकता, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, निर्ममता, कठोरता, कोमलता, ममता, सशक्तता, स्निग्धता, गरिमा, आधुनिकता, पुरातनता, संस्कारहीनता, सांस्कारिता, प्रगतिशीलता, विलासिता अभिव्यक्त करती चलती हैं।

इस प्रकार नागरजी ने समाज की महत्वपूर्ण समस्याओं को प्रस्तुत करने के



लिए प्रतिनिधि पात्रों का चयन किया है और उनके मनोविज्ञान को भी चित्रित करने का प्रयास किया है परन्तु उनके उपन्यासों के कुछ पात्र दुहराए गए से प्रतीत होते हैं।

बाबा रामजी दास 'बूंद और समुद्र' के अलौकिक शक्ति वाले पात्र हैं। उन्हीं के विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र दिग्विजय ब्रह्मचारी 'शतरंज के मोहरे' में उपस्थित हैं। ऐसे ही चरित्र का प्रतिनिधित्व करने वाले एक फकीर 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुनियों को शक्ति प्रदान करते हैं। 'करवट' के अन्तिम अंश में साधु बाबा भी उसी चरित्र का संकेत देते हैं।

इसी प्रकार नागरजी के भंग-प्रेम को प्रकट करने वाले पात्र के रूप 'अमृत और विष' में पुत्ती गुरू आए हैं। उसके पूर्व 'सेठ बाँकेमल' में चौबेजी और सेठजी के बूटी-प्रेम की झलक मिलती है। 'खंजन-नयन' के पुद्गल और 'करवट' में कुंजू खलीफा ऐसे ही पात्र हैं। अन्य उपन्यासों में भी भंग-प्रेमी पात्रों की उपस्थिति देखी जा सकती है।

नारी पात्रों का अतृप्त विलास भी कई उपन्यासों में विशेष रूप से चित्रित हुआ है। दुलारी (शतरंज के मोहरे) और बेगम समरू (सात घूँघटवाला मुखड़ा) इस विलास को चित्रित करनेवाली एक जैसी नारियाँ हैं। कामजन्य कुंठा का चित्रण 'बूंद और समुद्र' की बड़ी, नन्दो, चित्रा के साथ-साथ 'अमृत और विष' में चोइथराम सिंधी की पुत्रियों सती और गोपी तथा सारसलेक के प्रसंग में देखा जा सकता है। नारी की अतृप्त यौन भावना की परिणति के रूप में 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुण का चित्रण अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। कामजन्य विकृतियों का चित्रण 'सुहाग के नूपुर', 'अग्निगर्भा' के अलावा 'मानस का हंस' और 'खंजन-नयन' में भी किया गया है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के चित्रण में नागरजी की दृष्टि विशेष रूप से रमी है। इन चित्रणों के विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि वे काम के प्रति रस लेते हैं परन्तु उसका परिशोधन भी करते हैं।

नागरजी के पात्रों का वर्गीकरण व्यक्ति पात्र या वर्गपात्र के रूप में करना मुश्किल है। उनके पात्र केवल 'वर्ग' या 'व्यक्ति' पात्र नहीं हैं — दोनों का घाल-मेल है। कहीं-कहीं दोनों की सीमाओं का अतिक्रमण हुआ है तो कहीं वे अपने एक रूप में ही अपनी पहचान बनाते हैं।

सेठ बाँकेमल, सज्जन, महिपाल, ताई, वनकन्या, शीला स्विंग, चेलम्मा, माधवी, अरविन्द शंकर, रमेश, रानी, लच्छू, डॉ. आत्माराम, निर्गुनियों, गुरसरन बाबू, विन्नु रामेश्वर, सीता, तनकुन — ये सभी पात्र वर्गगत होते हुए भी व्यक्ति-पात्र अधिक हैं। इनकी गतिविधियाँ तथा विशेषतायें इनका व्यक्तित्व जीवन्त रखती हैं। मोनाई बनिया, रूपरतन, द्वारकादास, विरहेश, जगदंबा सहाय, बड़ी, छोटी, तारा, चित्रा, नन्दो, कन्नगी, मैत्रेयी आदि पात्र 'टाइप' अधिक हैं।

नागरजी के पात्रों तथा चरित्रों के बारे में प्रायः प्रश्न किया जाता है कि अपने उपन्यासों में पात्रों की भारी भीड़ के बीच भी वे प्रभावशाली तथा सजीव पात्रों की रचना कैसे कर लेते हैं ? कथा में सभी पात्रों का यथाचित निर्वाह कैसे कर पाते हैं ? इसके उत्तर में नागरजी की पात्र-सृजन-विधि पर ध्यान देना आवश्यक है। वे स्वयं लिखते हैं — “पात्रों की खोज में मैं सचमुच यात्री की तरह घर से निकलता भी हूँ। इस खोज वृत्ति का रस अब तो गढ़िया चला है। सूदखोर महाजन का जो आकर्षण ब्याज के नए पैसे से होता है, वही मुझे अपनी इस लगन के प्रति है।”<sup>१०९</sup> यही कारण है कि पात्र उनके पास खुद-ब-खुद दौड़े चले आते हैं।

## भाषा-शैली

भाषा-शैली के माध्यम से उपन्यासकार पाठकों तक वर्ण्य-विषय को संप्रेषित करता है। अतः उपन्यास की सफलता असफलता में उसकी भाषा-शैली का महत्त्वपूर्ण योग है। उपन्यास की सहज, सधी हुई, कहावत-मुहावरों से ओत-प्रोत, पात्रानुकूल भाषा-शैली उपन्यास की कला में और निखार ला देती है। साहित्यकार अपने मनोभावों और अनुभूतियों को भाषा के परिधान से सुसज्जित कर आकर्षक रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करता है। शैली उपन्यासकार की कलात्मक क्षमता और उसके धैर्य पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। धैर्य की कमी के कारण शैली त्रुटिपूर्ण हो जाती है। अधिक लिखनेवाले उपन्यासकार सामान्यतः शैली की उपेक्षा करते हैं। उपन्यास की शैली विषयानुरूप तथा कृति में अभिव्यक्त जीवन के उपयुक्त होनी चाहिए।

उपन्यास में शैली का अपना महत्त्व है। भाषा में भावाभिव्यक्ति की जो पद्धति लेखक अपनाता है उसे ही शैली कहा जाता है। उपन्यास की श्रेष्ठता एवं कलात्मकता की रक्षा के लिए यह पद्धति अत्यन्त सहज होनी चाहिए। शैली के अन्दर भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषा की इसी महत्ता के कारण कभी-कभी शैली और भाषा का एक ही अर्थ समझ लिया जाता है। हम कह सकते हैं कि भाषा और शैली का संबंध अन्योन्याश्रित है। उपन्यास को गौरवपूर्ण बनाने में भाषा-शैली का विशेष स्थान होता है।

विचारों एवं भावनाओं को प्रकट करने का माध्यम भाषा है। भाषा के माध्यम से ही भाव या विचार पाठक तक पहुँचते हैं। पात्रानुकूल भाषा से कृति में सजीवता आती है। पात्रानुकूल भाषा का तात्पर्य यह नहीं है कि उपन्यास के अंदर अंग्रेज पात्र अंग्रेजी, मद्रास का निवासी मद्रासी, बंगाल का रहनेवाला बंगला तथा जर्मनी का निवासी जर्मन भाषा बोले। ऐसा करने से तो कृति विभिन्न भाषाओं का चिड़ियाघर लगने लगेगी और उपन्यास की सर्वग्राह्यता में बाधा उत्पन्न होगी। पात्रानुकूल भाषा का तात्पर्य पात्रों



के सामाजिक रहन-सहन एवम् विद्या-बुद्धि के स्तर से है। उपन्यास में गाँव में रहनेवाले एक सामान्य किसान की सामान्य भाषा तथा एक प्रबुद्ध व्यक्ति या साहित्यकार की उच्चस्तरीय भाषा के प्रयोग से कृति में स्वाभाविकता आ जाती है। इस प्रकार "पात्रानुकूल भाषा का तात्पर्य वहीं तक लेना चाहिए जहाँ तक कि पाठक उसे पढ़कर उसकी स्वाभाविकता में पूर्ण आस्था प्रकट कर सके।"<sup>10</sup>

अपने कथ्य को प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने के लिए उपन्यासकार समर्थ भाषा की सहायता लेता है। भाषा चूँकि मानव के विचारों तथा भावनाओं की वाहिका होती है अतः समाज या व्यक्ति के जीवन में होनेवाले परिवर्तनों के साथ भाषा का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। यथार्थ का चित्रण करनेवाले साहित्य की भाषा प्रायः जन-सामान्य की भाषा होने के कारण सहज होती है। इसके विपरीत कुछ साहित्यकारों की भाषा अत्यंत क्लिष्ट होती है एवं सहज बोधगम्य नहीं होती। उसे परिनिष्ठित या परिमार्जित भाषा की श्रेणी में रखा जा सकता है। परन्तु सार्थक साहित्यिक भाषा वही मानी जा सकती है जो जन-सामान्य से अपना घनिष्ठ संबंध सूचित करने के साथ-साथ रचनाकार के कथ्य को सहज रूप में प्रभविष्णुता के साथ व्यक्त कर सके।

यदि अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है तो शिल्प उस अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने का साधन। उपयुक्त भाषा के द्वारा ही रचनाकार पाठक के हृदय पर वांछित प्रभाव की सृष्टि करने में समर्थ हो पाता है। भाषा के बिना साहित्य की रचना अकल्पनीय है। पाठक और रचनाकार का आत्मीय संबंध भाषा के माध्यम से ही स्थापित होता है। जो भाषा भावों का सहज एवं समर्थ रूप में वहन कर सकती है वही आदर्श भाषा है। यह तो रचनाकार की रुचि पर निर्भर करता है कि वह सामान्य बोलचाल की भाषा को अपनाता है अथवा परिमार्जित भाषा को।

## नागरजी के उपन्यासों में भाषा-शैली की विशिष्टता

प्रेमचन्द की भाँति नागरजी ने भाषा के सहज रूप को स्वीकार किया है। इस दृष्टि से उनमें प्रेमचन्द की परम्परा का विकास परिलक्षित होता है। दोनों उपन्यासकारों में वैविध्य केवल उपन्यासों में चित्रित जीवन का है। प्रेमचन्द ने यदि अपने उपन्यासों में प्रधानतया ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है तो नागरजी के उपन्यास मुख्य रूप से नगर-जीवन से संबद्ध हैं। यद्यपि नागरजी की भाषा प्रेमचन्द की भाषा के अधिक निकट है परन्तु उनके पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा का विवेचन यह सिद्ध करता है कि नागरजी की भाषा प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक विकसित है। प्रेमचन्द की जनभाषा को अपनी प्रतिभा से विकसित करने तथा अपनी विशिष्ट शैली से प्रभावपूर्ण बनाने में प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में नागरजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। नागरजी के पात्रों में नगरीय जीवन की

स्तरगत विविधता का अधिक समर्थ प्रतिफलन देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के ग्रामीण पात्रों की भाषा की तुलना में नागरजी के नगरांचलीय पात्रों की भाषा अपनी व्यापकता एवम् विविधता के कारण अपनी सामर्थ्य प्रमाणित करती है। अतः नागरजी की भाषा को प्रेमचन्द की भाषा के आगे बढ़ा हुआ कदम मान सकते हैं। नागरजी की भाषा में सहजता के साथ-साथ स्पष्टता, आत्मीयता और अकृत्रिमता है।

नागरजी की रचना-प्रक्रिया में भाषा के विकास का प्रसंग बड़ा रोचक है। अपनी आरंभिक कहानियों में नागरजी ने क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया था परन्तु पं. रूप नारायण पाण्डेय ने उन्हें इस भाषिक-बंधन से मुक्त किया। इसका वर्णन करते हुए नागरजी ने लिखा है — “उन दिनों मुझे एक नई सनक सवार हुई, कोष से संस्कृत के कठिन से कठिन शब्द चुनकर मैं उन्हें प्रयोग में लाया करता था। कूड़े को यदि ‘आवस्कर’ न लिखूँ तो मेरे साहित्य की नाक कट जाय। तकिया ‘उच्छीर्षक’ बन गया, अस्सी ‘अशीति’ और मूँछें ‘श्मश्रु’ बन गयीं। जहाँ तक ध्यान पड़ता है वहाँ तक एकाध कहानी उन्होंने (रूप नारायण पाण्डेय ने) इस भाषा की भी छापी परन्तु जब दूसरी लेकर गया तो कहने लगे, “अब भैया तुम्हारी कहानियों के साथ मुझे फुटनोट में शब्दार्थ भी देने पड़ेंगे। अब तुम बहुत विद्वान हो गये हो।””

पाण्डेयजी की इस व्यंग्य भरी उक्ति ने अमृतलाल नागर को सहज भाषा की ओर मोड़ दिया।

नागरजी के उपन्यास विविध विषयों से संबद्ध हैं। उनके कुछ उपन्यास सामाजिक हैं, कुछ ऐतिहासिक हैं, कुछ जीवनी परक हैं तो कुछ सांस्कृतिक और पौराणिक भी हैं। उपन्यासों में कहीं हास्य-व्यंग्य का पुट है, कहीं समाज की जटिल समस्याएँ हैं, कहीं नवाबी संस्कृति को प्रस्तुत करनेवाली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है तो कहीं पौराणिक कथाओं से युक्त परिवेश। इसके साथ ही हिन्दी साहित्य के दो सर्वश्रेष्ठ कवियों के जीवन प्रसंगों का चित्रण करनेवाली कृतियाँ भी हैं। इन विविध भाव-भूमियों को सफलतापूर्वक वही उपन्यासकार अंकित कर सकता है जो भाषा-शैली की दृष्टि से अत्यन्त सिद्ध एवं समर्थ कलाकार हो।

नागरजी के अधिकांश उपन्यास वृहदाकार के हैं और उनमें पात्रों की बड़ी संख्या परिलक्षित होती है। विविध जातियों, समुदायों, वर्गों तथा भिन्न-भिन्न संस्कारों वाले नागरजी के पात्रों की भाषा का अध्ययन करने से पता चलता है कि नागरजी में पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग की अद्भुत क्षमता है। पात्रों के अनुसार तत्सम, तद्भव, संस्कृतनिष्ठ, उर्दू-मिश्रित तथा अंग्रेजी शब्दों से युक्त भाषा की विविधता नागर जी के उपन्यासों में देखी जा सकती है। उनके ‘सेठ बाँकेमल’, ‘बूँद और समुद्र’ तथा ‘अमृत और विष’ उपन्यासों में आंचलिक भाषा की छटा देखने को मिलती है तो ‘एकदा



नैमिषारण्ये', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन' कृतियों में भाषा का गंभीर और दार्शनिक रूप भी परिलक्षित होता है। 'शतरंज के मोहरे' तथा 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' में अवध के नवाबों की शान को प्रकट करने के लिए अवधी मिश्रित खड़ी बोली के साथ उर्दू भाषा का व्यापक प्रयोग मिलता है। 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में कुछ तमिल शब्दों के द्वारा तमिल जीवन का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करने में नागरजी सफल रहे हैं। उनके सामाजिक उपन्यासों में 'भूख', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'बिखरे तिनके', 'अग्निगर्भा' तथा 'करवट' उपन्यासों में नागरिक भाषा का सहज रूप हमें देखने को मिलता है।

नागरजी के विविध उपन्यासों की भाषा-शैली का अलग-अलग विवेचन इस कथन को प्रमाणित करेगा—

**भूख** : नागरजी का पहला उपन्यास 'भूख' बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया था। उपन्यास में महाजन तथा जमींदार वर्ग के स्वार्थ-चंगुल में कराहती सिसकती अकाल-ग्रस्त कंकाल-शेष जनता का मार्मिक चित्र उपस्थित करने में नागरजी की भाषा-शैली का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पात्रों एवं प्रसंगों के अनुरूप सजीव भाषा नागरजी की लेखकीय क्षमता को प्रमाणित करती है।

उपन्यास की भाषा सहज है। विचारों एवं चिन्तन को अभिव्यक्त करते समय उपन्यासकार ने परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग किया है। यत्र-तत्र उर्दू भाषा के प्रचलित शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

“घृणा की गति है कहाँ? विनाश ही में न ? तुम्हारा यह अकाल क्या है ? मनुष्य की घृणा ही न ? यह महायुद्ध क्या है ? कौन सा आदर्श है इसमें ? सत्य एक असत्य के साथ संधि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कहकर अर्द्धसत्य का पोषण करता है। अर्द्धसत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है और प्रेम की गति है निर्माण से निर्माता तक।”

(भूख - पृष्ठ २१७-२१८)

“मुझे कोई बीमारी नहीं है। जरा भी बुखार नहीं है। ये सब मेरी खामखयाली है। मैं बड़ा बेवकूफ हूँ जो यह सब खुराफात सोचता हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर मैं यह सब सोचता ही क्यों हूँ? नहीं-नहीं अब ऐसे बेहूदे विचार अपने मन में आने ही न देंगे।”

(भूख - पृष्ठ २३)

**सेठ बाँकेमल** : शिल्प की दृष्टि से 'सेठ बाँकेमल' की विशेषता उसके भाषिक सौन्दर्य में है। भाषा की सजीवता एवं शैली की रोचकता ने उपन्यास को और आकर्षक बना दिया है। स्थानीय भाषा के प्रयोग के कारण कुछ विद्वान 'सेठ बाँकेमल' को आंचलिक उपन्यास मानते हैं। उपन्यास के प्रमुख-पात्र आगरा निवासी सेठजी आगरे की

बोली में ही घटनाओं का वर्णन करते चलते हैं और भाषा के जादुई प्रभाववश पाठक एक पात्र की बातों के प्रवाह में बहता रहता है। कृति को रोचक एवं सरस बनाने में पात्रानुकूल भाषा का विशेष स्थान है। सेठजी को खास आगरे की बोली में एक लोच है जो अनायास गुदगुदी पैदा कर देती है।

कृति की शैली आत्मकथात्मक है। सभी प्रसंगों में हास्य की प्रमुखता शैली को रोचक बनाए रखती है। यही कारण है कि कृति को 'हास्य उपन्यास' कहा जाता है। उपन्यास के नायक सेठजी अपनी ओर से गंभीर बने रहकर प्रत्येक बात कहते हैं। वे स्वयं नहीं हँसते परन्तु पाठक हँसे बिना नहीं रह पाता।

'सेठ बाँकेमल' की भाषा-शैली की विशेषताओं को स्पष्ट करने वाले कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

"भइयो, तुझसे सच्ची कहूँ हूँ, आज वो मेरा प्यारा दुनियाँ में मौजूद नहीं, पर अपनी जिन्दगानी में एक ही बार बिस्के ऊपर खफा हुआ। कुछ परमात्मा साले के ऊपर भी ताव आया कि अरे मेरे म्हों पे थोड़ा-सा पौडर क्यों नहीं मल दीना कि मैं भी चौबेजी-सा गोरा-चिट्टा होता।"

(सेठ बाँकेमल - पृष्ठ २०)

"हैं, हैं, मैं तो सरकार फस्ट किलास क्या थर्ड किलास भी नहीं जानूँ हूँ। पर हमारे एक जिगरी फ्रेंड थे, विन्हीं की सौबत में ये थोड़ी भौत 'यस-नो' सीख लीनीं मैंने। वह तो खूब बोलें थे गरीब परवर, फराफर। इंगलिस का पेपर बांचे थे साब, हिन्दुस्तान टैम्स।"

(सेठ बाँकेमल - पृष्ठ ६६)

"दुनियाँ साली बड़ी फौक्स हो गई है अब। हम सरीफों के रहने काबल अब रही नई। अरे वो रंगीनियाँ और तरकैटियाँ ही अब नई रहीं, तो हमलोग जी कैसे सकें हैं प्यारे। हाय, वो जमाने थे भैयो, कि तुझसे क्या कऊँ ?"

(सेठ बाँकेमल - पृष्ठ १०४)

ब्रज की मिठास तथा आगरे की बोली में सेठजी की उक्तियाँ उनके व्यक्तित्व तथा उपन्यासकार के हास्य को अत्यंत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उपन्यास में सेठ जी के प्रिय शब्द, 'तरकैट', 'खुसकैट', 'फौक्स' के साथ 'सारे' 'सुसारे' और 'उल्लू' गालियाँ अपनी स्वाभाविकता के साथ प्रकट हुई हैं।

मुहावरे एवं लोकोक्तियों की उपन्यास में भरमार है। 'सिट्टी-पिट्टी गुम हो के रह गई'; 'ऐसी बंबई की लुटिया दुबाई कि बस हद कर दीनी'; 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे'; 'पत्ता भी न खटके': 'चौबे जी छब्बे बनने चले थे भैयो तो साले दुब्बे ही रह गये': 'एक तरफ गिरो तो कुआँ दिखाई पड़ रह्या है और दूसरे तरफ खंदक है साली' आदि मुहावरों का प्रयोग विशिष्ट अंदाज से हुआ है।

**बूँद और समुद्र** : विद्वानों ने 'बूँद और समुद्र' को आंचलिक उपन्यास माना है।



आंचलिक उपन्यास में भाषा-शैली का विशेष महत्त्व होता है। 'बूंद और समुद्र' भाषा-शैली की दृष्टि से सफल कृति है। इसकी भाषा की एक विशेषता यह है कि उसमें पात्रों के अनुसार भाषा का परिवर्तन विविध रूपों में परिलक्षित होता है। सज्जन, महिपाल, वनकन्या और शीला स्विंग की भाषा-शैली नगर जीवन के स्पर्श के कारण मँजी हुई और परिपक्व है। महिपाल की भाषा में साहित्यिक गरिमा है अतः उसमें पर्याप्त भावुकता भी परिलक्षित होती है। वनकन्या और डॉ. शीला स्विंग की भाषा में सुशिक्षित महिलाओं की भाँति बौद्धिकता का आभास मिलता है। शीला उर्दू शब्दों के पर्याप्त प्रयोग करती है। सज्जन की भाषा में लखनऊ की जवान का भी स्पर्श है।

कर्नल, ताई, बाबा रामजी और कल्याणी की भाषा पूर्णतया आंचलिक है जिसका अपना अलग स्वाद और रस है। कर्नल की भाषा में अंग्रेजी, उर्दू, खड़ी बोली तथा लखनऊ अंचल की अवधी का सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। ताई की ठेठ लखनवी अवधी तथा कल्याणी की शुद्ध बैसवाड़ी का अपना-अपना आकर्षण और माधुर्य है। गोकुल द्वारे के भितरिया जी शुद्ध ब्रज बोलते हैं। पात्रों एवं विषय के अनुसार भाषा को उपस्थित करके नागरजी ने भाषा पर अपने अधिकार का परिचय दिया है। उनके विभिन्न पात्र अपनी पृष्ठभूमि के अनुसार बोलियों का प्रयोग करते हैं। कृति की भाषा सर्वत्र अत्यंत सजीव और चुटीली है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे आज के नवयुवक किस प्रकार आधी हिन्दी और आधी अंग्रेजी बोलते हैं इसका यथार्थ चित्र उपन्यास में खींचा गया है। कई स्थलों पर भाषा के सटीक प्रयोग पाठक को मुग्ध कर लेते हैं। नागरजी शैली को रंजक बनाए रखने के लिए हास्य-व्यंग्य के प्रसंगों का प्रवेश ही नहीं कराते, भाषा की मनोरंजक फुहार से पाठकों को रससिक्त करते रहते हैं। डॉ. सत्यपाल चुघ के अनुसार — "पात्रों की भाषा-शैली की अद्भुत विविधता, हास्य, विनोद-व्यंग्य, वाग्वैदग्ध्य, प्रत्युत्पन्नमत्तित्व, मार्मिकता, रसोक्तियाँ तथा उद्धरण संवादों की रंजकता के उपकरण हैं।"<sup>112</sup> नागरजी ने अनेक पात्रों के अंतःकरण में प्रवेश कर उनकी अलग-अलग भाषा प्रस्तुत करके अपनी अद्भुत क्षमता प्रमाणित की है। डॉ. रामविलास शर्मा की मान्यता है कि "अमृतलाल नागर द्वारा किया हुआ एक मुहल्ले का यह 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाषा-विज्ञान की सामग्री का अद्भुत पिटारा है। अभी तक किसी भी देशी-विदेशी भाषा में एक नगर की इतनी बोली-ठोलियों का निदर्शन करनेवाला उपन्यास मेरे देखने में नहीं आया। इन शैलियों में भाषा और समाज का इतिहास बोलता है।"<sup>113</sup>

कृति में चौक की जिस भाषा का परिचय प्राप्त होता है उसमें खड़ी बोली का 'है' 'हेंगे' में परिणत हो गया है। बाबा रामजी 'व' को 'ब' तथा 'श' को 'स' रूप में उच्चरित करते हैं। लाले दलाल की बोली में 'र' के स्थान पर 'ड़' का प्रयोग तथा एक अन्य पात्र का 'स' के स्थान पर 'फ' का उच्चारण सजीवता और मनोरंजन की सृष्टि

करता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार "..... मैं निस्संकोच रूप से कह सकता हूँ कि देश, काल, अवस्था, पात्र, मनोवृत्ति सभी रूपों में कथोपकथन की भाषा जितनी समर्थ नागरजी की है, शायद ही सफलता की उस ऊँचाई को किसी ने छुआ हो।"\*\*\*

‘बूँद और समुद्र’ के निम्नलिखित उद्धरण उसकी भाषा-शैली की विशेषता प्रकट करेंगे—

“जो जिसकी-जिसकी समझ में आउत है वही करत हेंगे। कल को हमारे शंकर एमें पास करके अपसर होंयेंगे, उनकी बहुरिया पुरानी चाल से चले तो किरकिरी न होय?”  
(पुरानी चाल की खड़ी बोली)

“निगोड़ी सब की सब मेरी छाती पे ही मूंग दलने आये हेंगी। सात जलम की दुस्मन मरी, गली-गली घूमकर मेरे घर बच्चे पकरन आई रंडो।”

(ब्रज का पुट लिए हुए खड़ी बोली)

“कोतवाली को वैरलेस कर दिया हजूर ! मिरजाजी अटेण्ड कर रहे थे हजूर, तौन उन्होंने मिसेज दिया कि अस्पताल की गाड़ी भिजवाते हैं हजूर।”

(अंग्रेजी मिश्रित हिन्दुस्तानी)

“सुत जी बोलेम् कि हे जिजमान सुनौ, एक समय जो है सो नारदजी बैकुण्ठ लोक के बीच में लक्ष्मीपति बिस्नू भगवान् के पास जाय के कहत भएम् कि .....”

(कथावाचक पंडित की भाषा)

“न सही, हमका का करैका है। अरे सास्तरन माँ लिखा है कि कलजुग माँ यहै सब भिस्टाचार हुई जाई तौन झूठ ध्वारो है।” (कल्याणी की शुद्ध बैसवाड़ी, पृ. ४७६)

“दूसरा अपराध यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपने परम मित्र, सुप्रसिद्ध और सुयोग्य चित्रकर श्रीयुत सज्जन वर्मा के संपत्ति दान से ईर्ष्यालु होकर उनके उन सामाजिक आयोजनों का विरोध किया जो बरसों से मेरा आदर्श स्वप्न रहे हैं।”

(महिपाल की परिनिष्ठित खड़ी बोली, पृष्ठ ५८०)

“मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिये, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिये। मनुष्य को एक-दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिये। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी।”  
(संस्कृतनिष्ठ हिन्दी - पृष्ठ ५८३)

**शतरंज के मोहरे :** नागरजी के इस ऐतिहासिक उपन्यास की भाषा-शैली ने लखनऊ के नवाबों के हासशील जीवन को यथार्थ के साथ उभारने में विशेष भूमिका निभाई है। ‘शतरंज के मोहरे’ की भाषा इतनी कलात्मक और प्रसंगानुकूल है कि डेढ़



सौ वर्षों की नवाबी संस्कृति साकार हो उठी है। लेखक ने इतिहास की शुष्कता से बचाने के लिए कल्पना के किंचित स्पर्श के साथ ऐसी भाषा-शैली का प्रयोग किया है जिससे कृति की कथा रोचक एवं मनोरंजक बनी रहती है।

पात्रों से उनकी भूमिका के अनुसार भाषा का प्रयोग करवाने की कला में नागर जी माहिर हैं। यह उनका भाषा-कौशल ही है कि पात्रों का वर्गगत, वर्णगत या संस्कारगत वैविध्य पाठकों के सामने स्पष्ट हो जाता है। उनके हिन्दू पात्र हिन्दी या अवधी का प्रयोग करते हैं, अंग्रेज टूटी-फूटी हिन्दी बोलते हैं तथा मुस्लिम पात्र उर्दू का प्रयोग करते हैं। लेखक ने स्थान-स्थान पर अपने चिन्तन तथा विचारों को प्रगट करने के लिए परिनिष्ठित हिन्दी का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

“हम जियब न — मरा चहिति हैं। हमका भगवान के घर पठै देव। अउरु कुछु न सोचौ, मोर भला सोचौ।”  
(भुलनी की अवधी भाषा, पृष्ठ १२३)

“वेल, वेल, तुमलोग विलकुल बच्चा हाय, आपस में फिसाड करटा हाय। ..... कम आन माइ डालिंग्ज, मैं तुम्हारी नाइतफाकियों के बीच इतफाक का पुल बनती हूँ।”  
(अंग्रेजों की टूटी-फूटी हिन्दी, पृष्ठ ११२)

“साहबे-आलीशान अगर नवाब मुन्नाजान को असली हकदार तस्लीम करें तो मैं भी उनका हुक्म मानने में उन्न न करूंगी।” (बादशाह बेगम की उर्दू, पृष्ठ ३०६)

“पुण्य का फल पाप क्यों ? — विश्वास का फल विश्वासघात क्यों ? — हे सूर्यनारायण ! हे बजरंग, तुम झूठे हो। ईश्वर नहीं है, प्रेम नहीं है, आस्था नहीं है — सब मिथ्या ही मिथ्या है।” (दिविजय ब्रह्मचारी की परिनिष्ठित हिन्दी, पृष्ठ १५२)

कृति में भाषा की रवानगी, उसका सहज प्रवाह तथा पात्रानुकूल भाषा-प्रस्तुति से प्रमाणित होता है कि नागरजी भाषा के सिद्धहस्त कलाकार हैं। यत्र-तत्र मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग नागरजी की भाषा का सामान्य गुण है। उपन्यास की शैली ऐसी है जिससे अवध की भाषा के साथ तहजीब का भी आभास मिल जाता है।

**सुहाग के नूपुर :** तमिल महाकवि बौद्ध भिक्षु इलंगोवन कृत महाकाव्य “शिलप्पदिकारम्” की कथावस्तु पर आधारित होते हुए भी ‘सुहाग के नूपुर’ उपन्यास एक स्वतंत्र रचना है। लेखक ने कथानक को कल्पना के सहारे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। वातावरण की सृष्टि के लिए कुछ तमिल शब्दों का प्रयोग किया गया है परन्तु इनका अर्थ भी कोष्ठकों में दे दिया गया है। उदाहरणार्थ होथर (भाग्य देव), कलंजु (सिक्के), कासु (पैसा), पन्दल (ताड़ की पत्तियों से बनी चटाइयों का मण्डप), तूण्डावलक (लटकाए जाने वाले दीपक), पुएल्ला (प्रियतमा), नाडु (देश) आदि शब्द लिए जा सकते हैं।

इस उपन्यास ने नागरजी की भाषा-सामर्थ्य को प्रमाणित किया है। अपनी भाषा के बल पर वे अलग-अलग पात्रों का मनचाहा प्रभाव पाठकों पर डालने में समर्थ हुए हैं। उपन्यास के 'निवेदनम्' में लेखक ने लिखा है — “भाषा मिली-जुली सरल रखी है जिससे कि साधारण हिन्दी जानने वाले पाठक पढ़ सकें।”<sup>114</sup> कृति में भाषा को सहज रखने का प्रयास लेखक ने किया है परन्तु भाषा बिल्कुल सहज या सामान्य स्तर की भी नहीं मानी जा सकती।

लंबे, गंभीर और दर्शन की जटिलताओं से भरे प्रसंग उपन्यास में नहीं के बराबर हैं। भाषा की सहजता के साथ नागरजी की किस्सागोई शैली पाठक को बाँधे रखती है। भाषा का सौंदर्य इन उद्धरणों में देखा जा सकता है —

“जाड़े की धूप-सी सुहावनी बन मेरी ब्रिटिया ! अपनी माँ के प्रति यह उपेक्षा न पनपा, नहीं तो जो भी तुझे अपने मनोरंजन के लिए खरीदेगा तू उसी की प्रकट उपेक्षा करना सीख जायगी।”  
(सुहाग के नूपुर, पृष्ठ ४३)

“मुझे यह सोच-सोचकर ही आश्चर्य होता है कि किस प्रकार मैं इस....इस.... मन की घोर कुरूपा, संस्कारों को कोढ़िन, अहंकार के विष से भरी हुई नागिन के वशीभूत हो गया था। इसके कारण मैंने आज वह पाप किया जो मेरे समान कोई भी उच्चकुल का व्यक्ति बुद्धि-विवेक रखकर कदापि नहीं करेगा।” (सुहाग के नूपुर, पृ. ९८)

डॉ. सत्यपाल चुघ के अनुसार— “उसकी शैली अपनी वातावरण-विधायिनी विपुल शब्द-राशि से संयुक्त व्यावहारिकता, प्रसंगानुसार परिवर्तन-क्षमता, समुचित काव्यमयता, सहज प्रवहमानता तथा चरित्रानुसारी संवादों की गतिशीलता एवं नाटकीयता से कथा की गति त्वरा को सुरक्षित, अतीत को अंकित एवं अभीष्ट को संप्रेषित करने में समर्थ रही है।”<sup>115</sup>

**अमृत और विष :** नागरजी के उपन्यासों में 'अमृत और विष' ने जो विशेष ख्याति प्राप्त की है उसमें कृति की भाषा-शैली का महत्त्वपूर्ण योग है। सरल, चुस्त, कहावतों और मुहावरों से ओत-प्रोत भाषा के अतिरिक्त अलंकार युक्त भाषा का प्रयोग उपन्यास में मिलता है। भाषा का यह वैविध्य पात्रों के बौद्धिक धरातल के अनुसार है। लेखक ने अपनी विचारधारा या टिप्पणियों में साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार कृति में कहीं दुरुह, कहीं सहज, कहीं आंचलिक तो कहीं साहित्यिक भाषा प्रयुक्त हुई है। अधिकांश पात्र लखनऊ अंचल की भाषा का प्रयोग करते हैं। नागरजी ने यत्र-तत्र ऐसे उपयुक्त शब्द जड़ दिए हैं जिन्हें हटाया नहीं जा सकता। स्थान-स्थान पर तत्सम शब्दों के प्रयोग के साथ उर्दू, अरबी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती शब्द भी मिलते हैं। तद्भव और देशज शब्दों की उपन्यास में भरमार है। कुछ शब्दों के उदाहरण दिए जा रहे हैं—



शिशनजीवी, लोभ-लिप्सा, उच्चाकांक्षा, अहर्निशि (तत्सम शब्द)  
 प्राइवेट सेक्रेटरी, फ्लैट, ट्यूशन, इंडिपेंडेंट, ब्लडी (अंग्रेजी शब्द)  
 रोजमर्राह, पेचीदा, मामला, खिदमतगार, दरअसल (अरबी-फारसी या उर्दू शब्द)  
 गुन, धरम, इत्ते, घुमाउन, मूँ, चौकस (देशज तथा तद्भव शब्द)

मराठी फिल्मी गीत तथा गुजराती कवि नर्मद की पंक्तियाँ भी उपन्यास में उद्धृत हैं। कहावत और मुहावरों का यथोचित स्थानों पर प्रयोग करके नागरजी ने अपनी भाषा में जान डाल दी है। बैठे ठाले की लड़ाई, हाथ पीले करना, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, दीगरा नसीहत, खुदरा फजीहत, लाट साहब का बच्चा होना आदि अनेक मुहावरे उपन्यास में प्रयुक्त हुए हैं।

आलंकारिक भाषा कई स्थलों पर प्रभाव की सृष्टि करती है —

“मनुष्यता पर पशुता की यह जीत जब कभी किसी व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन में नई जकड़न से घुटन-तपन लाती है, तभी बहुत संयत और गंभीर होते हुए भी मेरा मन तोप के गोले की तरह बाहर छूट ही पड़ता है। होश अंतरिक्ष में विलीन हो जाते हैं और हर विचार, हर संस्कार, हर भावना अपने केन्द्रीय संगठन से अनियन्त्रित होकर, विलुप्त बिन्दु को अनुमान करके उसके कहीं इर्द-गिर्द बेतहाशा चक्कर लगाती है।”

(अमृत और विष, पृष्ठ ६४२)

आंचलिक स्पर्श के साथ तद्भव शब्दों से भरी पुत्ती गुरु की भाषा भी कम प्रभावशाली नहीं है —

“दीनानाथ, आपके भरोसे पर जोग साधे बैठा हूँ। समधी साला मेरी इज्जत लेने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहा। दिन भर रसुइयाँ भिनकती रही, भौंग-ठण्डाई का टेम भी निकाले दे रहे हैं ससरे। चौदा रूपों की लागत लग गई है।”

(अमृत और विष, पृष्ठ ७६)

उपन्यास की भाषा प्रवाहपूर्ण है। पात्र और विषय के अनुकूल भाषा में सरसता के साथ ओज और व्यंग्य की शक्ति है। कृति की लच्छेदार भाषा पाठक को मंत्रमुग्ध कर लेती है।

इस वृहदाकार उपन्यास की वर्णनात्मक, नाटकीय, काव्यात्मक तथा विवेचनात्मक शैली भाषा के वैविध्य को प्रभावी बनाती है। लेखक की विचारपरक पंक्तियाँ कविता का सा आनन्द देती हैं —

“दुनिया अब अपने पूर्व रूप से बिलकुल भिन्न हो चली है। विश्वात्मा अब अपने-आपको नव नैतिक सौन्दर्य के धरातल पर उतार रहा है। मनुष्य अंतरिक्ष में उड़ने लगा है।”

(अमृत और विष, पृष्ठ ६४८)

इस प्रकार नागरजी की प्रौढ़, विकसित, सुघड तथा कलात्मक भाषा-शैली इस उपन्यास को गरिमा प्रदान कर देती है।

**सात घूँघट वाला मुखड़ा :** नागरजी के इस लघु उपन्यास की भाषा उर्दू की मिठास तथा रवानगी से युक्त है। पात्रों के स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करवाकर नागरजी वातावरण की सृष्टि में सफल हुए हैं। भाषा-शैली मनोरंजक एवं कवित्वपूर्ण है। इस रोचक उपन्यास की भाषा-शैली पाठक के मन को इस तरह बाँध लेती है कि उपन्यास को पूरा पढ़े बिना उसे चैन नहीं मिलता।

उपन्यास में उर्दू शब्दों की भरभार है परन्तु उपन्यासकार के विचार परिनिष्ठित हिन्दी में ही मिलते हैं —

“जुआना के लिए अंधेरे के कण-कण में उजाला भर गया था। अपने प्रति पुरुष का ऐसा समर्पण पाकर उसका नारी-हृदय पिघल-पिघल उठने को हुआ मगर ऐन मौके पर स्वानुशासन से कस उठा।” (सात घूँघट वाला मुखड़ा, पृष्ठ २६)

“लब्बू मियाँ बहादुर है, जवांमर्द है और बला का खूबसूरत है, मगर यह क्यों भूलती हो कि वह बेहद जज्वाती और जिद्दी भी है। नादान दोस्त से दाना दुश्मन भला होता है मुन्नी ! तुम हुस्न में छिपे हुए बन्दर को पाल रही हो।”

(सात घूँघटवाला मुखड़ा, पृष्ठ १८)

“याद रखो दिलाराम, कि सियासत भी पेशेवर रक्कासा होती है। उसके पास दिल नहीं होता। और हुस्न की मलिका, ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाए बगैर तख्तोताज की मलिका बन ही नहीं सकती।” (सात घूँघट वाला मुखड़ा, पृ. १३)

इन उद्धरणों में उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग यह प्रमाणित करता है कि नागरजी का उर्दू भाषा पर अधिकार रहा है।

**एकदा नैमिषारण्ये :** इस पौराणिक उपन्यास में लेखक ने पुराण शैली अपनाकर कथा को प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मकता से युक्त शैली उपन्यास की उद्देश्य-प्राप्ति में सहायक है। उपन्यास में प्रसंगानुकूल भाषा के विभिन्न रूप परिलक्षित होते हैं। भाषा की सहजता, स्वाभाविकता और प्रवाहमयता के कारण ऐतिहासिक प्रसंगों का विवेचन शुष्क प्रतीत नहीं होता। शास्त्रार्थ के प्रसंगों में, दर्शन के विवेचन में या लेखकीय विचारों की अभिव्यक्ति में गंभीर और चिन्तन-प्रधान आलंकारिक भाषा की छटा भी उपन्यास में मिलती है। लंबे-लंबे वाक्यों की संस्कृतनिष्ठ भाषा अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है—

“चेतना के इस प्रलय काल में महाभारत रूपी मनु की नाव निर्मित करनेवाले हे महाप्राण ऋषि श्रेष्ठ ! हमारे घर को अपनी अवतरण स्थली बनने का सौभाग्य प्रदान



करके इस भार्गव कुलभूषण आयुष्मान् ने मुझ पुत्रहन्ता अभिशप्त पुरुष को अचेतावस्था में किए गए जघन्य पाप से मुक्त किया है।” (एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ३७८)

पात्रानुकूल भाषा प्रयोग के लिए प्रथम पृष्ठ पर ही ब्रज की स्थानीय बोली का प्रयोग किया गया है—

“मैने तुमसे एक बार कह दीनी म्हराज, दस बार कह दीनी के जे चबड़-चबड़ अब बन्द करो अपनी, जामें कछु लाभ नायें धरो — अरी मौड़ियों, खड़ी-खड़ी म्हौ का देखो हो मेरो, छीनो इनकी बीना और खड़ाऊँ।” (एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ १)

नैमिष और लखनऊ के निकटवर्ती क्षेत्र की अवधी का प्रयोग—

“प्रज्ञा देवी ते कहि दीन जाय म्हराज अकि ससुरारे लौटि जायँ। उनका भतार नागहत्या किहिस है, तौन हियाँ बड़े-बड़े जोगी सुनि के बड़े रिसाने हैं।”

(एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ६४)

भाषा की अलंकारिकता तथा काव्यात्मकता भावों को सफलता के साथ व्यक्त करती है —

“खोटा है यह आत्मविश्वास। जब पानी बरसता है तब मैदान भी झील बनकर इतराने लगता है, फिर थोड़ी ही देर में उसकी वास्तविकता अनावरित हो जाती है; फिर अपनी लाज ढँकने के लिए वह मेह-मेह पुकारने लगता है।”

(एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ३९०)

उपन्यास में मुहावरों और लोकोक्तियों का सफल प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। भाषा अपनी व्यंजना में समर्थ है तथा अपने विविध रूपों में नागरजी की क्षमता को प्रमाणित करती है।

**मानस का हंस :** सरल, बोधगम्य, मुहावरेदार तथा स्थानीय रंगत से रंगी हुई भाषा का प्रयोग इस उपन्यास में किया गया है। पात्रों एवं प्रसंगों के अनुसार क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग की नागरजी की विशेषता इस कृति में भी देखी जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि जो जन-भाषा ग्राम्य दोष के कारण त्याज्य थी उसी के सहारे सांस्कृतिक परिवेश का गठन करते हुए नागरजी ने अपने महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक उपन्यासों की रचना की है। ‘मानस का हंस’ इस बात का प्रमाण है। राजापुर के आस-पास की उर्दू मिश्रित अवधी का प्रयोग लेखक ने कई पात्रों से करवाया है। एक उदाहरण—

“तुम तौ हम पंचन को छोड़ि के चले गए, ऊ तौ जनम-भर हमारे ही साथ रही। सब लोग बाजे-गाजे से बिमान-उमान बनाय के जनाजा ले जैहें। देर-सबेर होय तौ बोलना मत। यह हमार अरदासौ है और हुकुमो है।” (मानस का हंस, पृष्ठ १८)

स्त्रियों, बच्चों और बड़े-बुजुर्गों की संवेदना प्रकट करने वाली नागरजी की भाषा का वैशिष्ट्य इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

“हाय अजिया, हाय मोर मैया” कहकर मैया से संबंधित अपने-अपने संस्मरणों को सूत्रवत् बट-बट कर लुगाइयाँ आपस में रोने का दंगल चला रही थीं : “अरे नन्दुआ का जब जर चढ़ा रहा तब तुम्हें बचायौ, अब को बचाई ? ..... हमार सोना और रूपा के बियाहन माँ सब भम्भड़ तुमहें निबटायो। अब हमार मोतिया का को पार लगाई ?”

(मानस का हंस, पृष्ठ १८)

कृति में लेखक का चिन्तन संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में व्यक्त हुआ है—

“पिंगलवर्णी मस्तक पर जटाजूट से प्रवाहित पावन गंगाजल, विशाल अरुणाभ नेत्रों की ज्योति की दमक, ललाट पर द्वितीया का चन्द्र, भस्मीभूत, सर्पभूषित, दिग्म्बर वेशधारी, परमकल्याणकारी शिव भोलानाथ गोसाईं बाबा की आँखों के आगे खड़े श्रृंगी बजा रहे थे, जिसकी गूँज उनके रोम-रोम में अद्भुत नाद जगा रही थी।”

(मानस का हंस, पृष्ठ १०४)

‘मानस का हंस’ में एक बंगाली और एक मराठी पात्र भी है। इन पात्रों की हिन्दी में उनकी प्रादेशिक भाषा का असर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

तांत्रित पंडित रविदत्त की बंगला-प्रभावित हिन्दी—

“हामको आप चुप नहीं कोरने शकता मोहोंत जी। हामको माँ बोला जे तुलशीदाश भोण्डो दगाबाज के दोण्ड दाओ रोबीदत।” (मानस का हंस, पृष्ठ १०४)

धोंडू फाटक की मराठी-मिश्रित हिन्दी —

“दूध विनायक पर मेघा भगत का भंडारा म्हणजे किसी धनी ने अकरा प्रकार चे मिष्ठान आणि नाना प्रकार के बररस व्यंजन जिमाने का उत्साह दिखलाया है।”

(मानस का हंस, पृष्ठ १२३)

नागरजी की भाषा कई भावपूर्ण प्रसंगों में काव्यमयी हो गई है—

“उनकी दृष्टि किसी दूरागत दृश्य को देख रही थी। स्मृति लोक में नगाड़े बज रहे थे और अंधकार क्रमशः उजाले में परिवर्तित होता चला जा रहा था। मनोदृष्टि में हिमाच्छादित कैलास पर्वत और मानसरोवर का परमपावन और सुहावन दृश्य झलका। नगाड़ों की ध्वनि मानो हर-हर कर रही थी।”

(मानस का हंस, पृष्ठ १८४)

नागरजी ने जन-समूह के विविध वर्गों से घुल-मिलकर उनके भाषा तत्त्वों की मेहनत से खोज की है। इस उपन्यास में भी काशी, सोरों, राजापुर, चित्रकूट आदि स्थानों की लोक-भाषा के प्रचलित शब्द पात्रों के वार्तालाप में मिलते हैं।

अतः ‘मानस का हंस’ की भाषा-शैली यदि भक्ति रस से आप्लावित करती है



तो हास्य और व्यंग्य के छोटों के साथ तुलसी के सम्पूर्ण जीवन प्रसंगों को प्रभावपूर्ण बनाती है। उसमें कविता और गद्य का एक साथ आनंद मिलता है। मुहावरों के साथ-साथ अनेक स्थानों पर उपमाओं का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

उपन्यास की अतीत कथाएँ पूर्वदीप्ति शैली में कही गई हैं। कई स्थानों पर वर्णनात्मक शैली के स्थान पर नाटकों या चित्रपटों की दृश्यात्मक शैली का प्रयोग मिलता है।

**नाच्यौ बहुत गोपाल :** अपने पात्रों को सजीव एवं विश्वसनीय बनाने के लिए नागरजी अपने उपन्यासों की भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग करने में कुशल हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास इस बात का प्रमाण है। इस कृति में उपन्यासकार ने अपने को अंशुधर शर्मा के रूप में उपस्थित कर कथ्य को प्रभावशाली बना दिया है। अंशुधर शर्मा के तीन रूप उपन्यास में हैं — पत्रकार का रूप, मध्यवर्गीय पति का रूप तथा कथाकार का रूप। नागरजी ने अंशुधर शर्मा के तीनों रूपों की भाषा को एक जैसी नहीं रखा है। सर्वत्र खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करते हुए भी वे पत्रकार के रूप में सरल, साफ-सुथरी पत्रकारिता की भाषा का ; गृहस्थ के रूप में प्रचलित खड़ी बोली का तथा कथाकार के रूप में चित्रात्मक-सर्जनात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ—

“मैं आपकी भावना का आदर करता हूँ पर अपने सिद्धान्त से भी मजबूर हूँ। काम के समय नशा नहीं करता। दूसरे, यहाँ से पी के निकलना मेरे लिए उचित नहीं होगा।”  
(पत्रकार अंशुधर शर्मा की भाषा, पृष्ठ १९)

“इस समय विचारों का स्वाद आ गया है रानी। बस कमरे में मेरा खाना लाके रख दो और आराम से लिहाफ में मुँह लपेटकर सो जाओ।”

(गृहस्थ अंशुधर की भाषा, पृष्ठ २०)

“मेहतरों को इस बात का भी घोर मानसिक कष्ट है कि हरिजनों में भी मेहतर वर्ग निकृष्ट कोटि का हरिजन है। उसकी आवाज अभी नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह ही बेसुनी रह जाती है।”  
(कथाकार अंशुधर शर्मा की भाषा, पृष्ठ ३२०)

भाषा का आकर्षक स्वरूप कथाकार द्वारा सृजित पात्रों की बातचीत में दिखाई पड़ता है। भंगी समाज की भाषा का वैविध्य भी उपन्यास में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

“निसपिट्टर साहब आ जाएंगे तो पहले खाल ही उधेड़ेंगे हमारी तुम्हाई और नौकरी लेंगे सो घाते में। पक्के इक्कावन बिसुवे का हैगा हमारा बाम्हन निसपिट्टर।”

(सफाई जमादार की भाषा, पृष्ठ १०४)

“अरी नादान, ये कलयुग है कलयुग। बूटीफुल औरत मर्दों के लिए कचालू-

मटर की चाट होती है। फिर ऊपर से सुद्धी-तबलीग वाले हरामी लोग अपने शिकार ढूँढ़ते डोलते हैं।”

(मसीताराम की भाषा, पृष्ठ १६७)

निर्गुनियों की भाषा के विविध रंग उपन्यास में परिलक्षित होते हैं। ब्राह्मण परिवार के संस्कारवश संस्कृत के शब्दों तथा श्लोकों का उच्चारण अशुद्ध रूप में ही सही पर अस्वाभाविक नहीं लगता। साथ ही भंगी जीवन के संस्कारों का घाल मेल उसकी भाषा को भी प्रभावित करता है —

“बस यों समझ लीजिए कि उस साले हरामी के पिल्ले, मेरे आर्य पुत्र ने चार मंजिल की पक्की संगीन हवेली बनवायी थी।”

(नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ ५८)

निर्गुण की भाषा का एक रूप उसकी नोट बुक में लिखी आत्मकथा में देखा जा सकता है—

“आज संवत् इक्तीस की बड़ी धूम है। हम निर्धनों के घर में एक ही तो ठाकुर जी विराजमान होते हैं और सो भी जब से छापे का चलन चला तब से। मेरा कहने का आसै यह है कि गोसाईं जी महाराज की रमायन ही सबसे जीता जागता देवता है।”

(नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ ४३)

नोटबुक में लिखी आत्मकथा का सम्पूर्ण अंश पाठक को निर्गुण का लिखा ही प्रतीत होता है, उसे यह भ्रम नहीं होता कि यह भाषा उपन्यासकार की नहीं है। यह नागरजी के भाषा-कौशल का ही चमत्कार है। नागरजी ने यथार्थ जीवन से भाषा को यथावत् ग्रहण कर पात्रों से उसका प्रयोग करवाया है। पात्रों की बातचीत में यत्र-तत्र गालियों का खुलकर प्रयोग हुआ है जो असाहित्यिक होते हुए भी स्वाभाविक लगता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस कृति की भाषा आदि से अंत तक रस में डूबी हुई है। उपन्यास की भाषा के संबंध में डॉ. नन्द किशोर नवल के शब्दों में कहा जा सकता है — “ऐसी रस और आवेश से भरी हुई हिन्दी भाषा, साढ़े तीन सौ पृष्ठों तक एक रस चलने वाली दुर्लभ है। इस भाषा में प्रसंग और पात्रों के अनुसार अनेक “शेड्स” हैं जिससे पाठकों को कभी ऊब नहीं होती। पाठक नाना प्रकार की भाव तरंगों में उठता-गिरता धक्के खाता बहता चलता है।”

नागरजी के पात्र मूल शब्दों को लोक प्रचलित रूप में इस्तेमाल करते हैं—

तुम्हारे (तुम्हारे), चच्चा (चाचा), गिरिस्ती (गृहस्थी), दिमाक (दिमाग), अकिल (अक्ल), बूटीफुल (ब्यूटीफुल), सुरगवासी (स्वर्गवासी), बामहन (ब्राह्मण), वैफ (वाइफ) आदि शब्द उपन्यास में प्रयुक्त हुए हैं।

अंग्रेजों के मुँह से हिन्दी का उच्चारण यथावत् प्रस्तुत किया गया है—

“टुमारा वाइफ इंगलिश बोलने शकटा। टुम नई बोलने शकटा। हू टाट यू इंगलिश मिसिज मोहन?”

(नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ १२६)



हिन्दी, अंग्रेजी तथा ग्रामीण शब्दों से युक्त मुहावरेदार भाषा के अतिरिक्त हास्य, व्यंग्य तथा रोमांस से युक्त यथार्थ-प्रस्तुति नागर जी की भाषा-शैली को सजीव बना देती है। ममता कालिया के अनुसार - "इस उपन्यास की भाषा जिन्दगी से लबरेज, संघर्ष से रगड़ खाती हुई भाषा है। निहायत बोलचाल का अन्दाज ठेठ घरेलू शब्द-प्रयोग नागरजी की विशेषता है। मेहतरों की जिन्दगी का पूरा प्रामाणिक तापमान, उनका गाली-गलौज, रीति-रिवाज, रहन-सहन और धौल-धप्पे का माहौल, इस रचना में पारे सा उतर आया है।" १९८

**खंजन-नयन :** खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मधुर संगम 'खंजन-नयन' की भाषा का वैशिष्ट्य है। रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास तथा अनुप्रासों की छटा से जड़ी हुई भाषा नागरजी के गद्य में भी काव्य का आनंद दे देती है। छोटे-छोटे सूत्रात्मक वाक्य भी अपने अंतःकरण में विशिष्ट अर्थवत्ता सँजोए हुए देखे जा सकते हैं—

"फाँस की तरह चुभ रहा है यह सन्नाटा। कैसी विवशता है कि पैर तो अपनी शक्ति और तेजी से ही गति करते चले जा रहे हैं, परन्तु लगता है कि जैसे वह घसीटा जा रहा है।"

(खंजन-नयन, पृष्ठ ८३)

"पाँव पंख लगाकर उड़े जा रहे हैं और मन पंख कटे पक्षी सा गुमसुम है।"

(खंजन-नयन, पृष्ठ ८२)

"भूकंप के समय भी एक रुनुकता ही ऐसी बस्ती थी जहाँ भव-क्रंदन के बजाय 'हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो' का सामूहिक कीर्तन हो रहा था।"

(खंजन-नयन, पृष्ठ १८०)

कंतो की ठेठ ब्रजभाषा की बानगी—

"कई दिना ते मेरे पीछे पड़ो है निगोड़ो। मैंने बा ते कह दीनी है कि मैं दूसरीन जैसी नांय। एक दिना बाको हाड़ पांजर अपनी लाठी से तोड़ दऊ हूँ पैले से, फिर मती कहियो कि चिताई नांय।"

(खंजन-नयन, पृष्ठ १०८)

स्थान-स्थान पर पात्रानुसार अवधी भाषा का भी प्रयोग मिलता है। मुस्लिम पात्रों की उर्दू मिश्रित खड़ी बोली के अलावा ग्रामीण पात्रों की भाषा में देशज शब्दों का इस्तेमाल उपन्यास की भाषा को सजीव बना देता है। महाप्रभु की परिनिष्ठित दार्शनिक भाषा का अपना आकर्षण है—

"जिस दिन तुमलोग बहिर्मुख हो जाओगे, उसी दिन काल का प्रवाह तुम्हें बहा ले जायगा। श्री कृष्ण लौकिक नहीं हैं, केवल लौकिक भाव को मान्यता भर देते हैं। वह तुम्हारी एक मात्र लौकिक और पारलौकिक संपत्ति हैं। मन-प्राण और देह से उन्हीं गोपेश्वर को भजो, उनकी सेवा करो। वे चिर मंगलमय हैं।" (खंजन-नयन, पृ. २१०)

नागरजी ने कृति में शैली की विभिन्न पद्धतियों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। कहीं वे तटस्थतापूर्वक निवेदन करते हैं, कभी आत्मवृत्तात्मक शैली का प्रयोग करते हैं तो कभी अतीत का सर्वेक्षण करने हेतु पूर्व-दीप्ति पद्धति, आत्मालाप शैली का सहारा लेते हैं। शैली की यह विविधता कथ्य की माँग के अनुकूल ही है। 'खंजन-नयन' की विशिष्ट भाषा-शैली ब्रज-जीवन के संपूर्ण चित्र को रंग-रूप-गंध के साथ पाठक के हृदय पटल पर अंकित कर देने की विलक्षण क्षमता से युक्त है।

**बिखरे तिनके :** भाषा शैली की दृष्टि से लघु उपन्यास 'बिखरे-तिनके' पाठकों को बाँध रखने की क्षमता से सम्पन्न है। इस उपन्यास में खड़ी बोली हिन्दी के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर अंग्रेजी शब्दों एवं प्रचलित उर्दू शब्दों का प्रयोग मिलता है। नागरजी की चुटीली भाषा अपनी व्यंग्य-सामर्थ्य को सिद्ध करती चलती है। पात्रों के अनुसार भाषा का प्रस्तुतिकरण कथा को जीवन्त बना देता है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

“तरक्की करते-करते हेल्थ अफसर के पी. ए. के पद पर पहुँचे, चींटा भँसा बनकर रिटायर हो रहा है।”  
(बिखरे तिनके, पृष्ठ ६)

“तब तक गुरसरन बाबू ने पण्डित जटाशंकर का दरबार भी साध लिया था। इस बीच में एच. ओ. खरोंचें तो बहुत मारते रहे पर उन्हें घायल न कर पाये।”  
(बिखरे तिनके, पृष्ठ ७)

कुंवरानी साहिबा की ठकुरेती अहंता सतीत्व की अग्निमणि का मुकुट धारण कर बोल उठी।”  
(बिखरे तिनके, पृष्ठ ८९)

“जब शेर निकल गया तो दफ्तरी चिड़ियाँ चहचहाने लगीं।”  
(बिखरे तिनके, पृ. ९६)

“हाँ मेरा सो-काल्ड हसबेण्ड भी यही कह रहा था।” (बिखरे तिनके, पृ. ५२)

“पुलिस की सात पुश्तें भी हमारा पता न पा सकेंगी। लेकिन बबलू साले की गद्दारी भी मैं नहीं भूलूँगा। मुख में राम बगल में छूरी।” (बिखरे तिनके, पृष्ठ ७७)

'बिखरे-तिनके' की भाषा-शैली की व्यंग्यात्मकता तथा रोचकता अपनी भाव-धारा में पाठक को बहा ले जाती है। भ्रष्टाचार और राजनेताओं की दोमंही नीति की विद्रूपता को प्रकट करने में भाषा-शैली विशेष सहायक सिद्ध हुई है।

**अग्निगर्भा :** प्रस्तुत उपन्यास की भाषा सहज, रोचक तथा चुटीली है। उपन्यास के नायक रामेश्वर की भाषा गालियों से युक्त है। वह अपनी बात-चीत में 'साली', 'पाजी', 'कमीनी' जैसे शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग करता रहता है—

“अरे उल्लू की पट्टी है साली। खैर जैसी भी है, शी इज आल राइट फार यू।”  
(अग्निगर्भा, पृष्ठ ६३)



“मम्मी मूर्ख हैं और बप्पा जी — बप्-पाजी हैं” .... इस मामले में मेरे बप्पा जी जैसे पाजी हैं वैसे तुम्हारे पप्-पाजी भी हैं। ये उल्लू के पट्टों की ओल्ड जेनरेशन हमलोगों को भी अपने ही जमाने में घसीट ले जाती है।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ ८४)

रामेश्वर की अपशब्दों से भरी भाषा उसे खलनायकत्व प्रदान करने में सहायक है। दहेज के कारण प्रताड़ित नारी का शोषण करने वाले रामेश्वर का विकृत रूप उपन्यास की जरूरत के मुताबिक ही प्रस्तुत किया गया है। नागरजी ने रामे की माँ, सीता की माँ, मिथिलेश आदि से ठेठ बैसवाड़ी का प्रयोग करवाया है—

“तुमरी दाँत घिसाई के फीस। तुम्हार जइस हीरे-मोतिन ते जड़ा नौलखा दमाद का कोहू का आसानी से मिल जात है। जियौ भइया, खूब-खूब तरक्की करो तुमदोनों। दूधन कुल्ले करो।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ ६२)

उपन्यास के मुसलमान पात्र उर्दू का प्रयोग करते हैं—

“जब पाकिस्तान बना तभी हमारे अब्बा ने कहा था कि अब्दुल गनी सब जा रहे हैं, तुम भी चले जाओ। ये साले हिन्दुओं की कौम निहायत बदज़ात है। कमीन कमीनतर है साली।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ ४६)

उपन्यास की नायिका सीता की भाषा में यद्यपि प्राध्यापिका की बौद्धिकता का आभास नहीं मिलता परन्तु उसके विचार निश्चित रूप से उसके व्यक्तित्व के अनुरूप हैं—

“कर्जा-कर्जा-कर्जा। उन्हें अपने कर्जे की चिन्ता है, तो मुझे अपने कैरियर की। आखिर मेरी भी कुछ अपनी सत्ता है। पढ़ना चाहती हूँ। पढ़ाई से जुड़ी रहना चाहती हूँ। मेरे जीवन के हर कदम माँ-पिता के कहने पर ही नहीं चल सकते।” (अग्निगर्भा, पृ. ८)

भाषा में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा आलंकारिकता भी यत्र-तत्र मिल जाती है—

“मन उबले हुए दूध-सा बाहर निकला-निकला पड़ रहा था। बड़ी कठिनाई से उसने अपने आप पर संयम पाया।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ १३५)

यह कहा जा सकता है कि ‘अग्निगर्भा’ उपन्यास में भाषा-शैली की दृष्टि से रोचकता और सहजता तो है परन्तु गंभीर मार्मिक प्रसंगों एवम् हास्य के रोचक प्रसंगों का सर्वथा अभाव है।

करवट : नागरजी के वृहत् उपन्यासों में ‘करवट’ का अपना अलग वैशिष्ट्य है। इस कृति में व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले परिवर्तन से लेकर अवध की ठेठ घरेलू जिन्दगी और उसकी मान्यताओं में होने वाले बदलाव को प्रस्तुत किया गया है। अवध के जीवन को साकार करने के लिए उपन्यासकार को अपने प्रिय अंचल लखनऊ का सजीव एवं संश्लिष्ट वर्णन करने का अवसर मिल गया है और वहाँ के

चौक, गली, मुहल्ले, टीले आदि एक बार फिर जीवित हो उठे हैं। पात्रों की भाषा ने वर्णन को आकर्षक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उपन्यास का 'फोकस' केवल लखनऊ तक ही सीमित नहीं रहता; वह कलकत्ता, लाहौर तक भी पहुँचता है तथा १८५० से १९०५ तक के विविध धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलनों को भी समेट लेता है। यह वह काल था जब भारत पर अवध के नवाबों के पतन के बाद अंग्रेजी साम्राज्य का आधिपत्य हो गया था। इस प्रकार विभिन्न राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाक्रमों को समेटने वाले इस महाकाव्यात्मक उपन्यास में विविध भाषाओं और बोलियों का व्यवहार करने वाले पात्रों की बड़ी संख्या स्वाभाविक रूप से मिल जाती है।

अंग्रेज और मुस्लिम पात्रों के अलावा हिन्दू समाज के विविध वर्गों के पात्र भी उपन्यास में आए हैं। पात्र एवं परिवेश के अनुसार नागरजी की भाषा की विविधता 'करवट' में देखी जा सकती है— लखनऊ अंचल की अवधी—

“तुम ई जान लेव तनकुन भैया की साल में दुई-तीन फेरे हम नवाबगंज के लगावत हेंगे, हमरे देवर भी जात हेंगे।” (करवट, पृष्ठ ३८)

ठेठ बैसवाड़ी का उदाहरण—

“हाँ भइया, कबहूँ मूडौ न पिरावा उनका, मजे से गल्ले की दलाली करत रहें। भगवान हमका कौनौ लड़का-बिटिया नहीं दिहिन, बाकी तुमरे चाचा हमका ऐसा हाथन पर रक्खिन रहा कि तुमसे क्या कहें।” (करवट, पृष्ठ ३९)

तीनकोड़ी की बंगला-मिश्रित हिन्दी—

“एके बारे आमरा बाड़ी ते आपनार पायेर धूला पोड़ जाए शाएब.....”

(करवट, पृष्ठ ८६)

पिन्काट की अंग्रेजी मिश्रित टूटी-फूटी हिन्दी—

“मि. टीन कोरी, कल मॉनिंग में हमारा पास साहेब का रिसीट लेकर टोमार आदमी पहुँच जाय।” (करवट, पृष्ठ ८६)

हाशिम मियाँ की बोली में उर्दू-फारसी प्रभाव—

“इस महीने यकशांवा आठवीं को दोपहर से फौजें फिरंगी तकसीम पर कारतूसों के बिगड़ गई। जंगोजदल की ठहर गई। सब फौज मूसाबाग में ईसाइयों के कत्ल को यकजां हुई। अब्वल हैबतों पर हैबत गलिबेसिवा हुई।” (करवट, पृष्ठ ११८)

तत्कालीन शिक्षित युवकों की अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी—

“नो-नो, पापा आप ओवर इमोशनल हो रहे हैं। हम सब आपके आशीर्वाद से बहुत सुखी हैं।” (करवट, पृष्ठ ३११)



नागरजी की भाषा की रवानगी तथा अभिव्यक्ति-कौशल के उदाहरण भी 'करवट' में मिलते हैं—

“राय साहब का मन अपनी ध्यानलीनता के भ्रमजाल से छिटका तो कहीं भी न लगा। वह एक ऐसे शून्य में विचर रहे थे जिसका कहीं ओर-छोर ही नहीं मिलता था।”

(करवट, पृष्ठ ३३५)

“इस निश्चय के एक चुल्लू जल से पति-पत्नी ने अपने लपटों भरे मनों की आग मानों बुझा दी।”

(करवट, पृष्ठ २४५)

उपन्यासकार ने कृति का सामाजिक और ऐतिहासिक आशय व्यक्त करने हेतु सहज, एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है। परिनिष्ठित हिन्दी या संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से उसने कृति को लगभग मुक्त रखा है। दार्शनिक या उबाऊ प्रसंग भी कम हैं। विचार अथवा जीवन दर्शन व्यक्त करने वाले प्रसंगों की भाषा भी सरल है।

उपन्यासकार ने वर्णनात्मक एवं विवेचनात्मक शैली में उपन्यास को प्रस्तुत किया है। कृति को रोचक बनाने के लिए उसने इतिहास की घटनाओं का वर्णन तो किया है परन्तु अधिकांश पात्र कल्पना से सृजित किए हैं। यही कारण है कि उपन्यास में इतिहास की शुष्कता नहीं है और भारतीय समाज-जीवन की प्रभावी परिवर्तन-कथा ऐतिहासिक भूमिका में अंकित कर दी गई है। कृति की भाषा शैली ने इस समाज-इतिहास को प्रभविष्णु बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागरजी के उपन्यासों की भाषा अपनी विविधता, जीवंतता तथा मधुरता से पाठक को आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता से संपन्न है। उसमें जीवन की विविध स्थितियों के साथ-साथ पात्रों की मनः स्थितियों को व्यक्त करने की सामर्थ्य है। उनकी समृद्ध भाषा की अपूर्व शक्ति ने कृतियों एवम् पात्रों की प्रभविष्णुता को द्विगुणित कर दिया है। डॉ. देवीशंकर अवस्थी के अनुसार—

“भाषा और चरित्र की नागरजी के पास अद्भुत शक्ति है। नगरों में बोली जानेवाली भाषा की शब्द योजना, पदावली और वाक्य गठन उन्होंने भीतर से अपनाया है। संभवतः प्रेमचन्द के बाद इतने विराट् चित्र के भीतर ऐसी सहज भाषा का प्रयोग विरल है। ..... इस भाषा के भी विविध स्तर हैं और ग्रहणशील लेखक इन सबको रेकार्ड करता चलता है।”<sup>११</sup> नागरजी बोलचाल की मुहावरेदार भाषा के आचार्य माने जा सकते हैं। उनकी भाषा की स्वाभाविकता पाठक को आकर्षित करती है।

नागरजी के उपन्यासों का भाषा की दृष्टि से समृद्ध होना अकारण नहीं है। मातृभाषा गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के वे अच्छे ज्ञाता रहे हैं। तमिल और संस्कृत की भी उन्हें पर्याप्त जानकारी रही है। नागरजी ने यत्नपूर्वक विभिन्न भाषायें सीखी थीं। भाषा-संबंधी इस ज्ञान ने उनके लेखकीय

आत्मविश्वास को बढ़ाया था, इस बात को उन्होंने अपने एक लेख में स्वीकार भी किया है— “उन दिनों हिन्दी वालों में बंगला पढ़ने का चलन तो किसी हद तक था लेकिन अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य हमारी जानकारी में प्रायः नहीं के बराबर ही था। इसी तड़प से मैंने अपने देश की चार भाषाएँ सीखीं। आज तो दावे से कह सकता हूँ कि लेखक के रूप में आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए मेरी इस आदत ने मेरा बड़ा ही उपकार किया है। विभिन्न वातावरणों को देखना, धूमना, बहुश्रुत और बहुपठित होना भी मेरे बड़े काम आता है। यह मेरा अनुभवजन्य मत है कि मैदान में लड़नेवाले सिपाही को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए जिस प्रकार नित्य कवायद बहुत आवश्यक है उसी प्रकार लेखक के लिए उपरोक्त अभ्यास भी नितान्त आवश्यक है।”<sup>१२०</sup>

विविध प्रदेशों की भाषा ही नहीं हिन्दी प्रदेश की बोलियों पर भी नागर जी का पूर्ण अधिकार रहा है। ब्रज, अवधी, बैसवाड़ी, भोजपुरी आदि भाषाओं के ठेठ प्रयोग उनके पात्रों ने किए हैं। नागरजी ने इन भाषाओं और बोलियों को बड़ी अंतरंगता से ग्रहण किया है तभी तो उनके पात्रों की अभिव्यक्ति, लहजा तथा स्थानीय रंगत सब मिल-जुलकर विशेष प्रभाव डालते हैं। अज्ञेयजी ने नागरजी की भाषा की चर्चा करते हुए लिखा है कि भाषा के प्रति नागरजी के कान बहुत सजग हैं और भाषा का नागरजी के लिए एक स्वतंत्र आकर्षण भी है। ..... उनकी भाषा की तरह-तरह की ध्वनियाँ हैं, उसके काकु हैं, इन सबको सुनना, उनको पकड़ना भी उन्हें अच्छा लगता है।<sup>१२१</sup>

प्रत्येक पात्र के अंतःकरण में पैठकर उसके चरित्र, स्वभाव, गुण-अवगुण के अलावा उसकी बोली का अध्ययन भी वे बड़ी सूक्ष्मता से करते हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा में मुहावरों, कहावतों तथा बोलियों के उतार-चढ़ाव पूरी नाटकीयता के साथ देखे जा सकते हैं। वे एक साथ साधारण गली-मोहल्ले की भाषा से लेकर सुशिक्षित वर्ग के पात्रों की परिनिष्ठित भाषा तक को स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त कर सके हैं। यह उनकी सर्वग्राहिणी प्रतिभा का ही चमत्कार है। डॉ. रामविलास शर्मा का मत इस संदर्भ में ध्यातव्य है—

“वे गली-कूचों में बरसों रहे और घूमे हैं। उन्होंने चारों ओर के जीवन को देखा ही नहीं, उसका रंग-बिरंगा कोलाहल भी सुना है। यहाँ एक शैली और एक व्याकरण का प्रयोग करनेवाले पात्र नहीं हैं, प्रायः जितने पात्र हैं उतनी तरह की शैलियाँ और उनके अपने-अपने व्याकरण हैं। लखनऊ में विभिन्न जनपदों से सिमट कर जनता एकत्र होती है। उसने अपनी बोली-बानी एक हद तक सुरक्षित रखी है, एक हद तक दूसरों की भाषा से, यहाँ तक कि अंग्रेजी से भी प्रभावित हुई है।”<sup>१२२</sup>

जीवन के विविध पक्षों के साक्षात्कार में उपन्यासकार ने जब जहाँ जैसा परिवेश प्राप्त किया है तदनु रूप पात्र-सृजन कर भाषा को स्वाभाविक एवं सहज बना दिया है।



नागरजी के उपन्यासों में भाषा के विविध रूपों पर विस्तृत चर्चा की जा सकती है। उनके उपन्यासों के भाषा-रूपों का तुलनात्मक अध्ययन भी अपने में एक स्वतंत्र शोध-प्रबंध का विषय बन सकता है। स्थान की सीमा के कारण यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी भाषा छवियों की विविधता में केवल स्थानगत वैशिष्ट्य ही नहीं उभरता, काल-वैविध्य भी जीवन्त रूप में देखा जा सकता है। 'खंजन-नयन' में सूर के समय की ब्रजभाषा और 'सेठ-बाँकेमल' में प्रयुक्त ब्रज की कालगत विविधता इस कथन को पुष्ट करती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नागरजी की भाषा-शैली में प्रेमचंद की भाषा-शैली का उन्नत रूप दिखाई पड़ता है। उनमें व्यंग्य की तीक्ष्णता के साथ-साथ शैली की प्रौढ़ता भी परिलक्षित होती है। उनमें भावों की विविधता है, कोमल तथा कठोर शैलियों का समावेश है। डॉ. सत्यपाल चुघ के अनुसार— "वहाँ भाषा क्षमता उभर कर सामने आती है। प्रत्येक पात्र को उसकी पृथक्-पृथक् वाणी देने के अतिरिक्त वे अपनी भाषा का अन्तर भी बनाए रखते हैं। उपमाओं का क्षेत्र भी उनका पर्याप्त विस्तृत है। हास्य-व्यंग्य के समावेश में वे विशेष दक्ष हैं। लोक-शब्दों के प्रयोग से भी उन्होंने भाषा को समृद्ध किया है।"<sup>१९२३</sup>

विभिन्न वर्गों के पात्रों की बातचीत को अपनी लेखनी के माध्यम से उसी रूप में प्रस्तुत करना नागरजी की भाषा की अपनी विशेषता है। वे कृत्रिम रूप से भाषा को गढ़ते नहीं हैं, यथार्थ जीवन की भाषा को चुराकर उसे यथावत् प्रस्तुत कर देते हैं। उनका जो पात्र जैसी भाषा प्रयुक्त करता है, उसे केवल वही बोल सकता है कोई दूसरा पात्र वैसी भाषा उच्चरित नहीं कर सकता। नागरजी की भाषा की सर्जनात्मकता का यह सबसे बड़ा सूत्र है। डॉ. गोपाल के अनुसार— "उनकी भाषा विषय के साथ नानावर्णी छायार्ण ग्रहण करती चलती है और समग्र कथा-संसार को इस रूप में प्रस्तुत करती है कि वह हमारी अनुभव की दुनिया से भी कहीं ज्यादा प्रामाणिक बन जाता है।"<sup>१९२४</sup>

वास्तव में नागरजी की भाषा पात्र के व्यक्तित्व, वर्ग और संस्कृति के अलावा उसके मनोभावों और परिस्थितिवश बदली हुई मनःस्थितियों को भी स्पष्ट करती चलती है। सुमित्रानंदन पंत के अनुसार— "भाषा के तो आप सम्राट हैं— आपके पास बैठकर कई जन्मों तक भाषा तथा शैली की साधना करनी पड़ेगी। ऐसी स्वाभाविक, सजीव, मर्मस्पर्शी भाषा कोई नहीं लिख सकता। हिन्दी को आपने बहुत शब्द-भंडार, मुहावरों का कोश तथा शब्द ध्वनियों का जीवन मधु से भरा विराट छत्ता ही दे डाला है।"<sup>१९२५</sup>

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि नागरजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपनी भाषा-शैली की विशिष्टता को प्रमाणित किया है। अपने विपुल शब्द भंडार तथा व्यापक जीवनानुभव के कारण वे पात्रों की विभिन्न मनः स्थितियों को सहजता, स्वाभाविकता, नाटकीयता तथा स्थानीय स्पर्श के साथ प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सके हैं।

## कथोपकथन

कथावस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र चित्रण को प्रभावी बनाने में कथोपकथन का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। नाटक के इस सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व की उपन्यास में सफल प्रस्तुति कथानक को नाटकीय बना देती है। कथोपकथन से उपन्यास प्राणवान हो उठते हैं। कथोपकथन की चारुता, आकर्षण, तथा पात्रानुसार व्यवस्था पाठकों के मन को रससिक्त एवं आनन्दमग्न कर देती है। इस प्रकार किसी भी उपन्यास की सफलता-असफलता उसके कथोपकथन पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में इसे उपन्यासकार की योग्यता की कसौटी माना जा सकता है।

प्रेमचन्द ने कथोपकथन की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है— “उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है। इस संबंध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। किसी भी चरित्र के मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है।”<sup>२९</sup>

उपन्यासकार में चुस्त, चुटीले एवम् प्रसंगानुकूल कथोपकथन प्रस्तुत करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। कथोपकथन का एक-एक शब्द पाठक के मर्म को बेध देने की क्षमता से युक्त होना चाहिए। कथोपकथन में नाटकीयता के साथ स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। कृत्रिम कथोपकथन से पाठकों के मन में कृति के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है। कृत्रिमता के साथ लेखक को कथोपकथन की निरर्थकता से भी बचना चाहिए। कथा की प्रगति एवं चरित्र के विकास में सहायक कथोपकथन ही उपन्यास को प्रभविष्णु बनाते हैं। आदर्श कथोपकथन पात्रों के भावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों तथा घटनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के साथ-साथ कथा को गतिशील बनाता है।

बहुत से लेखक अपने सिद्धांतों, विचारों तथा ज्ञान का प्रदर्शन कथोपकथनों के माध्यम से करते हैं। ऐसा करना लेखकीय अधिकार का दुरुपयोग है। पाठक को ऐसे विस्तृत और कृत्रिम कथोपकथन उबाऊ लगते हैं। वास्तव में लेखक को ऐसी आत्माभिव्यक्ति से बचना चाहिए क्योंकि उद्धरण-चिह्न लगा देने से ही कोई उक्ति कथोपकथन नहीं हो जाती।

उपन्यास के शिल्प-सौष्ठव में अभिवृद्धि हेतु कथोपकथन की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। सार्थक और आकर्षक कथोपकथन उपन्यासकार और पाठक के बीच की दूरी को कम करने में सहायक होते हैं। अतः उपन्यासों में कथोपकथन की उपस्थिति अंतर्धारा के रूप में होनी आवश्यक है।



## नागरजी के उपन्यासों में कथोपकथन की संगति :

कथोपकथन की उल्लिखित विशेषताओं का समावेश वही उपन्यासकार कर सकता है जिसमें नाटककार की प्रतिभा हो। उपन्यासकार अमृतलाल नागर एक समर्थ नाटककार भी रहे हैं। उनके द्वारा सृजित नाटकों ने हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त किया है। रेडियो नाटककार के रूप में भी उन्हें विशेष ख्याति मिल चुकी है। उनके कई उपन्यास मूल रूप से रेडियो नाटक ही थे, जिनका विकसित औपन्यासिक रूप परवर्ती काल में प्रकाशित हुआ था। 'सेठ बाँकेमल' और 'सुहाग के नूपूर' का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। अपनी इसी क्षमता के कारण नागरजी ने अपने उपन्यासों में कथोपकथन का सफल प्रयोग किया है। उनके सजीव, रोचक तथा परिस्थितियों के अनुकूल स्वाभाविक कथोपकथनों ने उनकी कृतियों में प्राण फूँक दिए हैं। उनके संवादों ने कथावस्तु को गति प्रदान की है तथा पात्रों के चरित्र को उभारकर प्रस्तुत कर दिया है। उनकी कृतियों में निम्नवर्ग से लेकर उच्चवर्ग तक के पात्रों की लंबी सूची तैयार की जा सकती है। ये सभी पात्र अपने संवादों के माध्यम से हमारे सामने जीवंत हो उठे हैं। शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-ग्रामीण, कलाकार-साहित्यकार, स्त्री-पुरुष, लेखक-अध्यापक, शोषक-शोषित, परंपरा-प्रेमी या प्रगतिशील— सभी पात्र लेखक की संवाद योजना के कारण स्वाभाविक लगते हैं। पात्रों का सुख-दुख, उल्लास-विलास तथा अंतर्द्वन्द्व, उनके कथोपकथन व्यक्त कर देते हैं। नागरजी के उपन्यासों में कहीं संक्षिप्त तो कहीं विस्तृत कथोपकथन मिलते हैं। उनके उपन्यासों के उद्धरण इन तथ्यों को प्रमाणित करेंगे :—

पाँचू ने एक निःश्वास छोड़ी, बोला - "हाँ पर अब दीमकें सारी डेस्कें चाटे डालती हैं।"

"राधे-राधे ! .....मेरी मानो तो कुछ कहूँ।"

पाँचू चौंका। शायद अब बात बन जाए। उत्साहित होकर बोला - "कहो, कहो!" "मेरे हाथ बेच डालो न लकड़ी का सामान। दीमकें चाट डालें उससे फेदा ? अरे अकाल के बाद तुम्हें बिचें यों ही बनवानी पड़ेगी। यों स्कूल के खाते में पचीस-पचास दिखा तो सकोगे।"

(भूख, पृष्ठ ८६)

X

X

X

X

सेठ बाँकेमल हड़बड़ा के कह उठे : "अरे-अरे, क्या करे है? क्या करे है ? अबे ओ उड़ती खबर ! साला मेरे भतीजे का पैसा ले के भाग जाय है।"

"अरे तो क्या हुआ चाचा जी। ये भी तो आपही का पैसा है।"

"अरे सब मेरा ही है। पर बाम्हन का पैसा हजम कैसे होगा भैया।"

"मगर चौबे जी से तो .....

“अरे छोड़ विनकी बात को। विनका मुकाबला कौन करेगा बिटुआ मेरे ?”

(संठ बाँकेमल, पृष्ठ ३७)

X X X X

“फिर तुमने धाकरों को छोटा बतलाया ? मैं कहता हूँ कोई छोटा बड़ा नहीं है—”

“होय चाहे न होय। हम जहर खाय ल्याब जो सकुनतला का कहूँ ऐसे-वैसे कुल माँ देहो।”

“मगर रुपया कहाँ से लाऊँगा ?”

“एक अकेले अनोखे गरीब तुम ही हो षटकुलवाले ? बहुत-से छाती पीटति हैं, मुला दुनिया के काम काज ध्वारो रुकि सकत हैं — गरीब होय तो होय।”

(बूँद और समुद्र, पृष्ठ १०७)

X X X X

“खैर होगा, बोलो मंजूर करती हो ?”

“देगा कौन ?”

“मैं।”

“तुम क्यों ?”

“बदला लेना चाहता हूँ।”

(शतरंज के मोहरे, पृष्ठ २१४)

X X X X

“तू अब तक सोई नहीं मेरी कन्मणि ?”

“नींद नहीं आती अम्मा।”

“क्यों बेटी, तुझे क्या दुःख है ?”

“कुछ नहीं।”

तब फिर नींद क्यों नहीं आती ?”

“ऐसे ही। सोच रही थी।”

“क्या सोच रही थी ?”

“आचार्य कहा करते थे, जीवन में बड़ा दुःख है।” (सुहाग के नूपुर, पृ. २४७)

X X X X

“एण्ड ह्वाट एबाउट इनडोर गेम्स ?”

“जी, खेल तो लेता हूँ कैरम, शतरंज, ताश।”

“मुझे ताश के खेल से बड़ी नफरत है मिस्टर खन्ना। आपको भी नफरत है ?”



लच्छू इस सवाल से अचकचा उठा। वह ताश का शोकीन है, बोला : “जी नफरत कुछ इस तरह की है कि ये बैठे के खेल मुझे जरा कम ही पसन्द आते हैं।”

“और डान्स करना आता है ?”

“जी ? जी नहीं।”

(अमृत और विष, पृष्ठ १९१-१९२)

X X X X

“इस नसीहत के लिए आपका एहसानमंद रहूँगा। लाइए अब रुपए दे दीजिए।”

“इन रुपयों की एवज में मैं तुमसे अगर कुछ चाहूँ तो ?”

“क्या चाहती हैं ?”

“अरे और क्या चाहूँगी, हाथी-घोड़े-जागीर तो दे नहीं सकते तुम, बस मुझे मियाँ लव-वसूल कह लेने दिया करो।”

(सात घूँघट वाला मुखड़ा, पृष्ठ ५०)

X X X X

“हूँ। आप सुविचारक हैं। कहीं से पधारना हुआ आपका ?”

“नैमिषारण्य से।”

“वहीं निवास है ?”

सोमाहुति किंचित् हूँसे, कहा; मेरा निवास इस समय एक ऐसे स्वप्न में है, जो अभी साकार नहीं हुआ।” सुनकर तापस जोर से हँसा, बोला : “चलो एक और फँसा।

हा: हा: हा: हा:।”

(एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ४९)

X X X X

रात में बाबा के पैर दबाते समय संत बेनीमाधव ने उनसे प्रश्न किया—

“गुरुजी, एक बात पूछूँ ?”

“पूछो ?”

“रत्ना मैया फिर आपसे मिली थीं ?”

तुलसीदास गंभीर हो गए, कहा - “हूँ।”

“यहीं काशी में ?”

“हाँ।”

“क्या उस प्रसंग के संबंध में कुछ बतलाने की कृपा करेंगे ?”

(मानस का हंस, पृष्ठ ३९९)

X X X X

“चाय तो आपको पिलाऊँगा ही निर्गुनियों जी, मगर आप चाहें तो ‘वाय’ भी पिला सकता हूँ।”

“अच्छा ! मैंने सोचा कि भला चील के घोंसले में मांस कहाँ निकल सकता है, मगर आपने तो निकाल ही दिया।”

“इसमें मेरा कोई करिश्मा नहीं। जो बोटल में आपको भेंट देने के वास्ते लाया था वही अब तक रखी है, दू ?”

“नहीं आपके घर में बैठकर यह तमाशो नहीं करूंगी। कम से कम एक जगह तो ऐसी होनी ही चाहिए जहाँ मन में कोई बुराई न पैदा हो सके।”

(नाच्यौ बहुत गोपाल, पृष्ठ २२६)

X X X X

“उद्देश्य कोई भी हो, धन, स्त्री, इश्वर की प्राप्ति। पहले आकर्षण होगा फिर आसक्ति। घोर आसक्ति चाहिए। और यह आसक्ति जब व्यसन बन जाएगी तब तुम और श्याम अभिन्न हो जाओगे।”

“वह आसक्ति कैसे हो ?”

“सेवा कर।”

“मैं जनम का अंधा — ”

“बाहर ही से तो अंधा है। हथेली रगड़कर अपने श्याम का ध्यान करता है कि नहीं — अधूरा ध्यान।”

सूरज चौंक गया, पूछा : “अधूरा कैसे प्रभु ?”

“अरे मूरख राधे बिना श्याम आधे। दोनों मिलकर ही अखण्ड रसमय तत्त्व के रूप में नित्य प्रतिष्ठित हैं।”

(खंजन नयन, पृष्ठ ८६)

X X X X

“साली नीच बिरादरी की लड़की .....

“देखिए यादवजी, अब अन्तर्जातीय ब्याह खूब हो रहे हैं।” आपकी बिरादरी में पहले भी एक ब्याह हो चुका है और जिससे हुआ है वह आपका वकील है। है कि नहीं ?”

छिद्दा चुप हो गया। थोड़ी देर तक गंभीर खड़ा रहा। फिर पूछा, “यह ब्याह कब करना चाहते हो ?”

“आज या कल, जब आप आज्ञा दें।”

“मैं अग्या देने वाला कौन हूँ। पंडतों से महूरत सुझवाओ।”

(बिखरे तिनके, पृष्ठ ३८)

X X X X

साहनी बोले, “मेहता साहब आपने पप्पी के नाम से प्रेस खरीदा था। अपने



नाम से नहीं और जमीन तो उसको प्रेजेंट ही की थी आपने। प्रेस के लिए खरीदी थी या किसी और काम के लिए, यह शर्त तो इसमें लिखी नहीं थी।”

“मुझे इस कुतिया ने धोखा दिया, गहरा विश्वासघात। खैर। प्रेस तो आप ले ही गए लेकिन आपकी कुतिया को मैं गली की कुतिया बनाए बगैर नहीं छोड़ूंगा।”

“तुम मुझे जब कुतिया बनाओगे तब देखा जायेगा, लेकिन अभी तो तुम धोबी के गधे बने हो, न घर के न घाट के। हःहःहः।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ ९८)

X

X

X

डाक्टर ने झुककर देखा, बोला : क्या देखूँ बाबा, यह तो मर चुका है ?”

“हाँ, हम हूँ का ऐसने आभास भया रहा, तबहीं तो दौड़े आए रामजी। यहाँ केर सदगती करै का चही रामजी।”

“परन्तु कैसे होगा, महाराज कौन इसे ढोकर ले जाएगा? फिर मुसलमान है, इसे तो कब्र चाहिए।”

“आऽरे, जब मरिगा तब कहाँ हिन्दू, कहाँ मुसलमान और कहाँ किरिस्टान। मनुष्य जब जन्मत है और जब मरत है तब मनुष्ये होत है रामजी। कि झूठ कहा ?”

(करवट, पृष्ठ ३५९)

उपन्यासों के ये उद्धरण इस बात का प्रमाण हैं कि नागरजी ने अपने पात्रों की आपसी बातचीत का सफलतापूर्वक पर्याप्त उपयोग किया है। उनकी संवाद योजना न केवल कथा को गतिशील करती है अपितु पात्रों के चरित्रों की अंतर्वाह्य रेखाओं को भी आकार देने की क्षमता रखती है। उनके कथोपकथन परिवेश की सृष्टि के साथ-साथ भाषा की बहुरंगी छटा के कारण ध्वन्यात्मक और प्रभावशाली बन पड़े हैं। लेखक के अपने विचार भी पात्रों की बातचीत के माध्यम से पाठकों तक पहुँचे हैं।

नागरजी ने पात्रों की शिक्षा-दीक्षा, संस्कार, परिवेश बोली-बानी आदि के आधार पर संवादों की योजना की है। यही कारण है कि कहीं ये संवाद छोटे तो कहीं बड़े हो गये हैं। परन्तु अपने हर रूप में वे सरस, स्वाभाविक तथा सजीव हैं। विस्तृत कथोपकथनों में उपन्यासकार का विचारक प्रबल हो गया है जिसके कारण लेखक की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक मान्यताओं के साथ विविध समस्यायें वृहत् रूप में बातचीत के बीच उपस्थित होकर बोझिल हो गई हैं। बूँद और समुद्र, अमृत और विष, मानस का हंस, खंजन नयन तथा करवट उपन्यासों में पात्रों की बातचीत का अनावश्यक विस्तार खटकता है। यह उपन्यासकार की सीमा भी मानी जा सकती है। परन्तु समग्र रूप से विचार करने पर हम देखते हैं कि इस सीमा के बावजूद उपन्यासकार ने अपने संवादों को अनपेक्षित विस्तार न देकर संतुलित रखा है। बड़े उपन्यासों में पात्रों की भीड़ के कारण अपने कथ्य का स्पष्टीकरण करने में उसकी

संवाद-योजना कहीं-कहीं विस्तार अवश्य पा गई है परन्तु ऐसे प्रसंग इतने कम हैं कि उन्हें नजर-अंदाज किया जा सकता है।

नागरजी के उपन्यासों में स्थान-स्थान पर पात्रों का स्वगत कथन भी मिलता है। इन स्वगत कथनों की सजीवता पाठक पर प्रभाव डालती है। 'महाकाल' के पाँचू, 'अमृत और विष' के अरविन्द शंकर, 'मानस का हंस' के तुलसी तथा 'खंजन नयन' के सूरदास का स्वगत कथन पात्रों की विचारधारा से पाठक को परिचित कराता है। इसलिए इन स्वगत-कथनों का अपना वैशिष्ट्य है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि नागरजी के उपन्यासों के कथोपकथन औचित्य और संगति के विशिष्ट गुणों से युक्त हैं। उनका नाटककार रूप शिल्प के इस कौशल में उनकी सामर्थ्य सिद्ध करने में सहयोगी हुआ है। सहजता, स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता, भाषागत विविधता, अकृत्रिमता तथा ध्वन्यात्मकता के कारण उनकी संवाद-योजना सशक्त एवं प्रभावशाली है, यह बात बिना विवाद के स्वीकारी जा सकती है।

## देशकाल निरूपण

प्रत्येक उपन्यासकार अपनी रचना के द्वारा नई दुनिया का सृजन करता है। उसकी इस दुनिया का विशिष्ट समय और वातावरण होता है।

अनुकूल वातावरण एवं देशकाल उसकी औपन्यासिक दुनिया को वास्तविक, सजीव और गरिमापूर्ण बना देता है। अतः कृति के चित्रण को स्वाभाविक और आकर्षक बनाने के लिए देशकाल-वातावरण का ध्यान रखना आवश्यक है। उपन्यासकार के लिए घटना का स्थान, समय तथा तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान जरूरी है। कथाकार कभी यथार्थ तथ्यों के सहारे और कभी तीव्र कल्पना द्वारा अभिप्रेत वातावरण की सृष्टि करता है। उपन्यासों के आकर्षक वातावरण का प्रभाव पाठक के मन पर तत्काल पड़ता है इसलिए उपन्यास की सफलता-असफलता में इस तत्त्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने देशकाल को परिभाषित करते हुए कहा है— "उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार-विचार, रहन-सहन और परिस्थिति आदि से है। इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— एक तो सामाजिक और दूसरा ऐतिहासिक या सांसारिक। ..... बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसलिये मनोरंजक होते हैं कि उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अंश से संबंध रखने वाला वर्णन होता है। ऐसी दशा में



जिस उपन्यास का वर्णन जितना ही सटीक और स्वाभाविक होगा, वह उपन्यास उतना ही अच्छा माना जायगा।<sup>१२०</sup>

ऐतिहासिक उपन्यासों, आंचलिक उपन्यासों तथा लोकल कलर के उपन्यासों में वातावरण तथा देशकाल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। परन्तु देशकाल और वातावरण का वर्णन वहीं तक उचित है जहाँ तक वह कथा को गति प्रदान करने एवं स्वाभाविकता उत्पन्न करने में सहायक हो। उसकी अत्यधिक प्रधानता उपन्यास को उबाऊ बना देती है। अतः उपन्यासकार को देशकाल निरूपण में संयम बरतना चाहिये। बाबू गुलाब राय ने इस संदर्भ में लिखा है— “देशकाल के चित्रण में सदा इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाये। जहाँ देशकाल का वर्णन अनुपात से बढ़ जाता है, वहाँ उससे जी ऊबने लगता है, लोग जल्दी-जल्दी पन्ने पलटकर कथा-सूत्र को ढूँढ़ने लग जाते हैं। देशकाल का वर्णन कथानक को स्पष्टता देने के लिए होना चाहिये, न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिये।”<sup>१२१</sup>

अतः वातावरण का सफल एवं मोहक चित्रण उपन्यास के लिए बहुत मूल्यवान होता है। सामान्य मुहल्लों, गलियों, चबूतरों, पेड़-पौधों तथा वन-प्रदेश के सौन्दर्य के साथ-साथ बरसात की चूती हुई छत तथा ठिठुरन पैदा करने वाली शीत ऋतु का वर्णन भी उपन्यास को विलक्षण मोहकता से भर देता है। इसी प्रकार किसी की मृत्यु का चित्रण करते समय बिल्ली का रोना, दीपक बुझना या सूर्यास्त होना आदि बातें शोक की गहरी एवं भयावह मानसिक भूमि तैयार कर देती हैं। स्पष्टतः वातावरण की समुचित योजना रचना को अपूर्व प्रभाव से भर देती है। इसके विपरीत वातावरण की उपेक्षा अथवा अवहेलना से घटना की रोचकता एवं सजीवता में बाधा पहुँचती है। श्रेष्ठ वातावरण की सृष्टि शब्द-चित्रों पर ही निर्भर है अतः उपन्यासकार को एक कुशल शब्द-शिल्पी होना चाहिए।

## नागरजी के उपन्यासों में देशकाल - निरूपण की महत्ता

नागरजी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, जीवनी-परक, पौराणिक तथा आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। उनकी कृतियों में देशकाल-वातावरण जीवन्त रूप में उपस्थित हुआ है। परिवेश का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करने के लिए उनकी भाषा-शैली के अतिरिक्त प्रतीकात्मक, भावात्मक तथा चित्रात्मक कल्पनाओं ने विशेष भूमिका निभाई है। डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार— “नागरजी में वातावरण चित्रण तथा व्यंग्य की अद्भुत क्षमता है। नगर के गली-कूचों, वहाँ की बोली-बानी का इन्हें उतना ही नजदीकी अनुभव है जितना प्रेमचन्द को खेतों-खलिहानों का था। अपने समृद्ध अनुभव एवं चित्रण कौशल से उन्होंने यथार्थवादी वर्णन शैली को विशेष गरिमा दी है।”<sup>१२२</sup>

उपन्यास के विविध दृश्यों के माध्यम से वातावरण को प्रस्तुत करने में नागरजी की भाषा के प्रभाव का उल्लेख करते हुए डॉ. विवेकी राय ने लिखा है— “पाठशाला के वातावरण, मठों के परिवेश और ‘कोठे’ की सभ्यता को चित्रित करने में जो भिन्न-भिन्न प्रभाव नागरजी की भाषा छोड़ती है वह तत्कालीन यथार्थ के गंभीर अध्ययन का प्रमाण होता है।”<sup>131</sup> ऐतिहासिक, आंचलिक तथा जीवनीपरक उपन्यासों में देशकाल निरूपण में नागरजी को विशेष सफलता मिली है। इन कृतियों की लोकप्रियता इसका सहज प्रमाण है।

अपने प्रथम सामाजिक उपन्यास ‘भूख’ में नागरजी ने बंगाल के अकाल का मार्मिक चित्र अंकित करने के लिए हृदयद्रावक परिवेश की सृष्टि की है। इस कृति के देशकाल, वातावरण तथा परिवेश ने अकाल के वीभत्स चित्रों को यथार्थता के गहरे रंग से भर दिया है। उपन्यास के १५वें पृष्ठ पर लेखक ने २७.१.४३ तारीख का उल्लेख करते हुए कृति को बंगाल में आए भूषण अकाल के समय से जोड़ दिया है। लेखक ने पाठकों की आँखों के सामने अकाल के वातावरण को जीवंत कर दिया है—

“चार दिन की भूख, निराशा और कमजोरी के साथ ही साथ लाश उठाने और ले जाने की थकान उसे इस समय तक अत्यधिक अशक्त कर चुकी थी। .....पौंचू के आस-पास, कुछ दूर पर उसी की तरह जीवित कंकाल डोल रहे थे। उसे उनसे घृणा हो गई। उसे अपने से घृणा हो गई। उसे तमाम अकाल पीड़ितों से घृणा हो गई।”

(भूख, पृष्ठ ८०)

अपनी भाषा-शैली के कारण नागरजी का दूसरा उपन्यास ‘सेठ-बाँकेमल’ आंचलिक उपन्यास के रूप में परिगणित किया जाता है। इस कृति में आगरा अंचल की बोली-बानी के साथ एक मिटते हुए वर्ग का संपूर्ण चरित्र अंकित किया गया है। सेठ जी अपनी आंचलिक बोली में पुराने जमाने को याद करते हुए कहते हैं—

“दुनिया साली बड़ी फोक्स हो गई है अब। हम सरीफों के रहने काबल अब रही नई। अरे वो रंगीनियाँ और तरकैटियाँ ही अब नई रहीं, तो हम लोग जी कैसे सके हैं प्यारे। हाय, वो जमाने थे भैया, कि तुझसे क्या कऊँ ?” (सेठ बाँकेमल, पृष्ठ १०४)

नागरजी का सर्वाधिक र्चचित उपन्यास ‘बूँद और समुद्र’ अपनी बोली-बानी तथा परिवेश के कारण नगरांचलीय उपन्यास माना जाता है। उपन्यास की भूमिका में नागरजी ने लिखा है— “उपन्यास के क्षेत्र के रूप में मैंने लखनऊ और उसमें भी खास तौर पर चौक को ही उठाया है। यह इसलिये किया कि नागरिक सभ्यता की परम्परा देखने में, बोली-बानी का रंग घोलने में, मुझे सबसे अधिक सुभीता यहीं हो सकता था।”<sup>132</sup> उपन्यासकार का यह वक्तव्य देशकाल तथा परिवेश की जानकारी में बड़ा उपयोगी है। उपन्यास का आरंभ ही पाठक को लखनऊ के चौक मुहल्ले के परिवेश का



परिचय करा देता है— “लखनऊ के चौक मुहल्ले में भभूती सुनार की दोनों जवान बहूँ अपने मुंडेरे पर झुकी हुई पड़ोसिन तारा से बातें कर रही हैं।”<sup>१३३</sup>

नागरजी ने अपने इस उपन्यास में लखनऊ की सड़कों, गलियों, मुहल्लों, रेस्टोरेन्टो, सिनेमाघरों, मंदिरों, कॉलेजों तथा ऐतिहासिक, साहित्यिक व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है जिससे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ परिवेश भी विवित हो गया है। अपने इस चित्रण में उन्होंने दोपहर की धूप ही क्या, पीपल के पेड़ तक को उसके परिवेश के साथ प्रस्तुत कर दिया है—

“दोपहर की धूप छतों पर जाड़े के दरवार लगाये चारों ओर पसर रही है। औरतों का सीना-पिरोना चल रहा है, गेहूँ फटके जा रहे हैं, दालें बीनी जा रही हैं, साग बनारे जा रहे हैं; कहीं आराम भी हो रहा है।” (बूँद और समुद्र, पृष्ठ १)

“कटी-फटी पलंगों, मकड़ी के जालों, घोंसलों, चिड़ियों, गिलहरियों और पीपली के दानों से लदा, अनगिनत इंसानों के चंचल मन-समूह-सा हरहराता हुआ घना पीपल कई सदियों से मुहल्ले का साथी है।” (बूँद और समुद्र, पृष्ठ ३८)

उपन्यास की ५८२ पृष्ठों की वृहत् कथा में केवल नौ महीने के समय का चित्रण किया गया है। उपन्यास में फरवरी-मार्च १९५२ के प्रथम आम चुनाव का भी उल्लेख हुआ है। उपन्यास की कथा कार्तिक में प्रारंभ होकर आसाढ़ में समाप्त हो जाती है। इस काल खंड की गणना करने पर यह समय नौ महीने का निकलता है। पृष्ठ १७ पर वर्ष १९५१ का उल्लेख हुआ है—

“आदिम सभ्यता के इतिहास से आज सन् इक्यावन तक जो रूढ़ि समाज को बाँधे हुए है उसके पीछे कोई जबर्दस्त फोर्स तो होनी ही चाहिए।” (बूँद और समुद्र, पृष्ठ १७)

इस प्रकार कथा का काल १९५१ के अक्टूबर-नवंबर से लेकर जुलाई १९५२ तक ठहरता है।

अपने पात्रों को देशकाल से बद्ध कर नागरजी ने वातावरण को महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया है। पात्रों के व्यक्तित्व को सजीव बनाने के लिए लेखक ने वातावरण का सफल उपयोग किया है। लखनऊ अंचल के एक-एक चपे का, रीति-रिवाजों का, बोली-बानी का जानकार होने के कारण लेखक की कलम से वातावरण जीवन्त हो उठा है। उदाहरणार्थ—

“चौक में सत्यनारायण की कथा हो रही थी। चौकी पर लाल टूल बिछाकर चारों पायों से केले के पत्ते बाँधे हुए थे, बीच में कोई चीज रक्खी हुई थी जो निश्चय ही ठाकुरजी का सिंहासन होगी। उसके आगे मंगल-कलश, फल, पंजीरी, पंचामृत आदिके

पात्र सजे हुए अच्छे लग रहे थे। पंडितजी अपनी खसखसी खोपड़ी पर हाथ फेरते हुए पालथी मारकर हिलते-हिलते ऊँचे-नीचे खांचेदार स्वर में कथा सुना रहे थे।”

(बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५४६-५४७)

इस प्रकार के छोटे-छोटे व्यंजक विवरणों का चित्रण करते हुए नागरजी ने वातावरण को सवाक् कर दिया है।

नागरजी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' में सन् १८२० ई. के कुछ पूर्व से लेकर सन् १८३७ ई. तक के लखनऊ के नवाबी शासन का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह काल-खंड १८५७ के गदर के पहले का है अतः यह उपन्यास गदर की प्रामाणिक पूर्व-पीठिका प्रस्तुत करने में सहायक है। पाठक को उपन्यास की प्रामाणिकता की अनुभूति कराने के लिए नागरजी ने ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के साथ-साथ अनेक स्थलों पर काल का निश्चित उल्लेख किया है—

“नवाब वजीर गाजीउद्दीन हैदर को उन्नीस अक्तूबर सन् १८१८ ई. के दिन अवध का स्वतंत्र सम्राट घोषित कर दिया गया।” (शतरंज के मोहरे, पृष्ठ ६७)

१४ सितंबर सन् १८२० (पृष्ठ-४५), सन् १८२२ ई. का जमाना (पृष्ठ-९३), सन् १८२६ का काल (पृष्ठ-१५२) तथा २९ नवंबर सन् १८३० (पृष्ठ-१९५) जैसी तिथियों और कालों का उल्लेख कृति के ऐतिहासिक प्रतिपाद्य का समुचित निर्वाह करता है तथा पाठक को देश-काल-वातावरण से सीधे जोड़ देता है। ऐसे ही अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य हैं—

“रबीउल् - अव्वल सत्ताईस, सन् बारह सौ तैतालीस हिजरी अर्थात् २० अक्टूबर सन् अठारह सौ सत्ताईस ईस्वी को अबुल्-मुजफ्फर मुइजुद्दीन शाहजमाँ रफ्तुद्दौला रफ़ीउल्मुल्क गाजीउद्दीन हैदर खाँ बहादुर शाहमात जंग ने सदा के लिए आँखें मीच लीं और उसी दिन मुर्शिदाजादा सुलेमानजाह उम्दुतुल मुल्क नासीर-उद्दीन हैदर खाँ बहादुर असदरजंग अवध के भाग्य विधाता हुए।” (शतरंज के मोहरे, पृष्ठ १५२)

“१९ अप्रैल सन् १९३५ ई. के दिन शाही सेना ने बादशाह बेगम की कोठी को चारों ओर से घेर लिया।” (शतरंज के मोहरे, पृष्ठ २६४)

इसी प्रकार पृष्ठ ३०४ पर नसीरुद्दीन की मृत्यु का निश्चित उल्लेख हुआ है। उपन्यास का अंतिम वाक्य है, “यह गदर के बीस वर्ष पहले की बात है।” (पृष्ठ ३११)

इस प्रकार तत्कालीन वातावरण को मूर्त करते हुए उपन्यासकार ने नवाबी संस्कृति, लखनवी संस्कृति को साकार कर दिया है। लेखक ने परिवेश को मूर्त करने के लिए आकर्षक भाषा का इस्तेमाल किया है :

“काले-भूरे बादलों के घनघोर घिराव से आकाश घुट रहा था, धरती पर



उसकी मनहूसियत फैल रही थी, नाज़िमी सेनाओं की आहट से गाँव की हवा तक को मानों साँप सूँघ गया था।”

(शतरंज के मोहरे, पृष्ठ ९)

‘सुहाग के नूपुर’ पहली सदी ई. के तमिल महाकवि बौद्ध भिक्षु इलङ्गोवन कृत महाकाव्य “शिलप्पदिकारम्” से प्रभावित एक स्वतंत्र रचना है। यद्यपि इसकी पृष्ठ भूमि और कथा ऐतिहासिक है परन्तु इसका प्रतिपाद्य सामाजिक है। वेश्या बनाम कुलवधु की शाश्वत सामाजिक समस्या इस उपन्यास के माध्यम से उठाई गई है। नागरजी ने पात्रों के नाम, साज-श्रृंगार, आचरण-व्यवहार तथा परिस्थितियों को ऐतिहासिक आधार अवश्य दिया है— वातावरण विधान के लिए तमिल के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग कोष्ठकों में अर्थ देकर किया है, परन्तु कृति का सामाजिक आशय ही प्रधान है। यही कारण है कि उपन्यासकार ने अतीत के काल-खण्ड या समय-विशेष को उभारने में विशेष रुचि नहीं दिखाई है। परन्तु देशकाल-वातावरण के साथ परिवेश को जीवन्त करने वाली नागरजी की भाषा अपना कमाल इस कृति में भी दिखाती है—

‘ब्राह्म मुहूर्त में ही कावेरी पट्टणम् के नौकाघाट की ओर आज विशेष चहल-पहल बढ़ रही है। सजे-बजे सुन्दर बैलों वाले शोभनीय रथों, पालकियों और घोड़ों पर नगर के गण्यमान चेष्टियार, प्रौढ़ और युवक, कावेरी नदी के नौकाघाट की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। रथों की खड़खड़, बैलों की मधुर घण्टियाँ, घोड़ों की टापें, सारथियों, मशालचियों की हाँक-गुहार पौ फटने से पूर्व वाले धुँधलके को अपनी गूँज से चौधियाने लगी।”

(सुहाग के नूपुर, पृष्ठ ९)

वातावरण को यथार्थता से युक्त करने के लिए उपन्यासकार ने ‘सुहाग के नूपुर’ में भारतीय संस्कारों, रूढ़ियों, परंपराओं और अंधविश्वासों का चित्रण पात्रों की गतिविधियों के माध्यम से किया है।

‘अमृत और विष’ में दो कथाएँ एक साथ चलती हैं। पहली कथा में अरविन्द शंकर विक्टोरिया राज से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति के समय तक विहंगम दृष्टि डालता हुआ तत्कालीन, राजनीति, संस्कृति, अर्थनीति, जीवन-मूल्य तथा आदर्शों की ओर संकेत करता है। डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार — “इस कथा के एक पहले हिस्से को इसी अर्थ में वे ‘पुरखों का इतिहास’ कहते हैं जिसकी वर्तमान से टकराहट छिपी हुई नहीं है। मलिका विक्टोरिया के समय से अपने समय तक के इतिहास को नागरजी ने एक सजीव रिपोर्टाज की तरह, जो जितना रोचक है, उतना ही प्रासंगिक, लिपिबद्ध करना चाहा है।”<sup>132</sup>

एक स्थल पर वाजिद-अलीशाह के स्वर्गवास की खबर है—

“सन् १८८७ ई. में जिस दिन ये लखनऊ पहुँचे, उसी दिन अखबारों के द्वारा

वाजिदअली शाह के मटियाबुर्ज में स्वर्गवास होने का समाचार भी पहुँचा था। नगर के छोटे-बड़े हिन्दू-मुसलमान अवध के कन्हैया जाने आलम का शोक मना रहे थे।”

(अमृत और विष, पृष्ठ २४)

दूसरे उपन्यास में स्वाधीनता के उपरान्त पुरानी और तरुण पीढ़ी का संघर्ष, पुराने मूल्यों का विघटन, ढोंग, प्रदर्शन-दिखावा, आदि का वर्णन और तरुण वर्ग द्वारा दुनिया को नई दृष्टि से देखने के प्रयास का चित्रण हुआ है। इस द्वितीय उपन्यास में लखनऊ अंचल की सभ्यता और संस्कृति मुखरित हुई है। उपन्यासकार ने १९६२ के आम चुनाव तथा अष्ट-ग्रह योग के समय का उल्लेख करते हुए जनमानस की मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया है। बाढ़-वर्णन तथा बारात-वर्णन का भी यथातथ्य अंकन करके नागरजी ने वातावरण को सजीव बना दिया है—

“सहालग के दिन हैं। गर्मी का मौसम। बेटों-बालों के लिए बावले दिन आए हैं। जनवासे नहीं मिल रहे। बरफ, फूल, फल, तरकारियों के भाव आसमान को छूने लगे हैं। मोटरें जहाँ-तहाँ बुक हो चुकीं; रइंसाँ की घोड़ियों के लिए मँगोवे आ चुके, वादे हो चुके और अब इक्के-तांगे वालों की खुशामद में लोग-बाग दौड़ रहे हैं।”

(अमृत और विष, पृष्ठ ५९)

“बाढ़ ने मानों इस बार केवल दीन-हीन किसानों और गरीब-गुरबों ही को नहीं, बल्कि बड़े-बड़े सफेदपोश कोठी-बँगलेधारी सत्ताधीशों, धनाधीशों को भी अपनी लपेट में लेकर साम्यवाद का प्रचार करने की ठानी थी। ..... कोठियों-कोठियों हाय-गोहार मची हुई थी। बड़े-बड़े सोफा-दीवान, अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ, तस्वीरें, सजावट का सामान, भारी-भारी रेफ्रीजरेटर, मोटरकारें डूबीं।” (अमृत और विष, पृष्ठ २६१)

कृति में उपन्यासकार ने देशकाल-वातावरण की बड़ी आकर्षक योजना की है।

‘सात घूँघट वाला मुखड़ा’ उपन्यास यद्यपि इतिहास के रहस्यमय चरित्र बेगम समरू पर आधारित है तथापि उपन्यास ऐतिहासिक कम, रंजक अधिक है। यही कारण है कि कृति में ऐतिहासिक तिथियों का उल्लेख नहीं है। अपनी ‘विज्ञप्ति’ में नागरजी ने कृति के आरंभ में ही लिखा भी है— “तिथियों और घटनाओं के क्रम-परिवर्तन मनोवैज्ञानिक स्थितियों के अनुसार इसमें कर लिए गए हैं क्योंकि बेगम समरू का इतिहास प्रामाणिक होते हुए भी उसकी बहुचर्चा के कारण किंवदंतियों से भरा हुआ है।”<sup>१३४</sup>

उपन्यास अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेजों-मुगलों के संघर्ष का चित्रण करता है। जिस बेगम समरू का चरित्र उपन्यास में छाया हुआ है; ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार उसका विवाह १७९३ में हुआ था और सन् १७९५ में वह कैद कर ली गई थी। उसके



उतार-चढ़ाव भरे रोमांचक एवं घटनापूर्ण जीवन का अंत २७ जनवरी १८३६ को छियासी वर्ष की अवस्था में हुआ था। तिथियों एवं समय का निश्चित उल्लेख न होते हुए भी कृति में परिवेश को विवित करने की नागरजी की क्षमता प्रमाणित हुई है—

“अजमेरी दरवाजे के पास गाजीउद्दीन खाँ का मदरसा कुछ अरसे से उजाड़ पड़ा था। लाल पत्थर की वह शानदार इमारत दिल्ली की अस्थिर राजनीति के कारण उस कुलीन के सुहागिन के समान थी जिसे ब्याहने के बाद ही पति एक बार जुठारकर सदा के लिए छोड़ गया हो। इमारत के सामने एक सुन्दर फव्वारा बना था और दाहिनी ओर लाल और सफेद पत्थर की भव्य मस्जिद थी।” (सात घूँघटवाला मुखड़ा, पृ. १४)

पौराणिक उपन्यास ‘एकदा नैमिषारण्ये’ में नागरजी की दृष्टि चरित्र पर न होकर व्यापक परिवेश और तत्कालीन राष्ट्रीय अर्थबोध पर जमी हुई है। हिमाचल की गोद में बसे रेणुका क्षेत्र से लेकर मथुरा, ब्रज, अवध, कौशांबी, प्रयाग, लखनऊ, पाटलिपुत्र, मगध, कलिंग, गुजरात, दण्डकारण्य, विन्ध्य, आन्ध्र, कर्नाटक, श्रीशैलम् तमिल आदि भारत के प्रायः सभी क्षेत्रों तक उपन्यास की कथा की व्याप्ति है। देश की कई प्रमुख नदियाँ — गंगा, यमुना, सरयू, मन्दाकिनी, नर्मदा, गोमती आदि भी उपन्यास में आ गई हैं। उपन्यासकार ने उस काल की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक छवियों को स्पष्ट करने के लिए श्रमपूर्वक वातावरण का निर्माण किया है। इस वातावरण-निर्माण के कारण कथाक्रम एवं कथा-प्रवाह में अवश्य बाधा आई है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि एक विशाल फलक पर व्यापक काल-क्रम को चित्रित करने में नागरजी विशेष सफल रहे हैं।

परिवेश का सजीव चित्रण करनेवाला एक उदाहरण दृष्टव्य है— “पवित्र शेषकूप के निकट बर्याँ ओर ठीक पूर्वाभिमुख लक्ष्मण मन्दिर था। कूप के दाहिनी ओर भव्य काष्ठ मण्डप तले बीचोंबीच एक बड़ा लम्बा-चौड़ा और गहरा पत्थर का कुण्ड बना हुआ था। उसमें सैकड़ों विकराल विषधर लहरा रहे थे। कुण्ड की दीवारों में चारों ओर छोटी-छोटी गुफाएँ बनी हुई थीं। उनके आगे संगममंर जड़ी दो चक्राकार नहरें थीं। एक मदिरा भरी, दूसरी दूध की।” (एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ४३-४४)

जीवनी प्रधान उपन्यास होने के कारण ‘मानस का हंस’ में देश-काल-वातावरण की जीवन्तता आवश्यक है। उपन्यासकार ने इतिहास ग्रंथों द्वारा समर्थित तुलसी के जीवन के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक वातावरण को भी सशक्त रूप में चित्रित किया है। दिल्ली पर हेमू का आधिपत्य, पानीपत की लड़ाई में उसकी मृत्यु, काशी और जौनपुर के सूबेदार उमरा आगनूर के कारण काशी में आयी विपत्ति, धनी सेठों, साहूकारों, जौहरियों आदि को अकारण बन्दी बनाकर सताना; काशी की भयंकर प्लेग, काशी के अखाड़ों का वर्णन, काशी विश्वनाथ मंदिर का नव-निर्माण,

अयोध्या की बाबरी मस्जिद तथा राम जन्म भूमि पर ताला डालने की घटनायें इतिहास सम्मत होने के कारण कथा को सम्यक् वातावरण प्रदान करती हैं। तुलसी के जीवन की विभिन्न घटनाओं की तिथियाँ भी प्रामाणिक हैं और देश-काल के अनुरूप हैं।

स्थान-स्थान पर तुलसी की काव्य-पंक्तियाँ अपने परिवेश के साथ इस रूप में अंकित की गई हैं जिससे लगता है कि वे मानों इसी वातावरण में रची गई थीं। यह उपन्यासकार का कौशल है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

“क्षितिज पर काशी दिखलाई पड़ने लगी। गंगा दूर से रूपहली गोटे की पट्टी जैसी चमक रही थी। देखते ही बाबा आत्मविभोर हो गए। गंगा की ओर हाथ बढ़ाकर मस्ती में कविता फूट पड़ी—

देवनदी कहँ जो जन जान किए मनसा, कुल कोरि उधारे।  
देखि चले झगरँ सुरनारि, सुरेस बनाइ विमान सँवारे।  
पूजा को साजु बिरंचि रचँ तुलसी, जे महातम जाननिहारे।  
ओक की नीव परी हरिलोक बिलोकत गंग ! तरंग तिहारे ।”

(मानस का हंस, पृष्ठ १९)

‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ में मेहतरों के जीवन की व्यथा को नागरजी ने एक समाजशास्त्री की दृष्टि से देखा है और चित्रित किया है। उपन्यास में ‘आपातकाल’ के प्रसंग की दो स्थान पर चर्चा हुई है—

“अरे ज्यादा इंसानियत की चकल्लस में न पड़ो आजकल इमरजेंसी में मुँह से सच निकालना भी पाप है।” ..... “संघर्ष के घिसे पिटे बीमार तरीके बदलकर उसे स्वस्थ दिशा प्रदान करना ही इमरजेंसी का उद्देश्य हो सकता है।” (पृष्ठ २३)

इमरजेंसी के समय की दूसरी चर्चा पृष्ठ २५१ से २५५ तक है जो तुकमान गेट कांड और संजय गाँधी की आलोचना पर केन्द्रित है। इन पृष्ठों में आपातकाल के अत्याचारों तथा नसबंदी का भी उल्लेख हुआ है।

यह पूरा प्रसंग कृति को देशकाल की दृष्टि से एक काल खंड में बद्ध करता है परन्तु उपन्यास केवल उस काल खंड की भंगी जाति की पीड़ा या दुर्दशा का अंकन नहीं करता, वह युगों से शोषित मेहतर जाति का चित्रण अतीत से लेकर वर्तमान स्थिति तक समस्त विवरणों के साथ करता है। उपन्यास में परिवेश को विम्बों में बाँधने वाले अनेक स्थल विद्यमान हैं। उपन्यास का आरंभ ही भंगी बस्ती के चित्र को पाठक के मानस पटल पर अंकित कर देता है—

“और यह टीला जिस पर मैं इस समय खड़ा हूँ वह यों समझिये कि ‘द’ अक्षर की घुण्डी जैसा ही है। इसके बाद टीले की ढलान पर छोटा-सा मकान और उसके साथ ही बाड़े से घिरी हुई शाक-सब्जियों की एक खासी लंबी पट्टी उस सारी भंगी बस्ती को



‘द’ की शकल दे देती है। ‘द’ माने दमन। प्रकृति ने मानो इस बस्ती के कपाल पर ही ‘दमन’ शब्द लिख दिया है।”

(नाच्यों बहुत गोपाल, पृष्ठ १३)

सवर्ण समाज के लेखक ने मेहतर समाज के चित्रण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने के लिए स्वयं को मेहतर बना दिया है। सामाजिक यथार्थ के अंकन में लेखक ने जो परिवेश निर्मित किया है, वह भी महत्त्वपूर्ण है।

सूरदास के जीवन प्रसंगों पर आधारित उपन्यास ‘खंजन नयन’ सूरदास के जीवन के उपलब्ध तथ्यों तथा तत्कालीन इतिहास के मुख्य पात्रों की उपस्थिति के कारण पाठक की आँखों के सामने तत्कालीन देश-काल को उपस्थित कर देता है। परिवेश-अंकन में लेखक पूरी तरह सफल रहा है। पदों की भूमिकाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानों इसी अवसर पर सूर ने यह पद लिखा होगा। पदों को जन्म देने वाले परिवेश की सजीव कल्पना की गई है—

“हिए के आसन पर माँ का बैठाया हुआ राधा गोपाल विग्रह स्मृति रेखाओं में सजीव हो उठा। अपने अस्तित्व का परिचय देने के लिए मचल उठा। दिलखुशा साईं की बात सुनकर सूरसाईं के मन में ब्रह्माण्ड नाच उठा। साईं के गद्य का उत्तर सूर ने पद्य में दिया—

अविगत गति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।” (खंजन नयन, पृष्ठ १६५)

‘बिखरे तिनके’ में काल की दृष्टि से गुरसरन बाबू के रिटायरमेंट की तारीख का स्पष्ट उल्लेख है—

“और आज १३ सितंबर, ८० के दिन नौकरी के सारे पापड़ बेलकर लगभग ढाई-तीन लाख की सम्पत्ति, आठ बेटे-बेटियों और उनके परिवारों से सुखी जीवन बिताते हुए वे नौकरी से रिटायर हुए हैं।” (बिखरे तिनके, पृष्ठ १८)

उपन्यास में जनता पार्टी के शासन का अन्त तथा उसके बाद हुए चुनाव में कांग्रेस की विजय का संकेत भी है। परिवेश की पूरी गतिविधि को चित्रित कर देना नागरजी की वर्णन-शैली का वैशिष्ट्य है—

“छज्जू चपरासी नौबतराय के पीछे-पीछे दस-पाँच कदम गया पर उन्होंने पीछे मुड़कर भी न देखा, सर्राते हुए निकल गए। छज्जू जब लौटकर दफ्तर के कमरे में आया तो मेजों के बीच में खड़ा होकर नाच उठा। खिचड़ी दाढ़ी-मूँछों वाले दुबले-पतले छज्जू राम को नाचते देखकर सभी हँस पड़े। बात मजाक की ओर बढ़ने से पहले ही बाहर बाबू गुरसरन लाल का मंद-मंद मुस्कराता, दिप-दिप-सा चमकता हुआ भव्य मुखड़ा अपने पुराने कमरे के दरवाजे पर झलका।” (बिखरे तिनके, पृष्ठ १७)

अपने सामाजिक उपन्यास 'अग्निगर्भा' के आरंभ में ही सन् १९८२ ई. का उल्लेख करते हुए लेखक ने कृति के काल को स्पष्ट कर दिया है। उपन्यास में शहर की संज्ञा नहीं है, मुहल्ले के नाम हैं। यह शहर कोई भी माना जा सकता है। वास्तव में कृति में उठाई गई समस्या महत्वपूर्ण है, देश-काल नहीं। यह दहेज की समस्या देश-काल की सीमा से परे है। दहेज की समस्या को विकरालता से सारा भारतीय समाज प्रभावित है। दहेज के लिए भारतीय नारी के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शोषण का चित्रण करने के लिए उपन्यासकार ने सम्यक् वातावरण की रचना की है। नागरजी परिवेश का पूरा चित्र पाठकों की आँखों के सामने उपस्थित कर देते हैं—

“कुछ नये और कुछ पुराने ढंग से अति तक सजी हुई बैठक जिसमें देवी-देवताओं के बड़े-बड़े चित्र और आईने, झाड़फानूसों के साथ ही गाँधी, नेहरू और इंदिरा गाँधी के चित्रों से लेकर सिनेमा स्टारों की छवियों से शोभित कलेण्डर भी टँगे थे। तख्त, तोषक-तकिये, साथ-साथ कीमती सोफा-सेट भी मौजूद थे।” (अग्निगर्भा, पृष्ठ ३०)

नागरजी का उपन्यास 'करवट' १८५० ई. से लेकर १९०२ ई. तक के भारतीय समाज के परिवर्तित होते स्वरूप को चित्रित करता है। इस उपन्यास की कथा वाजिदअली शाह से आरंभ होकर इस शताब्दी के आरंभ तक चलती है और इसका फलक अंग्रेजों की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता से दिल्ली और लाहौर तक विस्तृत है। जिस कालखण्ड का वर्णन उपन्यास में है उसकी प्रमुख सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक घटनायें उपन्यास में समेट ली गई हैं। कई ऐतिहासिक पात्र भी अपने वास्तविक रूप में कृति में आए हैं। इस कारण कृति को ऐतिहासिकता प्राप्त हो गई है। तथ्यों का ब्यौरेवार चित्रण तथा देश-कालानुसार पात्रों की सजीव उपस्थिति उपन्यास को गरिमा प्रदान कर देती है। यद्यपि उपन्यास का नायक तनकून (वंशीधर टंडन) काल्पनिक पात्र है, फिर भी समूची कालावधि का चित्रण करते समय उपन्यासकार उसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पात्रों से जोड़ता चलता है। परिवेश का विंब इन पंक्तियों में आकर्षक रूप से उभरता है—

“जाड़े के दिन, सबरे का समय 'मलाई मक्खन' की आवाजों से गलियाँ गुलजार। छोटे-बड़े सकरपारे कटी, छोट की दुलाइयाँ ओढ़े, रूई का सलुका, घुटनों तक बंधी फेंटदार धोतियाँ, सफेद-पीले-साफे या रेशम से कढ़ी बेल-बूटेदार टोपियाँ पहने और धिसे-पिटे गुलूबन्दों से अपने कान ढाँके शरीफ वर्ग के गरीब लोग, जलेबी, सुहाल के खोम्बे लिए डोलते, हलवाई नजर आने लगे हैं। कीचड़ भरी गलियों में खरपौरियाँ लादे गदहों की कतारों की आवाजाही शुरू हो गई है।” (करवट, पृष्ठ २७७)

नागरजी के उपन्यासों का विवेचन यह सिद्ध करता है कि उनकी कृतियों में देशकाल-निरूपण को पूरी महत्ता प्राप्त हुई है। कहीं उन्होंने सीमित कालखंड का वर्णन



पूरी समग्रता के साथ किया है तो कहीं विस्तृत कालखण्ड को अपने पूरे उपन्यास में समेटा है। भूख, सेठ बाँकेमल, बूँद और समुद्र, बिखरे तिनके तथा अग्निगर्भा कृतियों का कालखण्ड सीमित है। इसके विपरीत शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर, अमृत और विष, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस, खंजन नयन तथा करवट उपन्यासों में लंबी कालावधि चित्रित की गई है। उपन्यासकार के सीमित कालखण्ड भी अपने अंतराल में व्यापक आशय समेटे हुए हैं। व्यापक कालखण्ड वाली कृतियों में घटनायें तेजी से आँखों के सामने आती जाती हैं और प्रमुख ऐतिहासिक तथ्यों या विवेच्य विन्दुओं का स्पर्श करती चलती हैं। 'करवट', 'अमृत और विष' तथा 'शतरंज के मोहरे' में यह तीव्र गति देखी जा सकती है। 'खंजन-नयन' और 'मानस का हंस' कृतियाँ भी विशिष्ट व्यक्तियों के संपूर्ण जीवन की गतिविधियों को समेटने के कारण ऐसा ही आभास देती हैं।

नागरजी के कई उपन्यासों में स्थान की दृष्टि से लखनऊ का तथा काल की दृष्टि से वाजिद अलीशाह के शासन से लेकर अंग्रेजी शासन काल तक का चित्रण किया गया है। बूँद और समुद्र, अमृत और विष तथा करवट उपन्यासों में लखनऊ नगर के मुहल्लों का सजीव वर्णन मिलता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में शतरंज के मोहरे का स्थान भी लखनऊ ही है। नागरजी को अवध के इतिहास से विशेष प्रेम रहा है। इस बात की पुष्टि उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' तथा 'करवट' से होती है। 'अमृत और विष' के आरंभिक अंश में अरविंद शंकर अपने पुरखों के इतिहास के बहाने जिस कालखंड को चित्रित करता है, वह कालखंड 'करवट' में दोहराया गया है। इस प्रकार देशकाल के चयन में उपन्यासकार की सीमा परिलक्षित होती है परन्तु वास्तव में उसकी यह सीमा ही उसकी विशेषता भी है।

वातावरण तथा परिवेश के निर्माण में नागरजी की भाषा ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है अतः वे मनचाहा परिवेश सफलतापूर्वक निर्मित कर सके हैं।

## निष्कर्ष

अमृतलाल नागर के उपन्यासों की संरचनात्मक पद्धति का विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि एक सफल उपन्यासकार की भाँति वे उपन्यास के विविध अवयवों की महत्ता से परिचित रहे हैं। कथानक, चरित्र-सृष्टि, भाषा-शैली, कथोपकथन तथा देशकाल निरूपण में उनकी क्षमता उन्हें श्रेष्ठ उपन्यासकार सिद्ध करती है। व्यापक जीवनानुभव, भाषा पर अधिकार, किस्सागोई प्रवृत्ति, चरित्र-सृष्टि की अद्भुत सामर्थ्य तथा कथानक-गठन की दक्षता के कारण नागरजी के उपन्यास शिल्प की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

नागरजी के उपन्यासों के कथानक रोचक, सुसंबद्ध तथा मौलिक हैं। कई

उपन्यासों में कथानक संबंधी नए एवं साहसपूर्ण प्रयोग लेखक के कौशल को प्रमाणित करते हैं।

नागरजी की रचनाओं में यथार्थ जीवन बोलता है। उनके पात्र यथार्थ जीवन से लिये गये हैं, यही कारण है कि वे सजीव और वास्तविक लगते हैं। अपने पात्रों का निर्माण करते समय नागरजी अमूर्त पात्र को मूर्त बनाकर उससे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। वे अपने पात्रों के साथ इस रूप में घुल-मिल जाते हैं कि सुख के क्षणों में उत्फुल्ल होते हैं और दुःख की स्थिति में या पात्रों की मृत्यु पर फूट-फूट कर रोते भी हैं। उनकी इसी तन्मयता के कारण नागर जी के पात्र अविस्मरणीय हो गए हैं।

नागरजी की सम्मोहक भाषा पाठक को विशेष रूप से प्रभावित करती है। उन्हें भाषा का डिक्टेटर कहा जा सकता है। भाषा लाचार होकर लेखक की इच्छानुसार रूप धारण करती चलती है। कहीं वह चुटीली और व्यंग्यपूर्ण हो जाती है; कहीं काव्यात्मक और अलंकार युक्त हो जाती है; कहीं सामान्य पात्र की बोली-बानी को रेखांकित करने वाली प्रतीत होती है तो कहीं चित्रात्मक हो जाती है। उसमें कभी तत्सम् और संस्कृतनिष्ठ शब्दावली की विशिष्टता तो कभी तद्भव और जन सामान्य की भाषा की सहजता परिलक्षित होती है।

एक नाटककार होने के कारण उनके कथोपकथन भी आकर्षक बन बड़े हैं। देशकाल निरूपण तथा वातावरण सृजन में भी लेखक को विशेष सफलता मिली है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागरजी के उपन्यासों का संरचना कौशल उनकी क्षमता एवं सामर्थ्य का सूचक है। उनके उपन्यासों में शिल्प के नए साधनों के विनियोग के साथ-साथ नवीन आयामों का समावेश भी हुआ है।

### संदर्भ :

१. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ५३
२. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य का साधो, पृष्ठ ८२
३. डॉ. भगोयथ मिश्र, काव्य शास्त्र, पृष्ठ ८३
४. सोमान्त प्रहरी, अमृतलाल नागर अंक, पृष्ठ ३२ (१५ अगस्त १९६६)
५. अभिरुचि, अमृतलाल नागर अंक, पृष्ठ ९ (अगस्त - नवंबर १९८१)
६. महाकाल, पृष्ठ २५०
७. सेठ-बाँकेमल, पृष्ठ ३०
८. वही, पृष्ठ ९१
९. बूँद और समुद्र, भूमिका से
१०. डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी नवलेखन, पृष्ठ ११९
११. डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, पृष्ठ १८५
१२. राजेन्द्र यादव, "दो आस्थाएँ", देवीशंकर अवस्थी द्वारा संपादित विवेक के रंग, पृष्ठ २३५
१३. डॉ. रामविलास शर्मा, धर्मयुग २ अगस्त १९६४, पृष्ठ १६
१४. महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १५५



१५. सुहाग के नूपुर - निवेदनम्, पृष्ठ ८  
 १६. अमृतलाल नागर, राववार, १९-२५ नवम्बर १९७८, पृष्ठ २५  
 १७. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ ६८  
 १८. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ २६७  
 १९. डॉ. सत्यपाल चुघ, ऐतिहासिक उपन्यास, पृष्ठ २८६  
 २०. प्रकाश चंद्र मिश्र : अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य, पृष्ठ ११९-१२० से उद्धृत  
 २१. वही, पृष्ठ १२०  
 २२. सात घूँघट वाला मुखड़ा, फ्लेप पृष्ठ से  
 २३. विवेकी राय : हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ, पृष्ठ २५  
 २४. अभिरुचि, अगस्त-नवम्बर १९८१, पृष्ठ १६  
 २५. डॉ. सत्यपाल चुघ : ऐतिहासिक उपन्यास, पृष्ठ ४३७  
 २६. नाच्यौ बहुत गोपाल : निवेदन से  
 २७. गोपाल राय, समीक्षा (जनवरी-मार्च ८५), पृष्ठ २५  
 २८. वही, पृष्ठ २५  
 २९. डॉ. चन्द्रकान्त बांदिबडेकर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सृजन और आलोचना, पृष्ठ १११  
 ३०. बाबू गुलाब राय, काव्य के रूप, पृष्ठ १७८  
 ३१. डब्ल्यू. एच. हडसन, ऐन इन्ट्रोडक्शन टु स्टडी ऑफ लिटरेचर, पृष्ठ १४५  
 ३२. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ४४  
 ३३. महाकाल, पृष्ठ १६२, ३४. वही, पृष्ठ १६३, ३५. वही, पृष्ठ २५०, ३६. वही, पृष्ठ २५०,  
 ३७. वही, पृष्ठ १७६, ३८. वही, पृष्ठ १८५  
 ३९. राजेन्द्र यादव, आलोचना, वाल्यूम ४, १९५४-५५, पृष्ठ ४८  
 ४०. डॉ. सत्यपाल चुघ, प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ ४०५  
 ४१. डॉ. राम विलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ १३८  
 ४२. डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, पृष्ठ १९९  
 ४३. डॉ. सुपमा धवन, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ७७  
 ४४. अमृत लाल नागर, टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ १५४-१५५  
 ४५. बूँद और समुद्र, पृष्ठ १०, ४६. वही, पृष्ठ ३, ४७. वही, पृष्ठ २१, ४८. वही, पृष्ठ ४  
 ४९. वही, पृष्ठ ३६३, ५०. वही, पृष्ठ ५६३, ५१. वही, पृष्ठ ५६६  
 ५२. डॉ. सत्यपाल चुघ, प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृष्ठ ५०४  
 ५३. डॉ. सुपमा धवन, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ७०  
 ५४. डॉ. रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ १४३  
 ५५. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५८०, ५६. वही, पृष्ठ ५८१, ५७. वही, पृष्ठ २२२-२२३  
 ५८. वही, पृष्ठ ३६९  
 ५९. डॉ. सत्यपाल चुघ, प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि, पृष्ठ ५०३  
 ६०. वही, पृष्ठ ५०३  
 ६१. डॉ. रघुवंश, माध्यम, मई १९६५, पृष्ठ १०५  
 ६२. बूँद और समुद्र, पृष्ठ २०५  
 ६३. डॉ. सुदेश बत्रा, अमृतलाल नागर : व्यक्तित्व, कृतित्व और सिद्धांत, पृष्ठ ८६  
 ६४. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ १८, ६५. वही, पृष्ठ १७९, ६६. वही, पृष्ठ ८९  
 ६७. वही, पृष्ठ १५, ६८. वही, पृष्ठ १५, ६९. वही, पृष्ठ १४३, ७०. वही, पृष्ठ २३८  
 ७१. डॉ. पुष्पा बंसल, अमृतलाल नागर : भारतीय उपन्यासकार, पृष्ठ ८४  
 ७२. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ २५१, ७३. वही, पृष्ठ २६७  
 ७४. अमृत और विष, पृष्ठ ६४८, ७५. वही, पृष्ठ ६३४  
 ७६. डॉ. सत्येन्द्र, नया दौर : नया उपन्यास, पृष्ठ २३५  
 ७७. सात घूँघट वाला मुखड़ा, पृष्ठ ११५

७८. विवेकी राय, हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ, पृष्ठ ३०  
 ७९. एकदा नैमिषारण्ये, पृष्ठ ४  
 ८०. डॉ. रामदरश मिश्र, आजकल, अप्रैल १९७४, पृष्ठ ४०  
 ८१. मानस का हंस, पृष्ठ २०१-२०२, ८२. वही, पृष्ठ ३१७, ८३. वही, पृष्ठ ४११  
 ८४. वही, पृष्ठ ३०९, ८५. वही, पृष्ठ २४४, ८६. वही, पृष्ठ ४२५  
 ८७. डॉ. गोपाल राय, समीक्षा, जनवरी-मार्च १९८५, पृष्ठ ११-१२  
 ८८. वही, पृष्ठ १३  
 ८९. डॉ. नन्द किशोर नवल, समीक्षा जनवरी-मार्च १९८०, पृष्ठ ९८  
 ९०. नाच्यो बहुत गोपाल, पृष्ठ ९२, ९१. वही, पृष्ठ ३४३  
 ९२. खंजन नयन, पृष्ठ ४८  
 ९३. डॉ. चन्द्रकान्त बाँदिवडेकर, आधुनिक हिन्दी उपन्यास ; सृजन और आलोचना, पृष्ठ ११३  
 ९४. वही, पृष्ठ १११  
 ९५. खंजन नयन, पृष्ठ ५८-५९, ९६. वही, पृष्ठ ५९, ९७. वही, पृष्ठ ६१, ९८. वही, पृष्ठ ७०  
 ९९. डॉ. पुष्पा बंसल : अमृतलाल नागर-भारतीय उपन्यासकार, पृष्ठ ६२  
 १००. बिखरें तिनके, पृष्ठ ६, १०१. वही, पृष्ठ ६, १०२. वही, पृष्ठ ६, १०३. वही, पृष्ठ ६  
 १०४. वही, पृष्ठ ८, १०५. वही, पृष्ठ ११, १०६. वही, पृष्ठ १३  
 १०७. अमृतलाल नागर, जिनके साथ जिया, पृष्ठ ३४  
 १०८. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, आलोचना, जनवरी १९६६, पृष्ठ १४४  
 १०९. अमृतलाल नागर, टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ १५४  
 ११०. डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ५३  
 १११. टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ ५८  
 ११२. डॉ. सत्यपाल चुघ : प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृष्ठ ५४७  
 ११३. डॉ. रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ १३७  
 ११४. राजेन्द्र यादव, "दो आस्थाएँ", "विवेक के रंग" (संपादक देवीशंकर अवस्थी) पृष्ठ २५७  
 ११५. सुहाग के नूपुर, निवेदनम्  
 ११६. डॉ. सत्यपाल चुघ, ऐतिहासिक उपन्यास, पृष्ठ २९५  
 ११७. डॉ. नन्द किशोर नवल समीक्षा, जनवरी-मार्च १९८०, पृष्ठ १०२  
 ११८. डॉ. ममता कालिया - मनोरमा, जनवरी १९७९, (प्रथम पक्ष), पृष्ठ ३१  
 ११९. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, सीमांत प्रहरी, नागर अंक, पृष्ठ ३३  
 १२०. टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ ६८  
 १२१. अज्ञेय, अभिरुचि, अगस्त-नवम्बर १९८१, पृष्ठ १०  
 १२२. डॉ. रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृष्ठ १३६-१३७  
 १२३. डॉ. सत्यपाल चुघ, प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि का विकास, पृष्ठ ११६  
 १२४. डॉ. गोपाल, समीक्षा, जनवरी-मार्च १९८५, पृष्ठ २७  
 १२५. सुमित्रानंदन पंत का ११.९.६६ का लिखा पत्र नागरजी के नाम (दस्तावेज, जनवरी १९८६, पृष्ठ ३ से उद्धृत)  
 १२६. प्रेमचन्द-कुछ विचार, भाग-१, पृष्ठ ५५  
 १२७. डॉ. श्याम सुन्दर दास, साहित्यालोचन, पृष्ठ १७२  
 १२८. डॉ. गुलाब राय, काव्य के रूप, पृष्ठ १७६  
 १२९. डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३७९  
 १३०. डॉ. विवेकी राय, समीक्षा (जनवरी-फरवरी १९७३) पृष्ठ २६  
 १३१. बँद और समुद्र "भूमिका" से, १३२. वही, पृष्ठ १  
 १३३. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, पृष्ठ ८०  
 १३४. सात घूँघट वाला मुखड़ा, विज्ञप्ति, पृष्ठ ६ से.



## नागरजी की औपन्यासिक प्रतिभा का प्रतिपाद्य

उपन्यासकार अपनी कृतियों में जीवन की व्याख्या करता है। यह उपन्यास का सामान्य उद्देश्य है। परन्तु इस व्याख्या के साथ उपन्यास का विशिष्ट उद्देश्य भी होता है। अपनी कृतियों में लेखक कभी जान-बूझकर तो कभी अनजाने ही कुछ समस्याओं और जटिलताओं की प्रस्तुति कर देता है जिससे लेखकीय दृष्टि का सहज ही आभास मिल जाता है। इस दृष्टि को ही उपन्यास का प्रतिपाद्य, जीवन-दर्शन या उद्देश्य कहते हैं। उपन्यासकार का शिल्प उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होता है। उसे जिस प्रकार के जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा करनी होती है, वह वैसे ही शिल्प का गठन कर लेता है। डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव ने उपन्यास के जीवन-दर्शन के संबंध में लिखा है— “कोई उपन्यासकार किसी मत का खंडन-मंडन या सिद्धांत का प्रतिपादन करने के लिए उपन्यास की रचना नहीं करता। वह तो मानव जीवन का निरीक्षण करके केवल उसके बहुत से छाया-चित्र उपस्थित करता है। इन छाया-चित्रों में ही वह मूलभूत सत्य लिपटा होता है जिसे ढूँढ़ निकालना आलोचक का काम होता है। अतएव किसी भी बड़े उपन्यास में केवल लेखक के मानव-जीवन संबंधी निरीक्षण मात्र होते हैं जिनमें सर्जन-शक्ति निहित होती है। इन्हीं निरीक्षणों का मनन तथा प्रतिपादन करके हमें एक नित्य सत्य का दर्शन होता है। उपन्यासों में जीवन-दर्शन का यही अर्थ है।”

उपन्यासकार प्रच्छन्न रूप से तो कभी व्यक्त रूप से अपनी भावना पाठक तक पहुँचा देता है परन्तु उद्देश्य की पूर्वयोजना उपन्यास को निर्जीव, कृत्रिम और बोझिल बना देती है। श्रेष्ठ उपन्यासकार कृति के पात्रों की बातचीत तथा घटनाओं के माध्यम से अपने विचारों को स्वाभाविक रूप से प्रकट करता चलता है। अपने अनुभवों एवम् विचारों द्वारा उपन्यासकार जिस उद्देश्य को प्रतिपादित करना चाहता है वह व्याख्यान, उपदेश या भाषण के रूप में न होकर विभिन्न सूक्तियों और वाक्यों के साथ-साथ संपूर्ण उपन्यास के केन्द्रीय भाव के रूप में बिखरा रहता है।

यद्यपि पाठकों का मनोरंजन करना उपन्यासकार का मुख्य ध्येय होता है तथापि मात्र मनोरंजन हेतु लिखे गए उपन्यास निम्न कोटि के होते हैं। जो कृतियाँ निश्चित

राजनीतिक सिद्धांतों एवं मतों के प्रचार हेतु लिखी जाती हैं वे शीघ्र ही अरुचिकर हो जाती हैं तथा उनकी गणना उच्चकोटि की कृतियों में नहीं की जाती। श्रेष्ठ उपन्यास वही होते हैं जिनमें गंभीर विषय के प्रतिपादन हेतु कलात्मकता का निर्वाह हुआ हो। इस प्रकार मनोरंजन और मानवीय मूल्यों के सर्वोत्तम रूप की प्रतिष्ठा ही उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। 'माधुरी' के अक्टूबर १९२२ के अंक में मुंशी प्रेमचन्द ने अपने निबन्ध 'उपन्यास रचना' में लिखा है— "यह विवादास्पद विषय है कि उपन्यास को किसी उद्देश्य से लिखना चाहिए या नहीं। प्रवीण समालोचकगणों की राय में साहित्य का उद्देश्य केवल भाव-चित्रण ही होना चाहिए। उद्देश्य से लिखी हुई कहानियों में बहुधा लेखक को विवश होकर असंगत बातें कहनी पड़ती हैं, अनावश्यक घटनाओं की आयोजना करनी पड़ती है और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसे उपदेशक का स्थान ग्रहण करना पड़ता है, मगर रसिक समाज किसी से उपदेश लेना नहीं चाहता। उसे उपदेशों से अरुचि है और उपदेशकों से घृणा। वह केवल मनोरंजन और मनोदर्शन चाहता है। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि गत शताब्दी में पार्श्वतय देशों में जितने सुधार हुए हैं, उनमें अधिकांश का बीजारोपण उपन्यासों द्वारा ही किया गया था।" अपने इसी लेख के अंत में प्रेमचंद ने मनोरंजन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा है— "उपन्यासकार यह कभी नहीं भूल सकता कि उसका प्रधान कर्तव्य पाठकों का म-गलत करना, उनका मनोरंजन करना है। और सभी बातें इसके अधीन हैं। जब पाठक का जी ही कहानी में न लगा, तो वह क्या लेखक के भावों को समझेगा? क्या उसके अनुभवों से लाभ उठाएगा? वह घृणा के साथ किताब को पटक देगा और सदा के लिए उपन्यासों का निन्दक हो जायेगा।" प्रेमचंद के इन विचारों से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का उद्देश्य केवल मनोरंजन प्रदान करना ही नहीं होता, उपदेश देना या गंभीर अर्थ समझाना भी होता है।

उपन्यासकार केवल अनुभूतियों से उद्वेलित-आंदोलित ही नहीं होता, अभिव्यक्ति हेतु आकुल-व्याकुल भी रहता है। उसका विशिष्ट अध्ययन तथा व्यापक जीवनानुभव, प्रौढ़ एवं प्रखर चिन्तन के साथ संपृक्त होकर उसकी कृतियों को आकर्षक बना देता है। इन तीनों विशेषताओं का समन्वय नागरजी की कृतियों में देखा जा सकता है। अपने एक लेख में उपन्यासकार के विचारक पक्ष का उल्लेख करते हुए नागरजी ने लिखा है— "कथा-उपन्यास लेखक का विचारक पक्ष कभी गाफिल नहीं रहना चाहिए बल्कि वह इतना पच जाय कि कला का शरबत बनकर छलक पड़े।" इसी लेख में नागरजी ने उपन्यासकार की रचना-प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए उसके उद्देश्य प्राप्त करने की प्रविधि की चर्चा की है— "भक्त जिस तरह जप-ध्यान, स्मरण, कीर्तन, वंदन, भ्रमण आदि से अपने प्रभु की भक्ति करता है उसी तरह उपन्यासकार अनुभव, स्वाध्याय,



चिंतन, मनन, दृश्य दर्शन, भाव-प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता आदि गुणों के सहारे अपने उद्देश्य को प्राप्त करता है।”<sup>14</sup>

नागरजी के उपन्यास उपर्युक्त गुणों से युक्त हैं। उनके लिए 'स्वाध्याय' का तात्पर्य किसी लेखक के विचारों का अंधानुकरण नहीं है, अपितु तुलनात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत सुव्यवस्थित रचना के लिए अपने को प्रोत्साहित करना है। नागरजी ने हिन्दी के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियों का अध्ययन तो किया ही है विश्व के चोटी के उपन्यासकारों के उपन्यासों को भी पढ़ा है। इस प्रकार उपन्यास साहित्य का भलीभाँति अध्ययन करते हुए वे अपने देश और समाज की विभिन्न गतिविधियों को अपनी सजग दृष्टि से अवलोकित करते रहे हैं। समाज की समस्याओं को किस्सागोई के बल पर नागरजी ने जिन रूपों में उपन्यासों में उभारा है उससे उनके व्यापक जीवनानुभव की पुष्टि होती है। यही कारण है कि उनके चिंतन का दायरा अत्यंत विस्तृत है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उनके विचारों का अवलोकन नागरजी की प्रतिभा के प्रतिपाद्य को समझने में सहायक होगा।

## चिन्तन का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

उपन्यास को मानव जीवन का गद्य माना गया है। अतः इस विधा के दायरे में मानव की विविध समस्याएँ स्वतः आ जाती हैं। मानव की उपलब्धियों और सीमाओं का जितना सफल और स्पष्ट चित्रण उपन्यास में हो सकता है, उतना किसी अन्य विधा में नहीं। डॉ. शांति स्वरूप गुप्त के अनुसार “उपन्यास लेखक के जीवन का आख्यान नहीं, उस समूचे जीवन का परिप्रेक्षण है जिसे वह देखता, समझता, भोगता और रचता है, यह जीवन चाहे किसी एक व्यक्ति का हो अथवा पूरे समाज का या उसके किसी विशेष अंश का, होगा हमेशा वृहत्तर, गंभीर, अन्वितिपूर्ण, व्यापक और हृद्य।”<sup>15</sup> इस प्रकार समाज का विश्लेषण, विवेचन एवं अंकन उपन्यास में प्राप्त होता है। सामाजिक उपन्यास मानव जीवन का विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करते हैं। इस विश्लेषण के दौरान उपन्यासकार समाज की समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है और यथा संभव उनके समाधान की ओर संकेत भी करता है। उसका अनुभव उसके लिए बड़ा उपयोगी होता है।

श्री नरेन्द्र कोहली के अनुसार “नागरजी की मान्यता है कि लेखक का अपने जीवन का अनुभव उसके अचेतन मस्तिष्क में जाकर स्थिर हो जाता है और उसके व्यक्तित्व के तत्त्वों के साथ मिश्रित होकर उपयुक्त अवसर पर प्रकट हो जाता है।”<sup>16</sup>

नागरजी की समाज सचेतन दृष्टि उपन्यासों में देखी जा सकती है। अमृत लाल

नागर प्रेमचंद परंपरा के समर्थ उपन्यासकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने समाज की विकृतियों को देखा और परखा है तथा अपने साहित्य में उस यथार्थ के स्वस्थ स्वरूप को उपस्थित किया है। डॉ. हेमराज कौशिक के अनुसार— “उनमें मौलिक प्रेरणा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, गहन आनुभूतिक धरातल, मानव मनोविश्लेषक की गंभीर पैठ और देशकालानुसार सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने की विलक्षण प्रतिभा विद्यमान है। उन्होंने जीवन को भली-भाँति देख-सुनकर और आनुभूतिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसका विधिवत आकलन किया है।”<sup>८</sup>

नागरजी के सभी उपन्यासों में चिंतन की सामाजिक भावभूमि देखी जा सकती है। यद्यपि उनके सामाजिक उपन्यासों में महाकाल, सेठ बाँकेमल, बूँद और समुद्र, अमृत और विष, नाच्यौ बहुत गोपाल, बिखरे तिनके, अग्निगर्भा और करवट ही आते हैं तथापि उनके ऐतिहासिक, सांस्कृतिक उपन्यासों में भी, सामाजिक दृष्टि परिलक्षित होती है। उनके इस चिन्तन को निम्नलिखित उपशीर्षकों के माध्यम से समझा जा सकता है—

### व्यक्ति और समाज का समन्वय :

प्रेमचंद की दृष्टि यदि समाज की जटिल परिस्थितियों एवं समस्याओं पर केन्द्रित थी तो प्रेमचन्द-परवर्ती उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति की समस्याओं पर केन्द्रित हुआ। यह ठीक है कि उत्तर-प्रेमचंद काल के कुछ उपन्यासकारों ने प्रेमचंद की परंपरा का ही अनुगमन किया परन्तु इस काल के उपन्यासकारों के एक वर्ग ने व्यक्ति के अंतर्मन की विविध समस्याओं के चित्रण में ही विशेष रुचि दिखाई। इस कारण सामाजिक जीवन का संपूर्ण चित्रण व्यक्ति की तुलना में उपेक्षित हो गया। नागरजी ने व्यक्ति और समाज को अन्योन्याश्रित माना और अपनी कृतियों में समस्याओं का आकलन इसी रूप में किया। इस प्रकार प्रेमचंद की सामाजिक कथा परंपरा के उन्नायक होते हुए भी उन्होंने युगानुरूप चिन्तन को नवीन दिशा दी। प्रेमचन्द का साहित्य व्यक्ति के आंतरिक जीवन का स्पर्श नहीं करता, वे सामाजिक धरातल पर व्यक्ति की उपेक्षा करते हुए भी परिलक्षित होते हैं परन्तु नागरजी व्यक्ति चेतना के साथ सामाजिक चेतना के सामंजस्य पर जोर देते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनके लिए व्यक्ति और समाज दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु नागरजी व्यक्ति की सापेक्षता को अनिवार्य रूप में ग्रहण करते हैं। ‘महाकाल’ से लेकर ‘करवट’ तक उनकी इस दृष्टि का अवलोकन सहज रूप में किया जा सकता है —

नागरजी के प्रथम उपन्यास ‘भूख’ (महाकाल) का नायक पाँचू गोपाल मुखर्जी अपने बौद्धिक चिंतन द्वारा व्यक्ति और समाज के समन्वय की ओर संकेत करता है— “खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। लेकिन यह खुदी है क्या और क्यों है। अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं



देखता? दुनिया से अलग रहकर मैं अपनी असलियत का अनुभव ही क्योंकर कर सकता हूँ? सम्मिलित रूप से समाज की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझपर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज के तराजू पर ही करता हूँ।”

व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करते हुए ही वे उसकी सामाजिक संबद्धता के पक्षधर हैं। इसी उपन्यास में वे स्पष्ट रूप से कहते हैं— “व्यक्ति समाज का नेता नहीं, साथी बनकर ही ठीक तरह से चल सकता है। मानव और मानवता को तभी एक रूप में देखा जा सकता है। सच पूछो तो इन्हें दो नाम देकर अलग-अलग देखना ही भ्रम है। एक ही चीज के दो नाम हैं— “व्यक्ति और समाज — मानव और मानवता।”

नागरजी के पहले ही उपन्यास में इस दृष्टि की स्थापना का विशेष महत्त्व है। यह समन्वय भावना उनकी प्रख्यात कृति “बूँद और समुद्र” में अधिक स्पष्ट हुई है— “व्यक्ति-व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो। —मैं अकेला भी हूँ पर बहुजन के साथ में हूँ, दुख-सुख, शान्ति-अशांति आदि व्यक्तिगत अनुभव हैं पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के हैं, अतएव हमें यह मानना चाहिये कि समाज एक है— व्यक्ति तो अनेक हैं।”

उपन्यास का नामकरण प्रतीकात्मक है, व्यक्ति और समाज के समन्वय पर बल देने वाला है। बूँद को व्यक्ति के रूप में तथा समाज को समुद्र के रूप में चित्रित करते हुए उपन्यास के अंत में बाबा रामजी के माध्यम से लेखक ने अपनी इसी समन्वय-भावना को व्यक्त किया है — “मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वंद्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे — जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है — लहरों से लहरें, लहरों से समुद्र बनता है — इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।”

व्यक्ति और समाज, बूँद और समुद्र के आपसी विरोध को शांत करते हुए उनके अन्योन्याश्रित संबंध की ओर नागरजी का स्पष्ट संकेत है— “हर बूँद का महत्त्व है क्योंकि वही तो अनंत सागर है, एक बूँद व्यर्थ क्यों जाय? उसका सदुपयोग करो।”

समन्वय की महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे व्यक्ति और समाज की सीमाओं की ओर भी संकेत करने में संकोच नहीं करते — “व्यक्ति और समाज दोनों ही दोषपूर्ण हैं। जब तक समाज नहीं बदलता तब तक व्यक्ति बेचारा क्या करेगा?”

समन्वय की यह भावना नागरजी के ‘अमृत और विष’ उपन्यास में अरविदशंकर के माध्यम से व्यक्त हुई है। यही चिन्तन ‘शतरंज के मोहरे’ और ‘एकदा नैमिषारण्ये’ में भी ऐतिहासिक - पौराणिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त हुआ है। नैमिषारण्य में अनेकता में

एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का चित्रण इसी सामंजस्य की ओर संकेत है। 'मानस का हंस' में तुलसीदास की वाणी द्वारा भी यही विचारधारा प्रतिपादित की गई है — "में व्यक्ति की भीतर वाली सगुण-निर्गुण खण्डित आस्था को दशरथ नंदन राम की भक्ति से जोड़कर फिर खड़ा कर देना चाहता हूँ। मैं अकेले ही, पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूँ।"<sup>१५</sup>

यही भावना 'करवट' में वंशीधर टंडन के माध्यम से वृहत्तर परिवेश में अभिव्यक्त हुई है — "देश के लिए काम करने वाले जितने लोग या आर्गनाइजेशन्स हैं, वे सब मेरे निजी परिवार के ही अंग हैं। वंशों, धर्मों या प्रांतीयता जैसा कोई तंग दायरा हमें नहीं बाँधता है..... थोड़ी देर के लिए मैंने यह महसूस किया कि उस हाल में एक दर्शक की हैसियत से कुर्सी पर मैं सिर्फ वंशीधर टंडन नहीं, बल्कि मेरे रूप में पूरा हिन्दुस्तान बैठा हुआ है।"<sup>१६</sup>

इस प्रकार उपन्यासकार ने व्यक्ति को सीमित दायरे से निकालकर समाज और राष्ट्र को व्यापक परिधि से जोड़ दिया है। उसकी स्पष्ट धारणा है कि मानवता का कल्याण समाज और व्यक्ति के संघर्ष में नहीं बल्कि समन्वय में ही निहित है। समाज की सार्थकता व्यक्ति के कारण है और व्यक्ति भी समाज में ही सुरक्षित है। वास्तव में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

### बेमेल-विवाह, बाल-विवाह तथा दहेज का विरोध, अंतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह, एवं प्रेम विवाह का समर्थन :

समाज की महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में विवाह की प्रतिष्ठा प्राचीन काल से रही है। यद्यपि सभ्यता के विकास के साथ-साथ विवाह-संबंधी धारणाओं में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथापि इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक महत्ता को सभी एक स्वर से स्वीकारते हैं। विद्वानों ने विवाह को नर-नारी के मिलन की समाज-स्वीकृति विधि माना है। भारतीय समाज में विवाह संबंधी दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। पहली पद्धति के अनुसार लड़के-लड़कियों को अपने अभिभावकों या माता-पिता की इच्छा से विवाह करना पड़ता है। यह पारंपरिक पद्धति संयुक्त परिवार की प्राचीन भारतीय भावना को सुदृढ़ करने वाली मानी जाती है। दूसरी पद्धति में लड़के-लड़कियों को जीवन-साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता होती है। यह पद्धति पाश्चात्य समाज एवम् संस्कृति से प्रभावित है तथा संयुक्त परिवार की भावना पर चोट करती है। कहा जाता है कि भारत में संयुक्त परिवार के विघटन तथा व्यक्तिगत परिवारों (इंडिविजुअल फेमिली) के सृजन का कारण यह आधुनिक विवाह पद्धति ही है।

यद्यपि विवाह की इन दोनों पद्धतियों के पक्ष और विपक्ष में बहुत से तर्क दिए जा सकते हैं तथापि यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि पारंपरिक विवाह



आज के संदर्भ में अव्यावहारिक होते जा रहे हैं। विवाह को दो आत्माओं का पुनीत मिलन, जन्म-जन्मांतर का संबंध या स्थायी बन्धन मानने की पारंपरिक अवधारणा को वैज्ञानिक प्रगति, नारी जागरण, औद्योगिक क्रान्ति तथा शिक्षा के प्रसार ने परिवर्तित कर दिया है। विकसित समाज में विवाह केवल ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की स्थापना हेतु किया गया विधान नहीं है बल्कि पति-पत्नी के रूप में व्यक्तियों का वह आत्मीय संबंध है जिसमें वे एक दूसरे के पूरक और प्रेरक होकर यथार्थ के धरातल पर अपने जीवन का उन्नयन करते हैं। वर्तमान समाज में सिविल मैरेज, प्रेम-विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह आदि का प्रचलन विवाह के प्रति परिवर्तित अवधारणा का संकेत है।

नागरजी के उपन्यासों में विवाह की पारंपरिक पद्धति के दोषों पर प्रहार किया गया है। वे विधवा-विवाह, अंतर्जातीय-विवाह तथा प्रेम-विवाह के समर्थक प्रतीत होते हैं। नागरजी ने 'बूँद और समुद्र' में विवाह संबंधी दृष्टि का परिचय दिया है। उनके अनुसार "शादी मानव समाज की जरूरी रस्म है, ऊँचा सिद्धान्त है।"<sup>19</sup> उन्होंने अन्यत्र कहा भी है — "स्त्री-पुरुष नाते का अंतिम रूप है — पति-पत्नी होना ..... । ..... स्त्री, पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक-दूसरे को पाते हैं; मेरा इस बात में दृढ़ विश्वास है। और पाने के लिए उन्हें आपस में अपने आपको अनेक कसौटियों पर कसना होता है। ये जिम्मेदारी का नाता है— रईसों, कलाकारों, मनचलों के दिल बहलाव का खेल नहीं।"<sup>20</sup>

महिपाल और शीला की बातचीत में नागरजी ने पारंपरिक विवाह और प्रेम-विवाह दोनों की कमियों को उजागर किया है। पारंपरिक विवाह के दोषों पर उपन्यासकार के स्पष्ट विचार देखे जा सकते हैं — "मेरी शादी असफल रही; जैसे माता-पिता द्वारा तय की गई शादियाँ आमतौर पर होती हैं। हमारे अस्सी फीसदी घरों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्ज की तरह निभाई जाती हैं। नतीजा यह होता है कि कहीं पति, कहीं पत्नी और कहीं पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे के पीठ-पीछे व्यभिचार करते हैं।"<sup>21</sup>

शीला प्रेम-विवाह की कमियों का उल्लेख करते हुए महिलाओं की आर्थिक-स्वतंत्रता का समर्थन करती है— ".....लव मैरेजेज में भी यही होता है। जब तक नये-नये रोमियों और जूलिएट रहे, दोनों में बड़ा प्रेम रहा; फिर या तो तलाक या दगावाजी — यही रास्ते रह जाते हैं। मैं भी इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि शादी का रिवाज इंसानों में धोखा-धड़ी, झूठ और अत्याचारों को जगाता है। इसे हटा दीजिए, औरतों को आर्थिक रूप से आजाद कर दीजिए।"<sup>22</sup>

इसी उपन्यास के आरंभ में प्रेम-विवाह के प्रति महिलाओं के आकर्षण को सहज रूप में व्यक्त किया गया है। अंतर्जातीय प्रेम विवाह करने के कारण तारा दूसरी सामान्य शिक्षा-प्राप्त महिलाओं के लिए हीरोइन है। 'बड़ी' के शब्दों में — "कुछ भी

कह लो भाई, 'लौ मैरिज' में होता अजब मजा है। एक बार जब हम एर्थ में पढ़ते थे तो हमारा भी 'लौ' हुआ था एक लड़के से।"<sup>21</sup> बड़ी का यह कथन छोटी के चेहरे पर 'हाय देया' का भाव उदित कर देता है। वह कहती है — "लव में तो यही खराबी है, वियोग हो जाता है। हमारा तो भाई सच्ची कहेँ किसी से लव-वव हुआ नहीं। हाँ, जो ब्याह के पहले 'इन्हीं से' कहीं हमारी आँखें भी लड़ जातीं तो बड़ा मजा आता।"<sup>22</sup> देवरानी-जेठानी का यह वार्तालाप प्रेम-विवाह के प्रति जनाकर्षण पर प्रकाश डालता है। 'छोटी' विवाह-पूर्व प्रेम की आवश्यकता पर बल तो देती है परन्तु वह प्रेम की प्रवंचनाओं से भी अपरिचित नहीं है — "इसीलिए तो कहती हूँ कि लव में भी धोखा है। अभी मान लो कि तुम्हारा कुछ ऊँच-नीच हो जाता, तो बदनामी तो तुम्हारी होती। उस डाक्टर को कोई भी कुछ न कहता।"<sup>23</sup>

बड़ी के अनुसार दुनिया से शादी की रसम ही उठा दी जानी चाहिए।<sup>24</sup> वह कहती है — "जब तक माँ-बापों के हाथ में लड़की-लड़कों की शादी करने का अधिकार रहेगा तब तक स्त्रियों की यों ही दुर्दशा रहेगी।"<sup>25</sup>

विवाह संस्था के प्रति आस्था और अनास्था के अनेक विचार उपन्यास में मिलते हैं। डॉ. शीला स्विंग कहती हैं — "इंसान के लिए शादी करना बहुत जरूरी है। इससे यह होता है कि इंसान जिसे चाहता है उसे हरदम अपने पास, अपने घर में अपने कलेजे में छिपाकर रख तो सकता है। कोई उँगली उठाकर यह तो नहीं कह सकता कि यह 'तुम्हारा' — कानूनन तुम्हारा — नहीं है।"<sup>26</sup> डॉ. शीला यह मानती हैं कि "प्रेम थ्योरी नहीं प्रैक्टिस है; जितना ज्यादा प्यार करो, रिश्ता उतना ही गहरा पैठता है।"<sup>27</sup> शीला स्विंग के इन दो कथनों से प्रेम तथा विवाह संस्था के प्रति विश्वास की भावना प्रकट होती है। वास्तव में इन कथनों से प्रेम-विवाह की महत्ता ही प्रतिपादित होती है। परंतु सज्जन वर्मा विवाह संस्था पर प्रहार करते हुए कहता है — "शादी और उसका मॉरल कोड समाज को उठाने के बजाय गिराते हैं। उन्हें खत्म कर देना चाहिए।"<sup>28</sup> महिपाल का निम्नलिखित कथन विवाह की सार्थकता और निरर्थकता दोनों की ओर संकेत करता है — "विवाह नामक अति सशक्त संस्था को बड़े पुराने जमाने से आज तक स्त्री पुरुष के इन अनैतिक नातों ने अनगिनत आघात पहुँचाया है। फिर भी यह सच है कि विवाह की प्रथा आज तक किसी के द्वारा भी तोड़े न टूट सकी। विवाह की प्रथा सतीत्व के सिद्धान्त की जननी है। और सतीत्व का आदर्श सदा एकांगी रूप से ही समाज पर लागू हुआ है। यह एकांगी सतीत्व ही विवाह-प्रथा को अधिकांश में अर्थहीन और लकवा-पीड़ित सा लुंज बनाए हुए है।"<sup>29</sup>

इस प्रकार नागरजी ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से विवाह संबंधी उन्मुक्त विचार प्रकट किए हैं। ये विचार विवाह पद्धति के गुण-दोषों का विवेचन करते हैं। विवाह



संस्था के प्रति नागरजी आस्थावान हैं। वे कहते हैं — “पति-पत्नी के रूप में स्त्री-पुरुष की सहज जोड़ी देश-काल से परे है। वह नित्य है; उसका अंत नहीं।”<sup>30</sup>

नागरजी ने बेमेल विवाह, बाल-विवाह और विवाहेतर यौन संबंधों की निन्दा की है। ‘बूँद और समुद्र’ की ‘बड़ी’ अनमेल विवाह के कारण अपने पति मनिया के प्रति एकनिष्ठ नहीं रह पाती और विरहेश से प्रेम करते हुए उस सीमा तक पहुँच जाती है जहाँ उसे अत्यंत अपमानित होकर घर से निकलना पड़ता है। ठीक यही स्थिति महिपाल की भी है। अपनी पत्नी के दकियानूसी विचारों से महिपाल के विचार मेल नहीं खाते और वह अपने अनमेल विवाह की प्रतिक्रिया में डॉ. शीला स्विंग से आत्मीयता स्थापित कर लेता है। परन्तु इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विवाहेतर यौन संबंधों के कारण जो दुर्गति ‘बड़ी’ की हुई वह ‘महिपाल’ की नहीं होती। पुरुष और नारी के बीच यह विभेद स्थापित कर उपन्यासकार ने पुरुष प्रधान समाज में नारी की दयनीय दशा को उजागर किया है। उपन्यासकार ने ये विचार पृष्ठ ४८० पर स्पष्ट रूप से व्यक्त किए हैं — “जहाँ पुरुष अनेक पत्नियों, अनेक रखेलों के साथ सुख का जीवन बिताने के लिए स्वतंत्र है और स्त्री इस तरह बात-बात पर दण्डित की जाती है वहाँ स्त्रियों द्वारा जो पाप न हो वह थोड़ा है। पुरुष ने अपनी सुख-सुविधा के लिए स्त्री को गणिका भी बनाया। पति-पत्नी के वैध नाते के अतिरिक्त समाज में उप पति, उप पत्नी, कौटुम्बिक व्यभिचार, परजातीय व्यभिचार, वेश्यागामिता, बलात्कार आदि द्वारा भी अनेक अवैध नाते प्रचलित हैं।”<sup>31</sup>

उपन्यास में बहु विवाह की समस्या भी चित्रित है। ‘ताई’ की परित्यक्तावस्था बहु-विवाह का परिणाम है।

नागरजी ने बाल विवाह की पद्धति का विरोध करने के लिए ‘अमृत और विष’ की नायिका रानी का प्रसंग प्रस्तुत किया है। रानी कहती है — “नाम को व्याह हुआ था मेरा। अब तो उस पति की सूरत भी याद नहीं आती। खुल के देखा ही कब? बातें ही कब हुई? और तब उमर भी क्या थी मेरी, तेरहवाँ साल था।”<sup>32</sup> नागरजी केवल बाल-विवाह की समस्या ही नहीं उठाते, रानी का पुनर्विवाह कराकर वह उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय समाज में विवाह के साथ दहेज की समस्या भी जुड़ गई है। इस समस्या की विकरालता ने आयोजित विवाह की प्रविधि को दूषित कर दिया है। नागरजी ने अपने उपन्यासों में दहेज के अभिशाप का यत्र-तत्र चित्रण किया है। उनका ‘अग्निगर्भ’ उपन्यास दहेज के लिए भारतीय नारी के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शोषण का चित्र उपस्थित करता है। इस उपन्यास में दहेज की ज्वलन्त समस्या ही मूल रूप से उठाई गई है।

‘अमृत और विष’ उपन्यास में नागरजी ने विधवा-विवाह और अंतर्जातीय

विवाह का खुला समर्थन किया है। बाल-विधवा रानी का उपन्यास नायक रमेश से विवाह उनकी इसी दृष्टि का सूचक है। रानी के पिता के विरोध करने पर रानी की सौतेली माँ अपने तर्कों द्वारा पति को निरुत्तर कर देती है। वह कहती है — “जैसे रंडुए का पाप वैसे रॉड का भी। रंडुआ तो फिर से व्याह लाता है और वही काम करता है, जिसके लिए रॉड को अपना मन मारना पड़ता है। और जो कोई बिचारी जवान-जहान रॉड अपने मन से बेबस होकर वही काम कर बैठे तो पापिन। वाह रे तुम्हारा न्याय।”<sup>32</sup> यह कथन एक ओर तो पुरुष प्रधान समाज के पक्षपात को स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर विधवा विवाह का औचित्य स्वीकार करता है।

इसी संदर्भ में लेखक ने रमेश और रानी के मुख से अंतर्जातीय विवाह और विधवा विवाह के पक्ष में स्पष्ट विचार व्यक्त करवाये हैं। नागरजी आयोजित विवाह के ऊलजलूल खर्चों के विरोधी हैं। आधुनिक पद्धति द्वारा रजिस्ट्री विवाह के प्रति उनका समर्थन है — “शादी रजिस्ट्री कानून से होगी और पुरोहित स्वयं डाक्टर आत्माराम होंगे, न मन्त्र न पूजा-पाठ।”<sup>33</sup> डाक्टर आत्माराम तो विवाह की नवीनतम दृष्टि के पक्षधर हैं। उनके अनुसार “अब इस देश में शादियाँ इस तरीके से होनी चाहिए कि उन्हें देखकर कोई यह न कह सके कि यह हिन्दू की शादी है या मुसलमान की या क्रिश्चियन की हो रही है। समाज के सामने नव दम्पति एक दूसरे को स्वीकार करें और समाज में स्थान पाएँ। इससे हमारी जातीय और साम्प्रदायिक भेद-भावनाएँ मिटेंगी।”<sup>34</sup> ‘अमृत और विष’ में अरविंद शंकर वाली कथा में अंतर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह, विवाह-पूर्व प्रेम संबंध तथा प्रेम-विवाह के प्रसंग आए हैं। अरविंद शंकर का एक पुत्र भवानी स्वयं खत्री है परन्तु कॉलेज की सहपाठिनी ब्राह्मण कन्या उषा से आर्य समाज की पद्धति से विवाह रचाता है। परवर्ती काल में दोनों में संबंध विच्छेद हो जाता है। अरविंद शंकर का दूसरा पुत्र उमेश भी प्रेम विवाह करता है। उसकी क्षयग्रस्त पुत्री मुसलमान युवक से प्रेम कर विवाह-पूर्व ही गर्भवती हो जाती है। नागरजी ने इन सभी प्रसंगों को रखते हुए अरविंद शंकर द्वारा बहु विवाह के विरोध में तथा विधवा विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह के समर्थन में यह बात कहलवाई है— “मैंने कुलीनों को दो-दो चार-चार व्याह करते हुए देखा था और वह उस समय सामाजिक दृष्टि से पाप नहीं था। लेकिन आज वह पाप है, कानून के द्वारा दण्डनीय है। मैंने विधवाओं और अंतर्जातीय विवाह के प्रति अपने समाज की घोर घृणा देखी है। ऐसे विवाह किसी समय में पाप थे, किन्तु आज वे पुण्य हैं। विधवा से विवाह करनेवाला अथवा अंतर्जातीय प्रेम-विवाह करने वाला युवक अपने आपको किसी हीरो से कम नहीं समझता। समय बहुत बदल गया है।”<sup>35</sup>

‘बिखरे तिनके’ उपन्यास में सोहागी और सरसुतिया का विवाह कराकर नागरजी ने इस भ्रम को तोड़ा है कि अंतर्जातीय विवाह केवल उच्च वर्ग में ही हो सकते



हैं—निम्न वर्ग में इनका प्रचलन नहीं है। अहीर जाति का सोहागी और हरिजन सरसुतिया के विवाह को लेकर समाज के ठेकेदारों की व्यग्रता की भी उपन्यास में खिल्ली उड़ाई गई है। श्यामा के प्रति बिल्लू की सहानुभूति इन शब्दों में स्पष्ट है — “विधवा है बेचारी। दो बरस पहले केवल फेरों की गुनहगार हो गई थी।”<sup>१३०</sup>

विवाहिता कौशल्या को गुंडों द्वारा उठा लिए जाने पर ससुराल में प्रवेश नहीं मिलता है। ऐसी निदोष लड़की का पुनर्विवाह देशदीपक से करवाकर उपन्यासकार ने अपनी स्वस्थ एवं प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। ‘करवट’ उपन्यास का यह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है।

नागरजी ने प्रेम विवाह का उदाहरण ‘अग्निगर्भा’ उपन्यास में भी प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास के पात्रों में बेमेल विवाह का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण ‘नाच्यो बहुत गोपाल’ की निर्गुण है जो एक बूढ़े मसुरियादीन से ब्याह दी जाती है।

इस प्रकार नागरजी के उपन्यासों में विवाह संबंधी नवीन दृष्टि का स्पष्ट समर्थन प्राप्त होता है। वे बेमेल विवाह, बाल विवाह, दहेज तथा विवाह की दकियानूसी प्रवृत्ति के विरोधी हैं; अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह एवं प्रेम विवाह के वे प्रबल पक्षधर हैं।

### प्रेम एवम् काम संबंधी दृष्टिकोण

मनोवैज्ञानिकों, चिन्तकों, दार्शनिकों एवं साहित्यकारों ने अपनी-अपनी कृतियों में प्रेम एवं काम के विविध रूपों को अपनी-अपनी दृष्टियों से विवेचित किया है। डॉ. हेमराज कौशिक के अनुसार— “प्रेम तथा काम यद्यपि सहजात हैं तथापि इनमें सूक्ष्म अंतर है। प्रेम जहाँ पर सुख-दुःख निरपेक्ष होकर प्रतिष्ठा बनाता है वहाँ काम की पराकाष्ठा आनन्दोपलब्धि में है। प्रेम आधारभूत रूप में आत्मिक क्रिया है जबकि काम का संबंध देह की चेष्टाओं तक सीमित है।”<sup>१३१</sup>

काम मानव जीवन की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है। भारतीय मनीषा ने पुरुषार्थ चतुष्टय में काम की गणना की है। सृष्टि रचना का मूल आधार यही कामवृत्ति है। भारतीय चिंतकों ने काम संबंधी स्वाधीनता को अनैतिक माना है और धर्म के द्वारा उसके नियंत्रण की चेष्टा की है। फ्रायड ने काम की अवधारणा को देह-सुख के सीमित दायरे से निकालकर व्यापक परिवेश में उपस्थित किया है। वे काम को समस्त क्रिया-कलापों का मूल आधार मानते हैं। अपने संकुचित अर्थ में काम का तात्पर्य नर-नारी के दैहिक संबंध से लिया जाता है परन्तु व्यापक अर्थ में काम को इच्छा का पर्याय माना गया है। फ्रायड की मान्यता है कि मनुष्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त ‘लिबिडो’ द्वारा संचालित होता रहता है। इसके अंतर्गत केवल दैहिक संबंध को ही नहीं लिया जाता अपितु वात्सल्य, स्नेह, सहानुभूति आदि भाव भी आते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जीवन की वृत्तियों में प्रेम और काम के वैशिष्ट्य को नकारा नहीं जा सकता।

नागरजी के उपन्यासों में प्रेम एवम् काम संबंधी स्पष्ट दृष्टि परिलक्षित होती है। वे काम एवं प्रेम संबंधी अवधारणाओं का विवेचन करने के लिए मानव मन का मंथन करते हैं। यह ठीक है कि नागरजी के विवेचन में वह सूक्ष्मता परिलक्षित नहीं होती जो जेनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय या यशपाल में है परन्तु इस संबंध में नागरजी की संतुलित दृष्टि के वैशिष्ट्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता। 'बूंद और समुद्र' में सज्जन का काम-संबंधी चिन्तन इस संबंध में उठने वाले सहज-स्वाभाविक प्रश्नों की ओर संकेत देता है—

— “एक ओर तो हमारी नैतिक बुद्धि को काम-संबंधी चर्चा से इतना सख्त परहेज है और दूसरी ओर इतना अधिक लगाव भी है। सच क्या है? स्त्री-पुरुष का शारीरिक संबंध सच है, मगर समाज के इस अति श्रेष्ठ संबंध को लेकर हर व्यक्ति की बुद्धि में एक जबरदस्त झकोला क्यों पड़ता है? एक ही जवान से हम इसे अच्छा और बुरा साथ-साथ कहते हैं। केवल भारत में ही नहीं सारी दुनिया में ये मजाक हर शाख्स की जहनियत के साथ सदियों से अब तक होता चला आ रहा है— आखिर इसके अर्थ क्या हैं— क्या यह समस्या आर्थिक, राजनैतिक समस्याओं से कम महत्त्वपूर्ण है? स्त्री-पुरुष के काम-संबंधों की समस्या क्या अनेक राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं की पृष्ठभूमि बनकर सामने नहीं आती?”<sup>११</sup>

इस उपन्यास में नागरजी ने प्रेम एवं काम संबंधी ऐसे ही प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया है। प्रेम की परिणति विवाह में हो या न हो? विवाह-पूर्व प्रेम संबंध तथा यौन-संबंध उचित हैं या अनुचित? विवाहेतर प्रेम संबंध का क्या औचित्य है? सदैव उठने वाले इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नागर जी ने तीन त्रिकोण प्रस्तुत किए हैं। प्रथम, सज्जन-चित्रा-वनकन्या; द्वितीय, महिपाल-कल्याणी-शीला तथा तृतीय, बड़ी-मनिया-विरहेश। इन चरित्रों का विश्लेषण करने से प्रेम और काम के विषय में ऊपर उठाए गए प्रश्नों का उत्तर सहज रूप से मिल जाता है। महिपाल के इस कथन में कितनी स्वाभाविकता है— “मैं अनुभव से मानता हूँ कि स्त्री-पुरुष का ये सेक्सिया नाता स्त्री-पुरुष के सम्पूर्ण जीवन का एक अंग मात्र है। दरअसल होता यह है कि हममें से हरेक अपने लिए एक ऐसा अपोजिट सेक्सवाला साथी खोजता है जिससे उसके बहुत-से विचारों, कामनाओं और आदतों की पटरी बैठ जाय। दुख-दर्द, हारी-बीमारी की मैटीरियल रिस्पॉसिबिलिटीज से लेकर सुन्दर, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक वह अपने जीवन साथी के सहारे उठ सके।”<sup>१२</sup>

वनकन्या विवाह के पूर्व देह-भोग का घोर विरोध करती है। उसकी दृष्टि में प्रेम में यद्यपि शरीर और मन एक दूसरे के पूरक होते हैं तथापि स्त्री का शरीर सौंपना, केवल शरीर सौंपना ही नहीं है अपना भविष्य सौंप देना है। स्त्री-पुरुष के संबंध की चरम-परिणति पति-पत्नी का संबंध है। वनकन्या सज्जन से प्रेम करती है परन्तु विवाह-पूर्व



यौन संबंध स्थापित नहीं करती। दोनों के प्रेम की परिणति विवाह में होती है। सज्जन की दृष्टि में प्रेम दिल का नाता है। वह कहता है — “दिल का नाता बड़ी चीज है। वह प्रेम और इन्सानियत का बंधन है जिसमें बंधकर आदमी कभी आजाद नहीं होना चाहता, बल्कि यही चाहता है कि वह बंधन उसे चारों तरफ हर पल-छिन और कसता जाये।”<sup>४१</sup>

नागरजी के उपन्यास ‘नाच्यौ बहुत गोपाल’ की निर्गुनियाँ का जीवन एक काम-पीड़िता नारी का जीवन है। आरंभ में कई पुरुषों की अंकशाधिनी बनने वाली निर्गुण का विवाह जब वृद्ध मसुरियादीन से कर दिया जाता है तब वह अपनी दैहिक और मानसिक काम-क्षुधा की अतृप्ति के कारण एक मेहतर युवक मोहना के साथ भागने को विवश होती है। इस संदर्भ में निर्गुण का ब्राह्मण संस्कारों को त्यागकर मेहतर मोहना के साथ भागना पहली नजर में अस्वाभाविक लग सकता है परन्तु जब इस घटना को काम की अतृप्ति के साथ जोड़कर देखा जाता है तब निर्गुण की विवशता समझ में आती है। लेखक ने एक काम-दग्धा युवती की समस्या को अपनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा है तथा मोहन और निर्गुण के सम्बन्धों को कुंठाहीन एवं साहसपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। काम की शारीरिक आवश्यकता की परितृप्ति न होने पर निर्गुण स्पष्ट रूप से कहती है— “हिन्दू, मुसलमान, चमार, क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण—काया-सुख प्राप्त करने के लिए कोई भी मिले उससे क्या फर्क पड़ता है। निर्गुनियाँ की नारी काया को सशक्त पुरुष देह चाहिए ही। सुख-सम्मान से जीने की सुविधा चाहिए, जाति, वर्ग और वर्ण नहीं।”<sup>४२</sup> परन्तु देह-सुख के लिए मेहतर युवक के साथ भाग कर आनेवाली निर्गुण का प्रेम मोहन से अत्यंत प्रगाढ़ हो गया था। वह कहती है— “मेरा ये मरदुआ ही मेरी बेबसी में मुझे मिला था, लेकिन चाह नहीं थी, यह कैसे कहूँ। प्यार करना कोई आसान काम नहीं है बाबूजी। प्रेम में पूरी तपिश्या होती है। बाकी ये जरूरी है कि प्रेम के जोस में तपिश्या की परेशानियाँ कभी महसूस नहीं होती।”<sup>४३</sup>

नागरजी ने अपने प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास ‘अमृत और विष’ में भी काम और प्रेम संबंधी विचार व्यक्त किए हैं। मिसेज कुसुमलता खन्ना रमेश और रानी के प्रेम-संबंधों को बढ़ावा देती हैं। उनके विचार में लड़के-लड़कियों को झूठी शर्म का ढकोसला तोड़कर खुलेआम अपनी दोस्ती को बढ़ावा देना चाहिए। वे कहती हैं— “प्रेम के ऐसे रूप को मैं एकान्त की ही चीज मानती हूँ, बिल्कुल पूजा ऐसी ही चीज मानती हूँ और उनका दिखावा मुझे बेहद बुरा लगता है— उतना ही बुरा जितना कि नये हिन्दुस्तान के अपने इस पिछड़े क्षेत्रों के अंदर मुझे लड़के-लड़कियों की दोस्ती छिपाना या फौरन ही पाप-चेतना के साथ जोड़ देना बुरा लगता है।”<sup>४४</sup>

मिसेज माथुर के अनुसार— “औरत-मर्द का मिलना एक शारीरिक जरूरत है। भूख, प्यास की तरह सेक्सुअल अर्ज (कामेच्छा) भी एक कुद्व्रती और शारीरिक

जरूरत है और उसे पूरा ही करना चाहिए।”<sup>५६</sup> लच्छू प्रेम और विवाह के परस्पर संबंध का संकेत देते हुए कहता है— “प्रेम के माने हैं विवाह और विवाह के माने हैं कि अब चाहत और प्रेम का ऐसा धरातल इन्सान को मिल गया, जहाँ से जीवन की दूसरी समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए दिल-दिमाग की शक्तियाँ एक जुट होकर आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र होती हैं।”<sup>५७</sup> रूस में प्रेम एवं काम की चर्चा करते हुए लच्छू कहता है— “उनके यहाँ वो सेक्सिया हुडदंग नहीं मचती जो अपने यहाँ है। काम वहाँ केवल बड़ों के स्वर्गोपम भेदों की और छोटों के गुप्त अपराधों की जड़ नहीं है।”<sup>५८</sup>

पौराणिक उपन्यास ‘एकदा नैमिषारण्ये’ में भार्गव सोमाहुति इज्या से काम के बारे में कहते हैं— “काम की प्रवृत्ति में मिलन, सृजन और आनन्द यह तीनों गुण होते हैं। हमारे मन अपने दोनों छोरों पर एक ही तत्त्व को छूते हैं, भले ही उनका भाव-बोध अलग-अलग हो।”<sup>५९</sup> स्त्री-पुरुष के काम संबंधों की स्वतंत्रता नागरजी की दृष्टि में अनुचित है— “समाज को विश्रंखलित करने हेतु स्त्री पुरुषों को काम-संबंधों की खुली छूट दे देना ही सामाजिक चेतना को लोप करने की पहली सीढ़ी है।”<sup>६०</sup>

‘मानस का हंस’ और ‘खंजन नयन’ में क्रमशः काम और राम का तथा काम और श्याम का द्वन्द्व चित्रित है। मोहिनी और कन्तो की कल्पना के पीछे इसी द्वन्द्व का चित्रण उपन्यासकार का अभिप्रेत रहा है। काम के उदात्तीकरण की प्रक्रिया के रूप में दोनों उपन्यासों को देखा जा सकता है। ‘मानस का हंस’ में तुलसीदास मोहिनी से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं— “.....नहीं मैंने तुमसे प्रेम नहीं किया। मैं वस्तुतः तुम्हारे रूप और गायन कला पर आसक्त होकर तुमसे वह अनुभव पाने का अभिलाषी हूँ, जिसे पाकर ब्रह्मचारी गृहस्थ हो जाता है। और तुम भी निश्चय ही काम-क्षुधावश मुझ पर आसक्त हो। यह प्रेम नहीं है, तृष्णा है। प्रेम मैं राम से करता हूँ। तुम्हें पाकर कदाचित शीघ्र ही मेरे मन में यह असन्तोष भड़केगा कि नारी तृष्णा के कारण मैंने राम को खो दिया है।”<sup>६१</sup>

‘खंजन-नयन’ के सूरदास कामेच्छा को त्यागकर श्याम की भक्ति करना चाहते हैं— “.....तुम मेरे अंधे की लाठी बने रहो माधव। आज से तुम्हारे मार्ग में बाधक प्रतिष्ठा की कामना और कामेच्छा को सदा के लिए त्यागता हूँ।”<sup>६२</sup> वास्तव में काम जीवनदायिनी शक्ति है। काम का उदात्तीकृत रूप जीवन के लक्ष्यों की सिद्धि में सहायक होता है। कुंठित काम को अस्वीकृत करते हुए प्रेम के स्वस्थ रूप की प्रतिष्ठा ही नागर जी का मुख्य उद्देश्य रहा है।

परन्तु काम जब कुंठित होकर दैहिक सुख की लालसा पर केन्द्रित हो जाता है तब वह वासना के पंक से लिपट कर घृणित हो जाता है। ‘शतरंज के मोहरे’ की दुलारी तथा ‘सात घँघट वाला मुखड़ा’ को जुआना ऐसी ही काम-विह्वला घृणित नारियाँ हैं।



इस प्रकार नागरजी ने काम विषयक चिंतन में उसकी शक्ति को स्वीकार किया है। वे प्रेम और काम के उदात्तीकृत रूप के पक्षपाती हैं। कुंठित और दूषित काम की उन्होंने विशेष निन्दा की है।

### समाज में नारी की दयनीय स्थिति, नवीन नारी की परिकल्पना :

नागरजी ने अपने उपन्यासों में नारी की दयनीय दशा पर चिन्ता जताई है, भारतीय नारी की पीड़ा तथा वेदना को अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रदान की है। उन्होंने नारी को विभिन्न स्थितियों में रखकर उसकी व्यथा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

'महाकाल' उपन्यास में अकाल की विभीषिका नारी की स्थिति को और शोचनीय बना देती है। नर पिशाच मोनाई नूरुद्दीन के साथ मिलकर औरतों का व्यापार करता है। सतियाँ वेश्या बनने को मजबूर होती हैं।

'बुँद और समुद्र' नागरजी का वृहद् सामाजिक उपन्यास है। इसमें नारी-पात्रों की विविधता मिलती है। कृति में ताई और नन्दो जैसी परित्यक्ता नारियाँ हैं, बड़ी, चित्रा और शीला जैसी वासना के पंक में लिपटी नारियाँ हैं, कल्याणी जैसी गृहस्थ महिला है तो बनकन्या जैसी प्रगतिशील और उदात्त चरित्रवाली नारी भी है। इसी उपन्यास में मास्टर जगदंबा सहाय का अपनी विधवा पुत्रवधू से अनैतिक संबंध भी चित्रित किया गया है। इसी के कारण वह गर्भवती होकर अंततः आत्महत्या करने को विवश होती है। इस उपन्यास के नारी-पात्रों की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं जो लेखक द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की गई हैं।

नारी की इस पीड़ा की पृष्ठभूमि में निश्चित रूप से पुरुष का स्वार्थ एवं अहं ही है। चित्रा राजदान के शब्दों में नारी-समाज की पीड़ा मुखर हुई है— "मैं सदा पत्नी बनना चाहती थी और मेरे दोस्तों और शुभ चिंतकों ने सदा मुझे वेश्या बनाया।"<sup>13</sup>

यही बात 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में और स्पष्ट रूप से उभारी गई है— "पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग नारी-जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है महाकवि! उसके आँसुओं में अग्नि-प्रलय भी समाई है और जल-प्रलय भी।"<sup>14</sup> उपन्यास की कथा वेश्या की पीड़ा को भी व्यक्त करती है। चेलम्मा कहती है— "वेश्या बनकर भी मैंने चाहा था कि कुलीनों जैसा आचरण करूँ। कोई पुरुष मेरी बाँह गह ले, और मैं उसे आजीवन अपना ही मानूँ, पतिव्रता की भाँति उसे अपना ही बनाकर रखूँ।"<sup>15</sup> गृहवधू के नूपुरों और नगरवधू के घुँघरुओं के द्वन्द्व का अत्यंत

मार्मिक चित्रण उपन्यास में किया गया है। उपन्यास में एक ओर पति द्वारा तिरस्कृत कुलवधू कन्नगी का चित्र है तो दूसरी ओर समाज द्वारा प्रताड़ित नगर वधु माधवी का। वेश्या होने पर भी माधवी अपने एकनिष्ठ प्रेम के बल पर पत्नी के पद पर प्रतिष्ठित होना चाहती है। परन्तु पुरुष-प्रधान समाज ऐसा होने नहीं देता। उधर कुलवधू कन्नगी को पत्नी का स्थान तो प्राप्त है परन्तु वह पति के लिए दासी ही है— “पत्नी के रूप में पुरुष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है, समझों। साधारण स्त्रियाँ साधारण मोल पर हाट में बिकती हैं; ऊँचे कुलों की स्त्रियों को दासी बनाने के लिए सोने-रूपे की धैलियों का मुँह खुल जाता है, अन्तर केवल इतना ही है।”<sup>५५</sup> माधवी के इस कथन में नारी-जीवन की विडम्बनीय स्थिति पर प्रकाश पड़ता है— “स्त्री का जीवन भी क्या है! उसे सती होकर भी चैन नहीं और वेश्या होकर भी नहीं।”<sup>५६</sup>

‘शतरंज के मोहरे’ की कुदसिया बेगम और भुलनी का मार्मिक देहांत पाठकों के मन में सहानुभूति उत्पन्न कर देता है। कुदसिया बेगम अपने गर्भ में पलने वाली नसीरुद्दीन की औलाद के बारे में लोगों का दूषित आरोप सुनकर आत्महत्या करने को विवश होती है तो तेरह वर्षीया भुलनी बलात्कार किए जाने के कारण मृत्यु का आह्वान करती है। ‘सात घूँघट वाला मुखड़ा’ की “जुआना बेगम तो शर्तिया झूठी और मक्कार है..... यह दरअसल जहरीली नागिन है — हसीन मौत, शौहर के बजाय हुकूमत को प्यार करने वाली खूबसूरत बला।”<sup>५७</sup>

‘अमृत और विष’ में कई नारी पात्र हैं। ये सभी पात्र नारी की विविध मनःस्थिति का विवेचन करते हैं। इसी प्रकार ‘करवट’ उपन्यास में भी नारी पात्रों की बड़ी संख्या है। लेखक के अन्य उपन्यासों के नारी पात्र भी अपने स्तर के अनुसार अपने आचरण-व्यवहार द्वारा नारी मन की व्यथा कथा सहज ही कह देते हैं।

आधुनिक समाज में दहेज की क्रुप्रथा भारतीय नारी के लिए अभिशाप ही हो गई है। आए दिन दहेज की अग्नि में अनेक विवाहिताएँ अपने को जला रही हैं। दहेज के कारण कुंवारी कन्याएँ भी आत्महत्या करने को विवश हो रही हैं। नागरजी ने अपने ‘अग्निगर्भा’ उपन्यास में नारी की उस दयनीय दशा का चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका सीता कहती है— “आज कहते हैं कि स्त्री-पुरुष दोनों ही के समानाधिकार हैं। झूठ-झूठ, बिलकुल झूठ। स्त्री भले ही पुरुष की बराबरी में अंतरिक्ष तक उठ गई हो, तीन-तीन लोकतांत्रिक देशों में प्रधानमंत्री बन चुकी हो पर आधुनिक नारी आज भी पाषाण युग की भाँति तरह-तरह से त्रस्त है।”<sup>५८</sup> नारी-शोषण हेतु दहेज का घिनौना रूप उपन्यास में उपस्थित किया गया है। संस्कृति और सभ्यता का उच्चतर मूल्यों का दम भरने वाले भारत में नारियों के ऊपर हो रहे अत्याचार पर सीता की व्यंग्योक्ति मार्मिक है— “द्रौपदी ने भी कुछ कम नहीं सहा। आप भी सह रही हैं। यह है उस महान देश की



कथा जिसकी सभ्यता और संस्कृति की महानता के ढोल पीटते हम नहीं थकते।”<sup>१</sup>

नागरजी ने अपनी कृतियों में नारी की दयनीय दशा, बेमेल-विवाह आदि का विरोध तो किया ही है स्वस्थ सामाजिक परिवेश वाली नारी की कल्पना भी की है। वनकन्या, रानी, कुसुमलता खन्ना तथा अग्निगर्भा की सीता की विशेष परिकल्पना वास्तव में समाज को सचेतन करने में सहायक है। वनकन्या आधुनिक विचारधाराओं की युवती है जो साम्यवादी चेतना संपन्न है। अपने पिता तक के अनैतिक आचरण का दृढ़ विरोध करने वाली वनकन्या नारियों के लिए आदर्श बन सकती है।

इसी प्रकार 'अमृत और विष' की रानी और मिसेज खन्ना की सृजनात्मक गतिविधियाँ प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुण की परवर्ती काल की सृजनात्मक गतिविधियाँ— आर्य समाज जाना, स्कूल चलाना, खेती-बागवानी करना भी आकर्षक हैं। 'अग्निगर्भा' की सीता के बहाने नागरजी नारीवर्ग के संगठित होकर विषमताओं से जूझने का संकेत देते हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी पर हो रहे अत्याचारों का ऐसे ही अंत किया जा सकता है। अपनी पीड़ित छात्राओं तथा प्रताड़ित महिलाओं के प्रति सीता का संघर्ष उस दृढ़ इच्छा-शक्ति का परिचायक है जिसके माध्यम से नारी, पुरुष समाज की क्रूर गतिविधियों के खिलाफ खड़ी हो सकती है। यह ठीक है कि इस संघर्ष में हिम्मतराय की गोली का शिकार बनकर उसका कारुणिक अंत हो जाता है परन्तु वह अपना 'अग्निगर्भा' रूप तो प्रकट कर ही देती है। नागरजी ने ऐसी ही नवीन नारी की परिकल्पना की है।

## चिन्तन का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

जीवन में अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक नीतियों एवं सिद्धांतों पर ही समाज का विकास अवलंबित होता है। समाज में होने वाले संघर्षों के केन्द्र में प्रायः अर्थगत वैषम्य ही होता है। आज का युग अर्थ-प्रधान युग है जिसमें मानव के अस्तित्व का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से आँका जाता है। समाज का आर्थिक दृष्टि से विभाजन करने पर मोटे तौर पर दो वर्ग सामने आते हैं— एक धनवान दूसरा निर्धन। कार्ल मार्क्स ने इसे शोषक और शोषित वर्गों में बाँटा है। परन्तु औद्योगिक विकास के कारण एक नए वर्ग का उदय हुआ है — मध्य वर्ग। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के कारण वर्तमान समय में इन तीनों वर्गों के बीच खाई और गहरी होती जा रही है। साहित्यकार चूँकि सामाजिक प्राणी होता है इसलिए समाज के इस वैषम्य को वह अपनी दृष्टि से देखता है और अपनी कृतियों में उसका विवेचन करता है। नागरजी के उपन्यासों में आर्थिक विषमता के प्रति लेखकीय आक्रोश व्यक्त किया गया है।

## आर्थिक असंतुलन पर प्रहार, सामंतवादी एवं पूँजीवादी

### आर्थिक व्यवस्था का विरोध :

नागरजी प्रगतिशील लेखक संघ से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं। यही कारण है कि उनके आर्थिक चिंतन में कार्ल मार्क्स का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। नागरजी मध्यवर्गीय समाज के कुशल चित्ते माने जाते हैं। मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता को उन्होंने न केवल जाना-समझा है अपितु भोगा भी है। आर्थिक-अभाव के कारण नागरजी को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ी हैं। इन्हीं कारणों से उनकी कृतियों में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का मुखर विरोध प्राप्त होता है।

‘भूख’ उपन्यास में अकाल की दिल दहला देने वाली घटनाओं के बीच लेखक ने पूँजीवादी, साम्राज्यवादी और सामंती मूल्यों का समर्थन करने वाले शोषक-वर्ग की अमानवीयता का उल्लेख किया है। दयाल जमींदार एवं मोनाई बनिया की हृदयहीनता तथा अमानुषिकता पर लेखक ने कटु प्रहार किये हैं। कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं—

एक दयाल, एक मोनाई, गाँव-भर का अनाज खा जाता है, गाँव भर के कपड़े पहन लेता है। हमारी खुराक, हमारे तन ढकने के कपड़े, उनकी तिजोरियों में नोटों के बंडल, सोने-चाँदी और हीरे-जवाहिरात के तोड़ों की शकल में हिफाजत से रखे हैं। उनकी हिफाजत के लिए भोजपुरिये लठैत हैं, बन्दूकें हैं, पुलिस है, कानून है— और हमारी हिफाजत..... ?”<sup>१६०</sup>

“दयाल जमींदार को शराब की एक बूँद तड़पा रही थी और दयाल की प्रजा को चावल की एक कनी।”<sup>१६१</sup>

“थोड़े से लोग, जो कि अमीर कहलाते हैं बच जायेंगे। मगर वे भी कब तक बचे रहेंगे? जब अन्न पैदा करनेवाला ही न बचेगा तो खानेवाला क्या खाकर जीवित रहेगा? रुपया, सोना, चाँदी और जवाहरात को क्या दाँतों से चबाया जा सकेगा। मोटरों और ऊँचे-ऊँचे महलों से क्या पेट का कभी न भरनेवाला गड्ढा भर पाएगा?”<sup>१६२</sup>

लेखक के ये विचार पूँजीपति एवं शोषक वर्ग के स्वार्थ की निन्दा करते हैं। वह वर्गहीन समाज का समर्थक है। वह पूँजीपतियों को कड़ी चुनौती देते हुए स्पष्ट रूप से कहता है कि उनका शोषण अधिक दिनों तक नहीं चल सकता।

पूँजीपतियों एवं शोषकों का विरोध करने वाले नागरजी के विचार प्रायः हर उपन्यास में मिलते हैं। बूँद और समुद्र, अमृत और विष, बिखरे तिनके जैसे सामाजिक उपन्यासों में शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पात्रों की कल्पना करते हुए शोषित वर्ग पर हो रहे अत्याचारों का चित्रण किया गया है। सेठ रूपरतन, लाला जानकीशरण, द्वारका दास (बूँद और समुद्र) ; लाला रूपचन्द, रेवतोरमन, बैजूलाला, हाजी नबी बख्श (अमृत और विष) तथा सेठ चुन्नी लाल और स्वतंत्र कुमार (बिखरे तिनके) ऐसे ही पात्र हैं।



समाजवाद के प्रति आस्था,

उसके मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा का आग्रह :

आर्थिक चिंतकों ने समाज को पूँजीवादी और समाजवादी दो दायरों में बद्ध किया है। पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति रोष एवं अनास्था के कारण उसके समानांतर समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की गई है। पूँजीवादी व्यवस्था में निजी संपत्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, वह व्यवस्था पूँजी के केन्द्रीकरण की पक्षधर होती है, इसके विपरीत समाजवाद एक प्रगतिशील आंदोलन है और इसका लक्ष्य पूँजी का विकेन्द्रीकरण होता है। यह पद्धति सम्पत्ति के पुनर्वितरण में विश्वास रखती है।

समाजवादी विचारक वर्ग संघर्ष द्वारा पूँजीवाद का समापन करने पर बल देते हैं। वे क्रांति द्वारा समाज को परिवर्तित करना चाहते हैं। इस क्रांति के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की विजय के वे विश्वासी हैं। ये चिंतक मानवता के समग्र विकास के लिए आर्थिक समानता की आवश्यकता पर जोर देते हैं। मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा यही है। वास्तव में समाजवाद का विकसित रूप ही साम्यवाद है।

नागरजी के उपन्यासों में पूँजीवाद का विरोध करते हुए समाजवाद की प्रतिष्ठा का आग्रह परिलक्षित होता है।

‘अमृत और विष’ का उपनायक लच्छू रूस की समाजवादी व्यवस्था का प्रबल पक्षधर है, भारत की समाजवादी व्यवस्था पर अपने विचार व्यक्त करते हुए वह कहता है— “हमारी तो अभी वो सामाजिक व्यवस्था नहीं जिसमें रोजी, रोग, घर शिक्षा, बच्चों की हिफाजत आदि हर तरह की सामाजिक सुरक्षा हर व्यक्ति को सुलभ हैं।”<sup>63</sup>

नागरजी समाजवाद के मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा का आग्रह करते हैं— “गांधी की एक बात पढ़ी थी— कि मैं समाज को जोर-जबर्दस्ती से नहीं बदलना चाहता, उसके आत्मविकास में सहायता देना चाहता हूँ। फिर जो अहिंसक समाजवादी व्यक्तित्व, व्यक्ति और समाज के अंतर से प्रस्फुटित होगा, उसी से सच्ची सभ्यता होगी। ..... जो हो फिलहाल जनता पिस रही है। यह नेहरू मार्का समाजवाद धोखा है।”<sup>64</sup>

महाकाल का पाँचू गोपाल शोषणहीन समाज का स्वप्न सँजोए हुए है— “हमारा बलिदान, हमारी कर्मण्यता और हमारी क्रांति इस बच्चे की दुनिया को इन्सान के रहने योग्य बनाएगी, जिसमें अमीर-गरीब न होंगे, रंगभेद न होगा, धर्मभेद न होगा, जातीयता और राष्ट्रीयता न होगी — एक दुनिया होगी, एक मानव-समाज होगा।”<sup>65</sup>

इस प्रकार अपने चिंतन में अरविंद शंकर, महिपाल तथा ‘करवट’ का वंशीधर भी समाजवादी समाज व्यवस्था की आकांक्षा व्यक्त करते हैं। ‘बिखरे तिनके’ में हरसुख समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए सामाजिक संरचना को बदलना आवश्यक समझता है— “ये लोग पूँजीपति समाजवादी हैं, पूँजी पहले, समाज बाद में, हमें यदि कुछ करना ही है तो इनका पोषण करनेवाली व्यवस्था को बदलना होगा।”<sup>66</sup>

इस प्रकार अमृतलाल नागर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता पर बल देते हैं और भारतीय परिवेश में उसके मानवीय स्वरूप की प्रतिष्ठा के प्रति आग्रही हैं।

### गरीबी और बेकारी के विरुद्ध युद्ध का आह्वान :

पूँजीवादी, सामंतशाही तथा राजनैतिक शक्तियों की दुरभि संधि ने देश की आर्थिक दशा को जर्जर कर दिया है। मुनाफाखोरों, चोर बजारियों तथा पूँजीपतियों का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। गरीब, अधिक गरीब होता जा रहा है और युवा वर्ग बेकारी की अवस्था में दिग्भ्रमित होने की स्थिति तक पहुँच गया है। स्वाधीन भारत की ऐसी दशा से लेखक बहुत चिंतित है। उसने अपने उपन्यासों में युवा-शक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उनकी समस्या तथा पीड़ा को व्यक्त किया है। 'अमृत और विष' तथा 'बिखरे तिनके' उपन्यास मुख्य रूप से भविष्य के प्रति चिंतित इन्हीं युवकों की कथा कहते हैं। बढ़ती उम्र के साथ रोटी-रोजी की चिंता युवकों को व्यग्र किए हुए है। 'बिखरे तिनके' का सत्तार क्रुद्ध होकर कहता है— "तुम्हारा समाजवाद जब तक पूँजीपतियों की कठपुतली बनकर नाचता रहेगा तब तक हमें अपनी रोटी-सालन का जुगाड़ करने के लिए ऐसे ही सिसक-सिसक कर जीना होगा स्सालों। हिपक्रेटो।"<sup>६०</sup> इसी उपन्यास में चौहान की निराशा भी भारतीय युवक की निराशा है— "देश सेवा अब कुछ रईसों की वैचारिक हॉबी बनती जा रही है, गरीबों का मिशनरी उत्साह चौपट होता जा रहा है। आदर्शों के शहीद भी बने तो किसलिए, अपने ही समाजवादी साथियों की धनशक्ति से मार खाने के लिए।"<sup>६१</sup> सत्तार का कथन भी ध्यातव्य है— "धनी अपने बेटों को समाजवादी नेता बनाने को भी एक बिजनेस इन्वेस्टमेन्ट समझते हैं। यानी उनका बेटा नेता और मिनिस्टर बने और हम गरीब लोग साले उल्लू के पट्टे ही बने रहें। जैसे थे वैसे ही रहें।"<sup>६२</sup> आज का युवा अपने दायित्वों को भली भौति जानता है किन्तु विडंबना यह है कि युवकों को उचित रोजगार नहीं मिल रहा। वे बेकारी झेल रहे हैं— "जीविका मुझे पुकार रही है। जब रास्ता खुला है तो बंद नहीं करूँगा। जनता अभी विद्रोह के पकाव पर नहीं आई।"<sup>६३</sup> इस कथन का अभिप्राय स्पष्ट है। लेखक सामाजिक परिवर्तन हेतु संघर्ष की आवश्यकता पर बल देता है।

"अमृत और विष" का मूल मंत्र है— "युद्ध हर मोर्चे पर युद्ध, किन्तु इसके लिए विवेक, बुद्धि और शक्ति की आवश्यकता है।" डॉ. आत्माराम लच्छू से इसी विद्रोह का आह्वान करते हैं— "लड़ो, विद्रोह करो। ब्यूरोक्रेसी की मशीन से और समाज की अंधरूढ़ियों से लड़ना मदों का, सूरमाओं का काम होता है, समझे।"<sup>६४</sup>

समग्रतः कहा जा सकता है कि नागरजी के उपन्यासों में मार्क्स के चिंतन का



स्पष्ट प्रभाव है। वे सामंतवादी तथा पूँजीवादी मूल्यों के प्रखर विरोधी हैं और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के समर्थक हैं। गरीबी, भूख और बेकारी के लिए वे संघर्ष एवं युद्ध का भी संकेत देते हैं।

## चिंतन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

स्वाधीन भारत में राजनीतिक चेतना का सहज विकास परिलक्षित होता है। वास्तव में भारत-वासियों के राजनीतिक चिंतन को स्वाधीनता आंदोलन ने जो पीठिका प्रदान की थी उससे समाज का एक बड़ा तबका राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो गया था। साहित्यकार भी इससे अछूते नहीं रहे। स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक चेतना विविध-क्षेत्रों में विकसित हुई। सामाजिक व्यक्ति होने के कारण साहित्यकार भी राजनीतिक प्रभाव से प्रभावित हुए। नागरजी ने भी अपने उपन्यासों में राजनीतिक चेतना के विविध पक्षों का उद्घाटन किया है। स्वाधीनता के पश्चात् राजनीतिक मूल्यों के विकास एवं हास का अवलोकन नागरजी के उपन्यासों में किया जा सकता है।

**सांप्रदायिकता, राजनीतिक स्वार्थपरता तथा भ्रष्टाचार पर प्रहार,**

**प्रजातान्त्रिक मूल्यों में आस्था :**

धार्मिक संकीर्णता ही संघर्ष का कारण है, सांप्रदायिकता की भावना का मूल है। सांप्रदायिकता का विष स्वाधीनता-पूर्व से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत तक फैला है और इसने देश की एकता पर कठोर प्रहार किए हैं। धार्मिक असहिष्णुता के कारण एक वर्ग दूसरे वर्ग के विरुद्ध उग्र होता जा रहा है। जातीय वैमनस्य केवल हिन्दू और मुस्लिम संप्रदायों तक ही सीमित नहीं है— हिन्दू और सिख भी आपस में लड़ने-मरने को उतारू हैं। दुर्भाग्यवश इस भावना को राजनीतिक नेता बढ़ावा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। सांप्रदायिकता को राजनीति से जोड़कर राजनीतिक नेता अपनी चुनावी फसल काट रहे हैं।

नागरजी ने सजग लेखक की भाँति सांप्रदायिकता की विकरालता को पहचाना है और अपनी कृतियों द्वारा राजनीतिक दलों की स्वार्थपरता पर कठोर प्रहार किया है। बूँद और समुद्र, अमृत और विष, बिखरे तिनके, अग्निगर्भा तथा करवट उपन्यासों में सांप्रदायिकता की घिनौनी स्थिति वर्णित हुई है। 'बूँद और समुद्र' के सज्जन का निम्नलिखित चिन्तन वास्तव में सांप्रदायिक भावना पर प्रहार है— "आज इस देश में क्या कांग्रेस, क्या सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसंघ, हिन्दू महासभा आदि जितनी भी राजनीतिक पार्टियाँ हैं— सब अधिकांश में एक-एक से बढ़कर बेईमान, क्षुद्र

आकांक्षाओं वाले जालसाज, दंभी और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं; आदर्श और सिद्धान्त तो महज शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ हैं।”<sup>92</sup>

‘अमृत और विष’ में सांप्रदायिकता के खिलाफ लेखक स्पष्ट रूप से कहता है— “ये सब सांप्रदायिक संकीर्णता, मूर्खता, क्रूरता आदि हर तरह की प्रतिगामी और अमानवीय स्थिति में पहुँच जाते हैं। जबलपुर के हिन्दू-मुसलमान दंगे ने मुझे आंतरिक पीड़ा पहुँचाई है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बँट गया, लेकिन हिन्दू-मुसलमान समस्या अब भी जहाँ की तहाँ-सी ही लगती है।”<sup>93</sup>

हिदायत का सारगर्भित निम्नलिखित कथन इस बात को प्रमाणित करता है कि यह सांप्रदायिक दंगा शहरों को देन है— ‘अमा’ ये हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा तो हमने सिर्फ यहाँ शहर ही में आके देखा, हमारे गाँवों में तो यह तमाशा अभी तक दिखलाई ही नहीं देता। जब एक गाँव वाले दूसरे गाँव वालों पर हमला करते हैं तो हिन्दू-मुसलमान सब साथ होते हैं। उसमें ये कभी नहीं होता कि मुसलमान सिर्फ हिन्दुओं को ही मारें और मुसलमानों को छोड़ दें। दो गाँवों की लड़ाई होती है, हिन्दू-मुसलमान की नहीं।”<sup>94</sup>

‘अग्निगर्भा’ में सांप्रदायिक दंगे का चित्रण है। इस उपन्यास में लेखक ने दंगों के प्रति चिंता जगाई है— “क्या-क्या दुर्भाग्य भोगने पड़े हैं इस देश को। हिन्दू-मुसलमान होने से दो जातियाँ अलग हो गईं। सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ के पुरखे ऋग्वेद की ऋचाएँ गाते थे लेकिन अब वह पराये हो गए हैं। वैदिक नहीं म्लेच्छ हो गए हैं। वाह, कैसा मजाक है?”<sup>95</sup>

इस प्रकार नागरजी ने सांप्रदायिकता के संकीर्ण चिंतन का खुलकर विरोध किया है। धार्मिक कट्टरता को भुलाकर उदार दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत पर वे बल देते हैं।

उपन्यासकार ने राजनीतिक स्वार्थपरता का विरोध करते हुए जनतांत्रिक मूल्यों में अपनी गहन आस्था व्यक्त की है। नागरजी ने राजनीतिक दृष्टिकोण से समस्याओं को देखने की परंपरा का विरोध किया है। ‘बूँद और समुद्र’ की वनकन्या कहती है— “हमारी नजर अब सिर्फ पोलिटिकल रह गई हैं—सिर्फ पोलिटिकल।”<sup>96</sup> वनकन्या ने अन्यत्र कहा है— “आज एकाएक मुझे ऐसा लगा कि जैसे फुटबॉल का मैच होता है न, राजनीतिक पार्टियों का संघर्ष भी हूबहू वैसा ही है। जनता फुटबॉल है; मैच उसी के नाम पर हो रहा है, पोलिटिकल पार्टियों के खिलाड़ी टोकरें भी उसी को लगा रहे हैं। ये इलेक्शन हमारी जनतांत्रिक समाज-व्यवस्था का यही रूप दरसा रहे हैं।”<sup>97</sup> महिपाल के माध्यम से नागरजी ने राजनीतिक दलों के खोखले चरित्र को उजागर किया है— “विचारों से वह अपने को प्रगतिशील मानता है। कम्यूनिज्म को गांधीवादी अहिंसा का जनेऊ पहनाकर उसे भारतीय बनाने की चिंता में उसकी बुद्धि लगन के साथ लगी रहती



है। वह हिंसा, दौंवपेंच और तिकड़मों से ऊपर उठकर दुनिया में समानता और न्याय का राज्य चाहता है। कम्युनिस्टों को धूर्त, सोशलिस्टों को हिजड़ा, कांग्रेसियों को साम्राज्यवादी वेश्या का भडुआ और शैतान तथा संघ आदि सांप्रदायिक संस्थाओं के हिमायतियों को पाकिटमार पालिटीशियन कहकर इन सबसे नफरत करता है।<sup>१०</sup> राजनीति के इन दोषों को संकेतित करने के बावजूद नागरजी "राजनीति को समाज की गाड़ी का स्टीयरिंग व्हील" मानते हैं।<sup>११</sup>

नागरजी राजनीति को सांस्कृतिक दृष्टि से युक्त कर उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। उनकी नजर में आज का चुनाव अर्थहीन है और प्रजातंत्र के नाम पर एक मजाक है। 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'बिखरे तिनके' उपन्यासों में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना पर जोर देते हुए नागरजी ने राजनीति के भ्रष्टाचारी एवं विकृत स्वरूप की निन्दा की है। 'बिखरे तिनके' के बिल्लू की यही चिंता है— "राजनीति का सत्य चुनाव के वोटों तक सीमित हो गया है— चोर से भी हाँ और शाह से भी हाँ। तुम अपना स्वार्थ पूरा करो और मैं अपना। क्या यही है स्वस्थ समाज के निर्माण का स्वरूप। आखिर कहाँ जाएगा यह भारतीय समाज? क्या हालत होगी हमारी?"<sup>१२</sup> अन्यत्र वह कहता है— "पहले सिद्धांत और उद्देश्य स्वार्थ थे अब सत्ता और अर्थ स्वार्थ है। पहले इमरजेंसी का समय देखा, फिर चार घोड़ों वाली जनताई बग़्घो की सवारी देखी, अब यह समाजवादी लोकतंत्र भी देख रहा हूँ। समय की हवा का हर झोंका जहर भरा है। जीने के लिए कहीं से भी आस्था नहीं मिलती।"<sup>१३</sup>

"मुझे आज देश के किसी राजनीतिक दल पर विश्वास नहीं। सब की राजनीति आज जनता का दुःख धुनाने पर आमादा है, उन्हें दूर करने के लिए कोई भी प्रयत्नशील नहीं। दुग्धालय के साईन बोर्ड सामने टाँगकर सभी ने अपने-अपने शराबखाने खोल रखे हैं।"<sup>१४</sup>

'अमृत और विष' का अरविंद शंकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति का आकलन इन शब्दों में करता है— "जहनुम में जाय ये बेपेंदी की सरकार और इसके कर्णधार। इन्होंने चालीस करोड़ आदमियों को कुत्तों का सा जीवन बिताने पर मजबूर कर रखा है। इन्होंने व्यक्ति का आत्माभिमान नष्ट कर दिया है।"<sup>१५</sup> 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में भी राजनीतिक मूल्यों के ह्रास का अंकन किया गया है। इमरजेंसी के प्रसंग की चर्चा भी इस उपन्यास में मिलती है।

इस प्रकार नागरजी ने अपने उपन्यासों में सांप्रदायिकता, राजनीतिक स्वार्थपरता तथा भ्रष्टाचार की कड़ी निन्दा की है तथा जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त की है।

## चिन्तन का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय चिन्ताधारा में राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन की अपेक्षा सांस्कृतिक चिन्तन का आरंभ से ही विशेष महत्त्व रहा है। यही कारण है कि भारतीय समाज में संस्कृति के पूरक तत्त्वों के रूप में राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ स्वीकृत-समादृत हैं। संस्कृतिविहीन राजनीति या संस्कृतिरहित सामाजिकता हमारे देश में उच्चस्तर पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती।

भारतीय संस्कृति का धर्म से घनिष्ठ संबंध रहा है। हमारे यहाँ संस्कृति के अंतर्गत धार्मिकता का बोलबाला सदा से रहा है। यही कारण है कि इसके अंतर्गत व्रत-उपवास, आडंबर, मूर्तिपूजा, भाग्यवाद, आस्तिकता, नास्तिकता सभी का समावेश हो गया है। चूँकि भारतीय समाज में धर्म की भूमिका निर्णायक रही है अतः सांस्कृतिक गतिविधियों को धर्म का निर्देशन सदैव प्राप्त करना पड़ा है।

परन्तु आधुनिक काल में धर्म के परंपरागत स्वरूप में व्यापक परिवर्तन आया है। आज धर्म मानव को कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देने वाले तत्त्व के रूप में स्वीकृत-समादृत है; मानव कल्याण हेतु अन्याय, अत्याचार तथा असत्य से जूझने की शक्ति प्रदान करने की क्षमता से युक्त है। अंधविश्वास, आडंबर, अनास्था तथा रूढ़ियों के विरुद्ध अनास्था का स्वर मुखरित करने में धर्म और संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अमृतलाल नागर के उपन्यासों का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन उनकी विचारधारा को इसी रूप में व्याख्यायित करता है। नागरजी ने धर्म एवं संस्कृति के परिणत एवं परिष्कृत स्वरूप को स्वीकार किया है।

### धर्म एवं संस्कृति का परिणत स्वरूप :

समाज के विकास में संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परन्तु संस्कृति अपने पारंपरिक रूप में आधुनिक समाज के लिए अनुपयोगी है। समय की गति के साथ इसके परिणत स्वरूप की स्वीकृति ही समाज के उन्नयन में सहयोगी हो सकती है। नागरजी ने संस्कृति के संबंध में कहा है— “कल्चर पेट्रोल की तरह जरूरी है, जिसके बिना गाड़ी ही नहीं चल सकती।”<sup>६५</sup> नागरजी को इस बात का अफसोस है कि आर्थिक महत्त्व के इस युग में पैसेवालों और अफसरों के आगे संस्कृति का महत्त्व कम हो गया है— “आज भी समाजी जहनियत में कल्चरल फोर्सेज की वह नकदर नहीं जो पैसे वाले और अफसरों की है।”<sup>६६</sup>

नागरजी ने अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति की महत्ता को स्वीकार किया है। उनके उपन्यासों में एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस तथा खंजन नयन सांस्कृतिक उपन्यास माने जाते हैं। अतीत की गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा के अनुगमन के वे



पक्षधर हैं परन्तु जड़ और विकृत मूल्यों को वे यथावत् स्वीकार करना नहीं चाहते। संस्कृति के सत् पक्ष की महत्ता का वर्णन वे अपने उपन्यासों - बूंद और समुद्र, अमृत और विष तथा करवट उपन्यासों में भी करते हैं। उन्होंने संस्कृति के अंतर्गत कला, संगीत, नृत्य और लोक जीवन के विविध रूपों को भी समेट लिया है। इस प्रकार संस्कृति को वे व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं।

### अंधविश्वास एवं पाखण्ड का विरोध :

हिन्दू धर्म की सर्जनात्मक क्षमता को नष्ट करने वाले मुख्य अंधविश्वास, पाखंड आदि रहे हैं। नागरजी ने इन विकृतियों को पहचाना है। वे धार्मिक, सामाजिक, नैतिक सभी प्रकार की रूढ़ियों के विरोधी रहे हैं, धार्मिक पाखण्डों पर उन्होंने कठोर प्रहार किये हैं तथा जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँचनीच के भेदभाव को घृणा की दृष्टि से देखा है। वे इन सभी दूषित प्रवृत्तियों का समापन चाहते हैं। उनके उपन्यासों में 'बूंद और समुद्र' की ताई तथा नंदो अंधविश्वास तथा जादू-टोना करने वाली नारियों के रूप में चित्रित हैं। ये नारियाँ अपने इन कर्मों के घातक प्रभाव को प्रमाणित करती हैं। ये सारी क्रियायें अमानवीय हैं, इस बात को सिद्ध करने में नागरजी को सफलता मिली है। अंधविश्वास के प्रति नागरजी ने 'बूंद और समुद्र' में रोष व्यक्त किया है— "हमारा देश विचारों और रीति-रिवाजों का एक महान अजायबघर है। सैकड़ों सदियों के रहन-सहन, रीति-बरताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होती है, हमारा समाज अंधनिष्ठा के साथ अपनाए हुए है। हर युग में जो सुधार आये, जितने ऐतिहासिक प्रभाव पड़े उनमें से अधिकतर आज भी हमारे सिर पर बने रक्खे हैं। हमारे घरों, गलियों में रमे हुए साधु, वैरागी, फकीर हैं, चंडी पाठ करने वाले पंडित, व्याह, मुंडन, जनेऊ से लेकर मृतक संस्कार तक कराने वाले पंडित, कथा बाँचनेवाले पंडित, शास्त्रार्थ करनेवाले पंडित भूत झाड़ने वाले ओझा-सयाने, सनीघर का दान लेने वाले भट्टरी, टोना-टोटका, दहेज, ऊँच-नीच, तैंतीस करोड़ देवता— यह बेमतलब दिमाग खराब करने वाली दकियानूसी बातें भरी हुई हैं। इनमें अंधविश्वास जमा होने के कारण हमारे समाज में आत्मविश्वास ही नहीं रहा।"<sup>65</sup> इसी उपन्यास में महिपाल "शादी व्याह के मामले में कुल-ऊँच-नीच की मर्यादा, दहेज आदि गन्दगियों को जड़ मूल से फेंकने"<sup>66</sup> की बात कहता है। वनकन्या भी ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहती है— "हमारे बहुत से रस्म-रिवाज बिलकुल बेमानी, एक जबर्दस्ती की निष्ठा लिए हुए चले आते हैं। शादी हो, गमी हो, तीज-त्योहार हों, सब इस कदर कीमती बना दिये गये हैं कि उनको बरतने वाला आदमी हरगिज किसी किस्म की नैतिक सुंदरता को अपनाने के लायक रह ही नहीं जायेगा। हमारे यहाँ दहेज,

आपसी रिश्तों के लेन-देन— मैं आपसे कहाँ तक कहूँ—धर्म और समाज के नाम पर क्या-क्या अत्याचार हम में से हर एक को आए दिन सहने पड़ते हैं।”<sup>८८</sup>

नागरजी ने धर्म के ठेकेदारों के प्रति अपना रोष इन शब्दों में व्यक्त किया है—  
“मेरे हाथ में दो दिन के लिए शासन आ जाए तो ये जितने धर्म की बातें करने वाले हैं, सबको चौराहों पर जूतों से पिटवाऊँ। ये सारी मानवता का अकल्याण कर रहे हैं।”<sup>८९</sup>

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नागर जी अंधविश्वास एवं पाखंड की भत्सना करते हैं। वे धार्मिक विकृतियों के कट्टर विरोधी हैं तथा सेवा, प्रेम और त्याग पर बल देते हैं।

### ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का समन्वय, अध्यात्म पर विश्वास :

नागरजी ने ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय पर बल दिया है। उनका पौराणिक उपन्यास ‘एकदा नैमिषारण्ये’ इसी समन्वय की स्थापना करता है। इस उपन्यास में नारद कहते हैं— “भक्ति धर्म का उदय होने से हमारे देश के संस्कारों में एक अद्भुत क्रांति आई है। इससे हमारा राष्ट्र मानस व्यापक और उदात्त हुआ। आत्म तत्त्व प्राप्ति के लिए मात्र वेदाध्ययन, कर्मकाण्ड और दान दक्षिणा देने से ही कुछ सिद्ध नहीं होता। ब्रह्मज्ञान ही व्यक्ति के लोक परलोक का निर्माता है। ब्रह्मज्ञान यज्ञादि से कहीं ऊँचा है और यह ज्ञान भक्ति धर्म को स्विकृति प्रदान करके ही प्राप्त होता है। आस्था छोटे-छोटे देवताओं से निकलकर विराट और व्यापक बनती है।”<sup>९०</sup>

नागरजी के अनुसार ज्ञान, भक्ति और कर्म के समुचित समन्वय से ही लोक मंगल होता है। यही समन्वित दृष्टि लोक धर्म कहलाती है। “भजन से भक्ति जागती है, तप और भय से ज्ञान जागता है और भक्ति भी। अतः भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों का उचित समन्वय ही लोक धर्म है। हमें इसी सिद्धान्त को लेकर धर्ममार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए।”<sup>९१</sup> इसी कृति में नागरजी ने सोमाहुति व्यास से स्पष्ट शब्दों में कहलवाया है—  
“मेरा मत है कि ज्ञान, भक्ति और कर्म का उचित समन्वय ही लोक के लिए कल्याणकारी हो सकता है।”<sup>९२</sup>

नागरजी का अध्यात्म पर प्रबल विश्वास है। प्रगतिशील लेखक संघ से सक्रिय रूप से जुड़े रहने पर भी उन्होंने अध्यात्म का निषेध स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में अध्यात्म के प्रति उनकी इस अनुरक्ति का कारण बाबा रामजी का सात्त्विक है। नागरजी ने बाबा जी के परामर्श से ईश्वर को जन-जन में देखा है। उनका अध्यात्म मानवीय स्पर्श के कारण अलौकिक बन गया है। बाबा रामजी के शब्दों में— “आत्मा ही ब्रह्मा विष्णु और महेश है। ब्रह्मा के रूप में वह अनुभव की सृष्टि करता है, विष्णु के रूप में वह अपनी सृष्टि की श्री को ग्रहण करता है और शिव के रूप में निष्काम जोगी बन सर्जन और पालन के अहंकार का नाश करता है तथा सृष्टि और उसकी श्री को सदा



एक रूप बनाकर अपने में लय किये रहता है। सो हम तो आत्मा के सिव रूप में खिद्धा रखते हैं। रामजी, हमारा ये अटल विश्वास है कि इस मन मंथन से विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे हैं, मानवतावाद का व्यापक प्रचार हुई के चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा।”<sup>१३</sup>

### आस्था, जिजीविषा एवं मानवतावाद :

आस्था का आलोक एवं जिजीविषा की ज्योति नागर जी की समस्त कृतियों में व्याप्त है। जीवन की विषम परिस्थितियों एवं अनास्थापरक गतिविधियों के बीच भी वे आस्था का मार्ग खोज निकालते हैं। भूख, बूँद और समुद्र, अमृत और विष, नाच्यौ बहुत गोपाल तथा करवट उपन्यासों में आस्था और जिजीविषा का स्रोत देखा जा सकता है।

‘भूख’ उपन्यास में मृत्यु के भयानक आतंक के बीच पलायनवादी पाँचू नवजात शिशु को पाकर जिजीविषा की प्रेरणा प्राप्त करता है और इस प्रकार अनास्थावादी परिवेश को आस्था का स्पर्श मिल जाता है।

नागरजी की यह मान्यता रही है कि जीवन को विकसित करने के लिए आस्था और जिजीविषा की आवश्यकता है। अनास्था जीवन को विकासोन्मुख नहीं कर सकती। अनास्थावादी व्यक्ति अंधकार में विचरण करता रहता है और जीवन संग्राम में पराजित होता रहता है। आस्था के प्रहरी के रूप में नागरजी ने अपने सभी उपन्यासों में मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की है।

आस्था का स्वर नागरजी के उपन्यास ‘बूँद और समुद्र’ में इन शब्दों में व्यक्त हुआ है— “मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए।”<sup>१४</sup> इस उपन्यास की अंतिम पंक्ति में आस्था पर डटे रहने और व्यक्ति की सामाजिक चेतना जगाने की बात कही गई है।

उनके आस्थावादी विचार ‘अमृत और विष’ में भी मिलते हैं— “जड़-चेतनमय, विष-अमृतमय, अंधकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही होगा। यह बंधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अंधकार में ही प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।”<sup>१५</sup>

बाबा रामजी दास की मानव सेवा भावना ने उनकी कर्मठ आस्था को नया आयाम दिया है। ‘शतरंज के मोहरे’ के संन्यासी का संदेश अंधकार से प्रकाश की यात्रा का है— “रात के बाद दिन अवश्य आता है। मैं उसी उजाले की बाट में बैठा हूँ।”<sup>१६</sup>

इसी भाँति नागरजी ने अपने अंतिम उपन्यास ‘करवट’ का आस्थापरक समापन किया है। ‘अमृत और विष’ में लेखक को हेमिंग्वे के बूढ़े मछिरे तथा बचपन के साथी

बछड़े से प्रेरणा मिलती है। बाबा रामजी की सेवा भावना को नागरजी ने बड़े मन से ग्रहण किया है। अपने जीवन में वे बाबाजी से बहुत प्रभावित रहे हैं। सेवा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए बाबा जी कहते हैं कि सेवा से बढ़कर कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। बाबा जी की मानवता में आस्था है। वे सेवा, त्याग एवं सहिष्णुता जैसे मूल्यों के साथ-साथ प्रेम को मानवता के लिए आवश्यक मानते हैं। नागरजी ने गाँधीवादी मूल्यों में मानव-प्रेम, मानव सेवा, परोपकारिता, सहिष्णुता तथा कर्मठता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागरजी के स्वस्थ सामाजिक चिंतन, व्यापक जीवनानुभव तथा सजग सामाजिक विवेचन ने मानव-मन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, आस्था-अनास्था को वाणी देकर स्वस्थ परिवेश के साथ-साथ मानवतावाद की प्रतिष्ठा का सफल प्रयास किया है।

### निष्कर्ष :

श्री अमृतलाल नागर के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चिंतन के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे व्यक्ति और समाज के समन्वय के पक्षपाती हैं। उनके उपन्यासों में प्रेम एवं काम का उदात्तीकरण हुआ है। उनके आर्थिक चिन्तन पर कार्ल मार्क्स का स्पष्ट प्रभाव है। वे पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विरोधी हैं, उनकी आस्था समाजवाद के प्रति है। राजनीतिक दृष्टि से वे भ्रष्टाचार और सांप्रदायिकता के साथ-साथ राजनीतिक स्वार्थपरता के कटु आलोचक हैं। प्रजातांत्रिक मूल्यों में उनकी गहरी आस्था है। धर्म एवं संस्कृति के परिणत स्वरूप को उन्होंने स्वीकृति दी है। अंधविश्वास एवं पाखंड का विरोध करते हुए उन्होंने आस्था, जिजीविषा एवं मानवतावाद की प्रतिष्ठा की है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि नागर जी के चिन्तन का सार तत्त्व उनका आस्थावादी-स्वर है। उनकी जिजीविषा और कर्मठ आस्था उनकी मानवतावादी दृष्टि को पुष्ट करने में सहायक सिद्ध हुई है।

### संदर्भ :

१. शिव नारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास ऐतिहासिक अध्ययन, पृष्ठ ४५५;
२. माधुरी, अक्टूबर १९२२ प्रेमचंद के निबंध से; ३. वही अक्टूबर १९२२ प्रेमचंद के निबंध से; ४. अमृतलाल नागर, टुकड़े-टुकड़े दास्तान, पृष्ठ ३७; ५. वही, पृष्ठ ३९;
६. शांति स्वरूप गुप्त, हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर, पृष्ठ १; ७. नरेन्द्र कोहली : हिन्दी उपन्यास, सृजन और सिद्धांत, पृष्ठ २२१; ८. डॉ. हेमराज कौशिक, अमृतलाल नागर के उपन्यास : नए मूल्यों की तलाश, पृष्ठ २५६; ९. भूख, पृष्ठ १६४; १०. वही,



पृष्ठ १७२; ११. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५८०; १२. वही, पृष्ठ ५८३; १३. वही, पृष्ठ ३६९; १४. वही, पृष्ठ ४३४; १५. मानस का हंस, पृष्ठ ३७३; १६. करवट, पृष्ठ २६४; १७. बूँद और समुद्र, पृष्ठ २५४; १८. वही, पृष्ठ २०५; १९. वही, पृष्ठ ९३; २०. वही, पृष्ठ ९३; २१. वही, पृष्ठ २; २२. वही, पृष्ठ २; २३. वही, पृष्ठ ६३; २४. वही, पृष्ठ ६३; २५. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ६२; २६. वही, पृष्ठ २३३; २७. वही, पृष्ठ २३३; २८. वही, पृष्ठ ९४; २९. वही, पृष्ठ ४८०-४८१; ३०. वही, पृष्ठ २६८; ३१. वही, पृष्ठ ४८०; ३२. अमृत और विष, पृष्ठ ११४; ३३. वही, पृष्ठ ३९८; ३४. वही, पृष्ठ ४०६; ३५. वही, पृष्ठ ४२३-४२४; ३६. वही, पृष्ठ ६०९-६१०; ३७. बिखरे तिनके, पृष्ठ १०८; ३८. डॉ. हेमराज कौशिक, अमृतलाल नागर के उपन्यास, नए मूल्यों की तलाश, पृष्ठ ८८; ३९. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५१३; ४०. वही, पृष्ठ ९५; ४१. वही, पृष्ठ २०५; ४२. नाच्यो बहुत गोपाल, पृष्ठ १७६; ४३. वही, पृष्ठ ८६; ४४. अमृत और विष, पृष्ठ १२९; ४५. वही, पृष्ठ १९५; ४६. वही, पृष्ठ ४९३; ४७. वही, पृष्ठ ४९३; ४८. एकदा नैमिवारण्ये, पृष्ठ ४५७; ४९. वही, पृष्ठ १३; ५०. मानस का हंस, पृष्ठ १७५; ५१. खंजन नयन, पृष्ठ ७३; ५२. बूँद और समुद्र; ५३. सुहाग के नूपुर, पृष्ठ २६७; ५४. वही, पृष्ठ ४२; ५५. वही, पृष्ठ ८८; ५६. वही, पृष्ठ ४८-४९; ५७. सात घूँघट वाला मुखड़ा, पृष्ठ ४२; ५८. अग्निगर्भा, पृष्ठ २३; ५९. वही, पृष्ठ १३७; ६०. भूख, पृष्ठ ६६; ६१. वही, पृष्ठ ९०; ६२. वही, पृष्ठ २१३; ६३. अमृत और विष, पृष्ठ ४८९; ६४. वही, पृष्ठ ४३७-४३८; ६५. भूख, पृष्ठ २३७; ६६. बिखरे तिनके, पृष्ठ ७७; ६७. वही, पृष्ठ १०६; ६८. वही, पृष्ठ १०६; ६९. वही, पृष्ठ १०६; ७०. वही, पृष्ठ १०५; ७१. अमृत और विष, पृष्ठ ६३४; ७२. बूँद और समुद्र, पृष्ठ ५८२; ७३. अमृत और विष, पृष्ठ ४६३; ७४. वही, पृष्ठ ४६५; ७५. अग्निगर्भा, पृष्ठ ४७; ७६. बूँद और समुद्र, पृष्ठ १२८; ७७. वही, पृष्ठ १२८; ७८. वही, पृष्ठ १००; ७९. वही, पृष्ठ १४६; ८०. बिखरे तिनके, पृष्ठ ९०; ८१. वही, पृष्ठ ८८; ८२. वही, पृष्ठ ८८; ८३. अमृत और विष, पृष्ठ ३४; ८४. बूँद और समुद्र, पृष्ठ १४६; ८५. वही, पृष्ठ १८; ८६. वही, पृष्ठ ५८१-५८२; ८७. वही, पृष्ठ १११; ८८. वही, पृष्ठ १३३-१३४; ८९. वही, पृष्ठ १८९; ९०. एकदा नैमिवारण्ये, पृष्ठ २२५-२२६; ९१. वही, पृष्ठ २७९; ९२. वही, पृष्ठ २७८; ९३. बूँद और समुद्र, पृष्ठ २४५; ९४. वही, पृष्ठ ५८३; ९५. अमृत और विष, पृष्ठ ६४८; ९६. शतरंज के मोहरे, पृष्ठ ३११.

## समकालीन प्रमुख उपन्यासकारों के तुलनात्मक संदर्भ में नागरजी का वैशिष्ट्य

अमृतलाल नागर प्रेमचन्द-परंपरा के समर्थ और सशक्त कथाकार माने जाते हैं। यह ठीक है कि नागरजी ने अपनी कृतियों में भी प्रेमचन्द की ही तरह आदर्श और यथार्थ के समन्वय को स्थापित करने की चेष्टा की है परन्तु नागरजी को प्रेमचन्द की परम्परा के अन्तर्गत केवल सीमाबद्ध कर देना उनके साथ अन्याय होगा। वास्तव में नागरजी ने प्रेमचन्द की परम्परा को अपना रास्ता बनाया है, अपना उद्देश्य नहीं। प्रेमचन्द के मार्ग का अवलंबन ग्रहण करते हुए उनकी परंपरा का विकास करने की छटपटाहट उपन्यासकार में दिखाई पड़ती है। नागरजी ने प्रेमचन्द की स्थापित परंपरा से अपनी उपन्यास-यात्रा का प्रारम्भ किया है और उसे विकसित करने के लिए संवेदना, तकनीक और भाषा की दृष्टि से नवीन प्रयोग किए हैं। प्रेमचन्द की विचारधारा को नवीन आयाम देते हुए कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से नागरजी ने क्रांतिकारी परिवर्तन की चेष्टा की है। डॉ. राम विलास शर्मा के अनुसार— “नागार्जुन, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव आदि की कृतियाँ उस स्वस्थ मार्ग पर हिन्दी कथा साहित्य को बढ़ा रही हैं जिसका निर्माण प्रेमचन्द ने किया था। ये सभी लेखक समाज में फैली वीभत्सता को उधाड़कर पाठक को तिलमिला देते हैं, साथ ही अपने-अपने ढंग से वे मानव-जीवन में आस्था भी उत्पन्न करते हैं।”

नागरजी उन उपन्यासकारों में रहे हैं जिन्होंने स्वाधीनता-पूर्व की विविध गतिविधियों को देखा है। स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि की जानकारी के साथ-साथ समाज के सभी परिवर्तनों एवं बनते-बिगड़ते जीवन-मूल्यों के वे साक्षी रहे हैं। स्वाधीनता के पश्चात् ४२ वर्षों के भारत के सामाजिक, आर्थिक, वैचारिक, राजनैतिक आन्दोलनों से वे भली-भाँति अवगत रहे हैं। स्वाधीनता-पूर्व और पश्चात् के ये प्रसंग किसी न किसी रूप में उनके भिन्न-भिन्न उपन्यासों में देखे जा सकते हैं।

नागरजी के उपन्यासकार को प्रौढ़ एवं परिपक्व बनाने में उनके कहानीकार का विशेष हाथ है। १९३० से ही उन्होंने कहानी लेखन आरंभ कर दिया था। इसके लगभग



१४-१५ वर्षों बाद उन्होंने उपन्यास लिखा। उनका कहानीकार रूप व्यंग्य-विद्रूप के द्वारा समाज में विद्यमान विषमताओं एवं कुरूपताओं के साथ-साथ समाज की समस्याओं का संतुलित चित्रण करने में समर्थ है। नागरजी जीवन के यथार्थ का बारीकी से अध्ययन कर अपने कथा साहित्य में उसका अंकन करने में पूर्णतः सफल रहे हैं।

१९४६ में उनका प्रथम उपन्यास 'महाकाल' (भूख) प्रकाशित हुआ था। १९९० में प्रकाशित 'पीढ़ियाँ' उनका अन्तिम उपन्यास है। इन वर्षों में प्रकाशित १५ उपन्यासों में उनकी यथार्थपरक दृष्टि, समाज-सचेतनता, इतिहास-प्रेम और सांस्कृतिक चेतना का आभास मिलता है।

नागरजी के उपन्यासों के अधिकांश पात्र प्रेमचन्द के उपन्यासों की ही भाँति जन-जीवन के बीच के हैं। यद्यपि प्रेमचन्द ने शहरी जीवन का अपने उपन्यासों में चित्रण किया है परन्तु उनकी दृष्टि मुख्यतः ग्रामीण जीवन के पात्रों का चित्रण करने में ही रमी है। इसी प्रकार नागरजी की सामर्थ्य नगरजीवन तथा मध्यवर्गीय पात्रों के अंकन में ही परिलक्षित होती है। मध्यवर्गीय नगरजीवन से वे भली-भाँति परिचित रहे हैं। यही कारण है कि इस परिवेश का सामान्य पात्र भी उनकी रचना में अपनी सजीव उपस्थिति से पाठकों को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की तरह नागरजी ने यथार्थ जीवन का अंकन करने में अपनी दृष्टि जमाई है।

प्रेमचन्द यदि ग्रामीण जीवन के उपेक्षित पात्रों तथा शोषित-दलित वर्ग के पात्रों का चित्र अपनी संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं तो नागरजी ने नगर-जीवन के तिरस्कृत, दयनीय और उपेक्षित पात्रों की पीड़ा को अपनी सहानुभूति प्रदान की है। यही कारण है कि वे उनकी आशाओं-आकांक्षाओं के साथ उनकी समस्याओं, विषमताओं तथा पीड़ा का मार्मिक अंकन करने में सफल हुए हैं। सामाजिक उपन्यासों में नागरजी की यह यथार्थवादी दृष्टि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

जीवन के जिस यथार्थ को प्रेमचन्द या नागरजी ने अपने उपन्यासों में प्रतिष्ठित किया वह स्वयं इन लेखकों का भोगा हुआ यथार्थ था। विस्तृत परिप्रेक्ष्य में यही यथार्थ तत्कालीन समाज का वास्तविक यथार्थ था। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य को राजा-रानियों-राजकुमारों-जमींदारों-कुलीनों के एकछत्र नायकत्व से निकाला और होरी, घीसू, धनिया, सिलिया, सूरदास को जनगण का प्रतिनिधि समझकर उन्हें कथानायक बनाया। वास्तव में उनकी यही समझ उन्हें दीन-हीन, दलित और संघर्षशील नर-नारियों की सहानुभूति से जोड़ सकी और समाज के पीड़ित-वंचित वर्ग का यथार्थ अपने वास्तविक रूप में पाठकों तक पहुँच सका। प्रेमचन्द की इसी संवेदनशीलता ने उन्हें शीर्ष-स्थान पर प्रतिष्ठित किया है।

अपने यथार्थ-चित्रण में प्रेमचन्द ने कभी कथा-शिल्प के चमत्कार की चाह नहीं की—सरल, सहज ढंग से अपनी कथा कहने में ही उनका दृढ़ विश्वास बना रहा।

आलोचकों का एक वर्ग इसे भले ही प्रेमचन्द की कमजोरी मानता हो, परन्तु वास्तव में यही सहजता प्रेमचन्द की शक्ति थी। प्रेमचन्द की कृतियों में किस्सागोई पद्धति का परिष्कृत रूप परिलक्षित होता है। अपने एक निबंध 'युग-प्रवर्तक प्रेमचन्द' में नागरजी ने लिखा है— "मुंशी प्रेमचन्द आधुनिक युग के यथार्थवादी कथा लेखक होते हुए भी, विदेशी कहानियों के अध्ययन से प्रभावित होकर भी दरअसल थे पुरानी भारतीय परंपरा के किस्सागो ही। ..... उनके कथा कहने का ढंग उतना ही सरल है, जितना कि एक था राजा, एक थी रानी वाली कहानी का ढंग होता है।"<sup>2</sup> संक्षेप में यह कह सकते हैं कि प्रेमचन्द को प्रसिद्धि शिल्प के वैशिष्ट्य या यूरोपीय चिन्तन की बड़ी-बड़ी बातें करने के कारण नहीं मिली बल्कि लोक-जीवन से तादात्म्य स्थापित कर उसकी दृष्टि और व्यथा को अभिव्यक्त करने के कारण मिली।

इसी धरातल पर अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य का विवेचन यह प्रमाणित करता है कि नागरजी के उपन्यासों में किस्सागोई प्रवृत्ति, यथार्थ चित्रण की अद्भुत क्षमता तथा पीड़ित-वंचित वर्ग की पीड़ा को संवेदना के साथ व्यक्त करने का गुण प्रेमचन्द की ही भाँति पाया जाता है। अंतर केवल इतना है कि प्रेमचन्द के पात्र यदि ग्रामीण जीवन के हैं तो नागरजी के अधिकांश पात्र शहर के मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद नागरजी के अधिकांश उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इसी कारण स्वतंत्र भारत के मध्यवर्ग की पीड़ा नागरजी के सामाजिक उपन्यासों में मुखरित हुई है। राजेन्द्र यादव ने इस मध्यवर्ग के बारे में लिखा है— "स्वतंत्रता के बाद, पहली बार सच्चे अर्थों में हमारे समाज में एक विशाल मध्यवर्ग ने अपना वास्तविक आकार ग्रहण किया है। ..... जो कहीं भी अपने को जुड़ा हुआ नहीं पाता। कोई शहर उनका अपना नहीं है, कोई संबंध उनका अपना नहीं है, उनकी जड़ें न पीछे खेत-खलिहान में हैं, न किसी संयुक्त परिवार में। उनका एकमात्र साधन नौकरी है और एकमात्र भय बेकारी।"<sup>3</sup> यह मध्यवर्ग मानों सब कुछ भोगने, बर्दाश्त करने के लिए अभिशप्त है।

नागरजी का लालन-पालन इसी मध्यवर्गीय परिवेश में हुआ था। नगर अंचल का यह मध्यवर्ग - उच्च मध्यवर्ग, तथा निम्न मध्यवर्ग, दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। नागरजी मध्यवर्ग की दोनों कोटियों से जुड़े रहे हैं। लखनऊ के चौक क्षेत्र में रहते हुए वे इस वर्ग के गुण-अवगुण, सुख-दुःख, बोली-बानी, परिवेश-संस्कार, क्षमता-अक्षमता, मान्यता-विरोध सभी से भली-भाँति परिचित रहे हैं। इस क्षेत्र के जीवन को उन्होंने निकट से देखा है, भोगा है तथा उन्हें यहाँ के व्यक्तियों की विस्तृत-सूक्ष्म सभी जानकारी रही है। यही कारण है कि उनके अधिकांश उपन्यासों का परिवेश लखनऊ का यही चौक क्षेत्र रहा है।



नागरजी के ऐतिहासिक उपन्यास विशेषतः अवध के इतिहास से संपृक्त रहे हैं। इस कारण इन कृतियों में देशकाल-वातावरण सजीवता के साथ प्रस्तुत हो सका है। अवध-प्रदेश की राजधानी लखनऊ को केन्द्र में रखकर नागरजी ने नवाबी शासन की ऐतिहासिक घटनाओं को आकर्षक ढंग से अपने उपन्यासों में वर्णित कर दिया है। इन कृतियों के निर्माण में उनका इतिहास-प्रेम बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। नागरजी की ऐतिहासिक कृतियों में ऐतिहासिक यथार्थ के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ भी जीवंत रूप में चित्रित हुआ है।

नागरजी के सांस्कृतिक, पौराणिक या ऐतिहासिक उपन्यासों में भी, जहाँ पात्रों का वैविध्य दिखाई पड़ता है, उनका किस्सागो रूप प्रमुख है। यथार्थ चित्रण तथा छोटे-छोटे पात्रों से भी आत्मीय संबंध स्थापित करके उन्हें प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने की उनकी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। ये समस्त गुण प्रेमचन्द के समान ही हैं।

परन्तु प्रेमचन्द की परम्परा का अनुगमन करते हुए नागरजी में कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी दिखाई पड़ती हैं।

नागरजी का जो वैशिष्ट्य सहज ही परिलक्षित होता है, वह है शिल्प या तकनीक के प्रति उनका आकर्षण। नागरजी ने अपने कई उपन्यासों में कथानक संबंधी नवीन प्रयोग किए हैं। 'सेठ-बाँकेमल', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'नाच्यो बहुत गोपाल' जैसे उपन्यास इसका उदाहरण हैं। कथ्य संबंधी नवीन और साहसपूर्ण प्रयोगों के साथ-साथ भाषा की जैसी बहुरंगी छटा नागरजी की कृतियों में दिखाई पड़ती है, वैसी प्रेमचन्द में नहीं है। नागरजी के भिन्न-भिन्न पात्र अपने भाषिक वैविध्य के कारण आकर्षक लगते हैं। पात्र-निर्माण के क्रम में नागरजी यथार्थ जगत् के वास्तविक व्यक्तियों का गहराई से अध्ययन करते हैं और अपनी कृति के पात्रों में उनका समावेश कर देते हैं। कभी-कभी वास्तविक जगत के दो या तीन चरित्रों के वैशिष्ट्य को वे अपने एक ही पात्र में आरोपित कर देते हैं। नागरजी परकाया प्रवेश में निपुण हैं अतः उनके अमूर्त पात्र भी मूर्त हो जाते हैं। पात्रों की सजीवता का कारण लेखक की यही आत्मीयता है। पाँचू, मोनाई, सेठ बाँकेमल, ताई, महिपाल, अरविंद शंकर, पुत्तीगुरू, निर्गुण, गुरसरनबाबू तथा तनकुन जैसे पात्र इसीलिए अविस्मरणीय हो गए हैं। पात्रों के चित्रण में सूक्ष्मता भी नागरजी का अपना वैशिष्ट्य है।

प्रेमचन्द की कृतियों में व्यंग्य का पैनापन परिलक्षित नहीं होता परन्तु अमृत लाल नागर ने अपनी कृतियों में हास्य-व्यंग्य का समावेश बड़ी दक्षता के साथ किया है।

नागरजी और प्रेमचन्द में बड़ा अंतर आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है। नागरजी ने प्रेमचन्द की तुलना में आध्यात्मिक मूल्यों पर अधिक बल दिया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में आध्यात्मिक मूल्य भी सामाजिक मूल्यों के आवरण में ही व्यक्त हुए हैं।

नागरजी प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक होते हुए भी आस्तिक रचनाकार रहे हैं। बाबा रामजी दास के सत्संग से आस्तिकता के प्रति उनकी आस्था और प्रबल हुई थी। नागरजी ने आस्तिक जीवन-मूल्यों की प्रवंचनाओं का विरोध तो किया है किन्तु उन जीवन-मूल्यों को नकारा नहीं है। नागरजी की मान्यता है कि सच्चे अर्थों में संत वही है जो वास्तव में सत्यनिष्ठ है। नागरजी ने आज के युग में व्यावहारिक आध्यात्मिक मूल्यों के निरूपण के लिए सोमाहुति, सूर, तुलसी जैसे प्राचीन चरित्रों को ही नहीं बाबा रामजी जैसे समसामयिक संत की अवतारणा भी अपने उपन्यासों में की है। इस प्रकार उन्होंने व्यवहार के स्तर पर आस्तिक चेतनायुक्त संतत्व की आवश्यकता पर बल दिया है और आडम्बर के साथ-साथ धार्मिक विकृतियों का विरोध किया है।

प्रेमचन्द और नागरजी का यह अंतर विवेचित करने का उद्देश्य किसी को बड़ा या छोटा बनाना नहीं है अपितु यह प्रतिपादित करना है कि घटना प्रधान तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों के युग से आगे बढ़कर प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को जो नवीन दिशा दी—वही गतिशीलता अपनी कुछ विशेषताओं के साथ प्रेमचन्दोत्तर काल में भी दिखाई पड़ती है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि नागरजी ने प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास धारा को सार्थक रूप से आगे बढ़ाया है।

### समकालीन प्रमुख उपन्यासकारों के तुलनात्मक संदर्भ में नागरजी का वैशिष्ट्य :

इस संदर्भ में नागरजी के समकालीन उपन्यासकारों की औपन्यासिक सृष्टि और दृष्टि की संक्षिप्त विवेचना भी आवश्यक है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य को प्रेमचन्द-परवर्ती उपन्यासकारों ने अपनी अद्भुत क्षमता से सम्मन्न और सजग चिन्तन से समृद्ध किया है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अशक, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन जैसे शीर्षस्थ उपन्यासकारों ने इसी काल में अपनी कालजयी कृतियों द्वारा हिन्दी उपन्यास को विश्व-स्तर पर प्रतिष्ठित किया। अपने समकालीन उपन्यासकारों से प्रेरणा लेकर या प्रभावित होकर नागरजी ने अपने उपन्यासों को किस रूप में समृद्ध किया है अथवा अपनी विशेषताओं के कारण वे सबके बीच अपनी स्वतंत्र सत्ता का आभास देने में किस रूप में सफल रहे हैं, इसका विवेचन नागरजी की शक्ति और सीमा का आकलन करने में सहायक होगा।

उत्तर-प्रेमचन्द काल में दो धाराएँ विकसित हुईं—एक धारा प्रेमचन्द की मूल परम्परा को गतिशील करने वाली थी। इस धारा के प्रतिनिधि उपन्यासकार हुए — यशपाल, भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अशक और अमृतलाल नागर। दूसरी धारा



आत्मपरक थी, जो मन के अंधकूपों में उतरकर यथार्थ के पीछे का सत्य जानने को व्यग्र उपन्यासकारों का प्रतिनिधित्व करती थी। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार हैं। इसी काल में आंचलिक उपन्यासकारों के रूप में नागार्जुन तथा फणीश्वरनाथ रेणु ने विशेष ख्याति अर्जित की।

जैनेन्द्र ने व्यापक जीवनानुभूतियों के विस्तृत वर्णन को अपेक्षा वैयक्तिक समस्याओं के चित्रण में अपनी रुचि दिखाई। पति, पत्नी और प्रेमी का प्रेम-त्रिकोण उनके उपन्यासों में योजनाबद्ध तरीके से मिलता है। अपने उपन्यासों में जैनेन्द्र ने कथानक के सिद्ध ढाँचे को तोड़ा है। उनके उपन्यासों में आदि, विकास और अन्त नहीं होता और न ही उपन्यास में व्यक्त यथार्थ बाहरी यथार्थ से मेल खाता है। उनके उपन्यास घटना की अपेक्षा संवेदना को प्रधानता देते हैं। शिक्षित एवं सुसंस्कृत मध्य-वर्ग की विशिष्ट प्रेम-समस्या भावात्मकता के साथ उनके उपन्यासों में चित्रित है। एक नारी और दो पुरुष वाले उनके अधिकांश उपन्यासों में नारी एक ओर पति परायणा है तो दूसरी ओर प्रेमी के आकर्षण में भी बँधी है। इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति का चित्रण जैनेन्द्र की कृतियों की अपनी विशेषता है। 'सुनीता', 'सुखदा', 'विवर्त' और 'व्यतीत' की कथा-वस्तु प्रायः इसी प्रेम-त्रिकोण पर आधारित है। नारी-पात्र के केन्द्र में होने के कारण ये उपन्यास नारी प्रधान हैं। 'जयवर्द्धन' जैसे उपन्यास में उन्होंने सामाजिक पीठिका को भी आकलित करने की चेष्टा की है परन्तु वह उनकी मुख्य संवेदना नहीं रही है।

जैनेन्द्र के नारी पात्र वर्तमान परिस्थितियों से असन्तुष्ट हैं तथा सामाजिक मान्यताओं के प्रति उग्र रूप से विद्रोही भाव व्यक्त करते हैं। जैनेन्द्र के नारी पात्रों का प्रेमियों के सामने समर्पण उनकी सम्मोहित मनःस्थिति का सूचक है।

इस प्रकार प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के उपन्यासों में मौलिक भेद नजर आता है। प्रेमचन्द के पात्रों की जो समस्याएँ उपन्यासों में उभरी हैं वे वास्तव में समाज की समस्याएँ हैं। इसके विपरीत जैनेन्द्र की सामाजिक समस्याएँ विशेषतः व्यक्ति की समस्याएँ हैं। यही कारण है कि जो सहानुभूति प्रेमचन्द के पात्रों को मिली वह जैनेन्द्र के पात्रों को नहीं मिल सकी। परन्तु यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकारी जा सकती है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों से हिन्दी उपन्यास की कलात्मकता विकसित हुई और वैयक्तिकता के सूक्ष्म चित्रण को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

अज्ञेय की कृति 'शेखर एक जीवनी', प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है, हिन्दी उपन्यास में एक नया प्रयोग है। फ्रायड के अवचेतन मनोविज्ञान का व्यापक अध्ययन अज्ञेय के उपन्यासों का वैशिष्ट्य है। विद्रूप एवं दमित काम-कुण्ठाओं की पर्याप्त मौलिक एवं प्रयोगपरक प्रस्तुति अज्ञेय के

उपन्यासों में प्राप्त होती है। काव्यात्मक शैली तथा अभिजात भाषा अज्ञेय के उपन्यासों को गरिमामण्डित कर देती है। डॉ. शिव नारायण श्रीवास्तव के अनुसार— “व्यक्ति मन के ऊहापोह के जिस चित्रण-शिल्प का प्रवर्तन जैनेन्द्र ने किया था उसे इलाचन्द्र जोशी ने मनोवैज्ञानिक आवरण दिया। उस शिल्प की चरम-परिणति अज्ञेय की कृति ‘शेखर एक जीवनी’ में परिलक्षित हुई।”<sup>4</sup>

अज्ञेय अपने उपन्यासों में समाज के विविध वर्गों का व्यापक चित्रण करने की अपेक्षा एक व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके वास्तविक जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म छानबीन करना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। वास्तव में वे व्यक्ति और समाज के सेतु हैं। उनके व्यक्ति-पात्र भी सामाजिक उत्तरदायित्व-संपन्न हैं। यद्यपि उनके चरित्रों को प्रेमचन्द की तरह जाति (टाइप) पात्र नहीं कहा जा सकता तथापि वे विशिष्ट हैं और विशिष्टता के साथ समाज से संपृक्त हैं। मनुष्य की काम-संबंधी गतिविधियों एवं उसके अभाव में होने वाली प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म अंकन अज्ञेय के उपन्यासों में मिलता है। ‘शेखर एक जीवनी’ (२ भाग) इसका पहला उदाहरण है तो ‘नदी के द्वीप’ दूसरा। अज्ञेय के उपन्यासों से वह ध्वनित होता है कि मानव-जीवन की काम-भावना पर अतिरिक्त प्रतिबन्ध उसे कुंठित बना देता है। शिल्प एवं कथ्य के स्तर पर अपनी पूर्व परम्परा के प्रति जैनेन्द्र कुमार में जो विद्रोह लक्षित होता है उसका और विकास अज्ञेय के उपन्यासों में प्राप्त होता है।

इलाचन्द्र जोशी ने फ्रायड, एडलर तथा युंग आदि विदेशी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों से प्रभाव ग्रहण कर अपने उपन्यासों की रचना की है। इन मनोविश्लेषकों के हर स्कूल की मान्यताओं का विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास उनके आंचलिक उपन्यासों में किया गया है। यही कारण है कि ये विवरणात्मक हो गये हैं। जैनेन्द्र और अज्ञेय जैसी सूक्ष्मता जोशी के उपन्यासों में परिलक्षित नहीं होती है। उनकी कथात्मक शैली और मनोवैज्ञानिक विवेचन में संगति नहीं बैठ सकी है। उनके प्रमुख उपन्यास हैं— घृणामयी, संन्यासी, पर्दे की रानी, मुक्ति पथ, सुबह के भूले, जहाज का पंछी।

जोशीजी के उपन्यासों में मनुष्य के अंतःकरण में स्थित चेतना के विविध स्तरों का उद्घाटन किया गया है। मानसिक कुंठाओं और मनोग्रंथियों के कारण अस्वस्थ मनःस्थिति का विकास होता है जो जीवन को विषम बना देती है। इलाचन्द्र जोशी के प्रधान-पात्र इसी मानसिक अस्वास्थ्य के शिकार होते हैं। इन पात्रों के जीवन की गति एवम् असंगति का चित्रण ही जोशीजी की कथा का मुख्य विषय होता है। इस प्रकार के मानसिक रोगियों का उपचार वे रहस्योद्घाटन द्वारा करते हैं।

जोशीजी की शैली काव्यात्मक है। मानव-मन के गूढ़ रहस्य को जानकर वे आनंदमग्न हो उठते हैं और सरस एवं प्रवाहमयी शैली में तल्लीनता से वर्णन करने



लगते हैं। इन प्रसंगों के वर्णन पाठकों को आकर्षित करते हैं। परन्तु जोशीजी की कृतियों में यथार्थवादी भाषा-शैली का नितान्त अभाव है। उनके पात्र बात करते-करते मानों भाषण देने लगते हैं जिससे कथा अनावश्यक रूप से विस्तृत और शिथिल हो जाती है।

इन उपन्यासकारों ने सामान्यतः पूँजीवादी संस्कृति एवं अधिनायकशाही में घुटते हुए व्यक्ति-मन के दमित काम, अहं एवं विद्रोह के अनेक सफल चित्र प्रस्तुत किए हैं। जैनेन्द्र ने दमित काम का पूर्ण प्रकाशन कराकर उसका स्वाभाविक उदात्तीकरण कराया है। मनोविज्ञान और गाँधीवादी दर्शन का प्रभावशाली प्रयोग लेखक ने किया है। उनकी कृतियों में दर्शन और मनोविज्ञान एक-दूसरे के पूरक होकर आए हैं। अज्ञेय में विविधता, गहराई और फैलाव है परन्तु जीवन की पीड़ा और व्यथा भी उनमें है। उनके व्यक्ति-पात्र समाज से असंपृक्त नहीं हैं।

इस प्रकार जैनेन्द्र, अज्ञेय और जोशी के उपन्यासों में स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यद्यपि इन उपन्यासकारों में शिल्प की दृष्टि से परिपक्वता है परन्तु सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति प्रतिबद्धता की कमी एक सीमा तक खटकती है।

इसी काल की प्रेमचंद परंपरा का अनुगमन करने वाली धारा के उपन्यासकार उपेन्द्र नाथ अशक के सभी उपन्यासों का मूल स्वर सामाजिक क्रांति एवं वैयक्तिक स्वातंत्र्य है। यथार्थ जीवन से जुड़कर घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने के कारण अशक के उपन्यास प्रेमचंद परम्परा को समृद्ध करते हैं। छोटे-छोटे प्रसंगों, वातावरण एवं परिस्थितियों को मूर्त्त करने की उनमें अपूर्व क्षमता है। मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग की जीवन-रीति, स्वभाव-संस्कार, विचार-पद्धति, कुंठा, निराशा एवं अतृप्त वासना तक को परखने की पैनी दृष्टि अशक में है। उनके उपन्यास राजनीतिक मतवाद या दार्शनिक विवेचन से पूर्णतया मुक्त हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं— सितारों के खेल, गिरती दीवारें, गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर अलपत्थर आदि। अशकजी के उपन्यास व्यक्ति और समाज के ऐक्य और पार्थक्य को समझने और चित्रित करने की शक्ति से सम्पन्न हैं। इन विशेषताओं के बावजूद अशक की सर्जनात्मक प्रतिभा महत् की सीमा का स्पर्श नहीं कर पाती।

समाज का यथार्थवादी चित्रण करने के कारण यशपाल के उपन्यास प्रेमचंद की परम्परा में आते हैं। यशपाल का चिन्तन मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है। जिन्दगी की सूक्ष्म पकड़ के कारण यशपाल अधिक सचेत यथार्थवादी उपन्यासकार माने जाते हैं। यद्यपि उनका चिन्तक रूप उपन्यासों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है परन्तु उनके दीर्घ विवरण भी पाठकों तक सहज रूप में सम्प्रेषित होते हैं। उनके

उपन्यासों में असंतुलन नहीं है। अनावश्यक संदर्भों को त्यागकर आगे बढ़ जाने की उनमें अद्भुत सामर्थ्य है। डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव के अनुसार— “जीवन की प्रवृत्ति को असीद्गंध सत्य मानकर उन्होंने अपने उपन्यासों में यौन-आकर्षण को मनुष्य की सबसे सहज, स्वाभाविक तथा तीव्र अनुभूति के रूप में चित्रित किया है और उनमें राजनीति तथा रोमांस का अपूर्व सम्मिलन हुआ है।”

यशपाल के उपन्यास सिद्धांत प्रचार का साधन हैं। प्रतिबद्धता के अतिरेक के कारण वे उपन्यासकार के स्थान पर प्रचारक की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं। यशपाल पूँजीवादी धारणा के विरुद्ध हैं और वर्ग संघर्ष से समाजवाद की स्थापना के हिमायती हैं। वे नारी स्वातंत्र्य के पूर्ण समर्थक हैं। परंतु यह भी सच है कि कुछ प्रमुख आलोचकों की दृष्टि में वे यौन चित्रण में अनुचित रस लेने की सीमा तक चले जाते हैं। यशपाल ने आधुनिकता की चुनौती को सामाजिक और राजनीतिक धरातलों पर स्वीकारा है। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं— दादा कामरेड, देशद्रोही, दिव्या, मनुष्य के रूप तथा झूठा-सच।

**भगवती चरण वर्मा** के सभी उपन्यासों में यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रभावित करनेवाला है। उन्होंने मध्यवर्गीय सामाजिक नैतिक मान्यताओं को नूतन वैयक्तिक रूप प्रदान किया है। पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक, भावात्मक तथा संस्मरणात्मक स्तर पर व्यक्तिपरक मूल्यों एवं मान्यताओं की स्थापना करने में वे सफल रहे हैं। छोटे-छोटे व्यंजक व्यौरों के द्वारा वातावरण निर्माण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। वर्माजी के उपन्यासों में व्यंग्य का पुट प्रभावशाली है। जड़ मूल्यों के नीचे दबे मानवमूल्यों की स्थापना का स्वर मुखरित कर वर्माजी ने हिन्दी उपन्यासों को नवीन दिशा दी है। चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, आखिरी दौंव, भूले बिसरे चित्र उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

आंचलिक उपन्यासकारों में **नागार्जुन** और **रेणु** ने इस काल में विशेष ख्याति अर्जित की है। नागार्जुन के उपन्यास ‘रतिनाथ की चाची’, ‘बलचनमा’, ‘बाबा बटेसरनाथ’ में आंचलिक स्पर्श के साथ निम्न तथा मध्यवर्ग की जनता का सामाजिक-आर्थिक संघर्ष सजीव रूप में चित्रित हुआ है। उनकी साम्यवादी विचारधारा का उपन्यासों में सहज अवलोकन किया जा सकता है। नागार्जुन के उपन्यासों में मिथिला अंचल सजीव रूप में चित्रित हुआ है।

‘मैला आंचल’ और ‘परती परिकथा’ यह प्रमाणित करते हैं कि फणीश्वर नाथ रेणु ने मिथिला अंचल के जन-जीवन को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उनके सजीव वर्णन ने मिथिला अंचल की घरती को वाणी दे दी है, लोकजीवन को मुखरित कर दिया है। आंचलिक वातावरण के निर्माण हेतु लेखक ने स्थानीय बोली एवं लोकगीतों का समुचित प्रयोग किया है।



प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की दो धाराओं में नागरजी की गणना यद्यपि प्रेमचन्द परम्परा के सामाजिक उपन्यासकारों में की जाती है तथापि अपने समय की दूसरी धारा के उपन्यासकारों के साथ उनकी कहीं अल्प तो कहीं व्यापक समानता परिलक्षित होती है।

जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की मनोविश्लेषण प्रधान प्रवृत्ति का नागरजी के उपन्यासों में अभाव है। उनमें इन उपन्यासकारों की तरह न तो अतिशय गंभीर मनोविश्लेषण मिलता है और न ही अहंमूलक चेतना का विशिष्टीकरण ही। परन्तु सूक्ष्म विवेचन से विदित होता है कि जैनेन्द्र में जो दमित काम का पूर्ण प्रकाशन कराकर उदात्तीकरण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, वह नागरजी के उपन्यासों में भी है। 'मानस का हंस' तथा 'खंजन-नयन' में तुलसी और सूर के साथ मोहिनी और कन्तो की कल्पना काम को उदात्तीकृत करने के लिए ही की गई है। काम का राम और श्याम में परिमार्जन उपन्यास की गरिमा को बढ़ा देता है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' की निर्गुण आरंभ में काम-कुंठा के कारण विद्रोह को अभिव्यक्त करती है। इस उपन्यास की संपूर्ण कथा में काम के उदात्तीकरण का सार्थक प्रयास परिलक्षित होता है।

इसी प्रकार 'शतरंज के मोहरे' की दुलारी और 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' की जुआना की विविध काम चेष्टाएँ काम-कुंठाओं और अन्तर्मन की यौन-विकृतियों को उजागर करती हैं। ये सारे प्रसंग यद्यपि अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के प्रसंगों की भाँति सूक्ष्म नहीं हैं तथापि इनके चित्रण में इन मनोविश्लेषक उपन्यासकारों का हल्का प्रभाव अवश्य है। नागरजी का काम संबंधी व्यापक विश्लेषण विस्तृत कथा के साथ युक्त होकर कोई शिल्पगत वैशिष्ट्य की सृष्टि नहीं करता। यद्यपि इसके प्रति उनकी कोई वर्जना नहीं है। वहीं जैनेन्द्र, अज्ञेय और जोशी का सूक्ष्म मनोविश्लेषण शिल्प की नवीन प्रविधि का संकेत देता है। नागरजी और इन उपन्यासकारों में यही मौलिक अंतर है। काम-कुंठाओं तथा यौन-ग्रंथियों वाले अनेक पात्र नागरजी के उपन्यासों में हैं। कई स्थानों पर उपन्यासकार ने रस ले-लेकर इन विकृतियों का वर्णन किया है। ये चित्रण यशपाल के यौन चित्रण से मेल खाते हैं। यह सही है कि नागरजी की कृतियों में यह गौण उप-फल (by product) के रूप में चित्रित है जबकि जैनेन्द्र-अज्ञेय-जोशी के उपन्यासों में मनोविश्लेषण ही प्रमुख है।

जैनेन्द्र की भाँति नागरजी में भी गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'बूँद और समुद्र' में महिपाल के संबंध में नागरजी ने जो विचार व्यक्त किए हैं वह वास्तव में नागरजी की अपनी स्वोक्ति है— "कम्युनिज्म को गाँधीवादी अहिंसा का जनेऊ पहनकर उसे भारतीय बनाने की चिंता में उसकी बुद्धि लगन के साथ लगी रहती है।"<sup>6</sup>

नागरजी ने ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यासों की भी रचना की है। वृन्दावन लाल वर्मा प्रेमचन्द युग के ऐतिहासिक उपन्यासकार रहे हैं — इनकी कई कृतियाँ प्रेमचंदोत्तर काल में भी प्रकाशित हुई हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में वर्माजी की ख्याति सर्वाधिक है। नागरजी की कृतियों में उनके प्रभाव की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

ठीक इसी प्रकार उस काल के सांस्कृतिक उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी की कृति 'वाणभट्ट की आत्मकथा' तथा 'चारु चंद्र लेख' का प्रभाव नागरजी के उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' में मुख्य रूप से तथा 'मानस का हंस' और 'खंजन-नयन' में गौण रूप से अवश्य पड़ा होगा। प्रतीत होता है कि एक सीमा तक हजारी प्रसाद द्विवेदी की इन कृतियों ने नागरजी को प्रभावित किया है।

नागरजी के आंचलिक उपन्यास अपने समकालीन प्रतिष्ठित आंचलिक उपन्यासकारों रेणु और नागार्जुन की भाँति प्रभावशाली हैं। परन्तु इन दोनों उपन्यासकारों की तुलना में अमृतलाल नागर का वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने अंचल के रूप में ग्रामीण जीवन को न लेकर नगर के एक मुहल्ले को लिया है। यह मुहल्ला 'बूंद और समुद्र' उपन्यास में लखनऊ शहर का चौक मुहल्ला है। नागरजी का यह उपन्यास रेणु के आंचलिक उपन्यासों के समकक्ष रखा जा सकता है। नागरांचलीय उपन्यासों की रचना का आकर्षक सफल प्रयोग करने में नागरजी की उपलब्धि उल्लेखनीय है। 'बूंद और समुद्र' के पूर्व 'सेठ बाँकेमल' भी अपनी भाषा के कारण आंचलिक उपन्यास माना जाता है। नागरजी में नागार्जुन के आंचलिक उपन्यासों की भाँति राजनीतिक मतवाद की प्रतिष्ठा का आग्रह दिखाई नहीं देता। वे मार्क्सवाद के स्थान पर मानवतावाद के समर्थक हैं। नागरजी के उपन्यास यह प्रमाणित करते हैं कि उन्होंने साहित्य की साधना पूरी निष्ठा और ईमानदारी से की है। प्रत्येक उपन्यास को लिखने के पहले नागरजी जैसी तैयारी करते हैं, अपने को जिस रूप में कृति के पात्रों के साथ एकरस कर देते हैं— वही उनकी सफलता और विशिष्टता का मूल मंत्र है। उनकी भाषा का आकर्षण, पात्रों की सजीवता तथा कथ्य की नवीनता कृति को प्रभविष्णु बनाती है। यह वैशिष्ट्य उन्हें समकालीन उपन्यासकारों के बीच पृथक् रूप में प्रतिष्ठित करता है।

भगवती चरण वर्मा, यशपाल और अशक के उपन्यासों में भी मध्यवर्गीय जीवन सजीवता के साथ उपस्थित हुआ है और इन उपन्यासकारों ने साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। परन्तु अशक की कृतियों में कथानक की शिथिलता है। छोटे-छोटे घटना-प्रसंगों द्वारा वे अपना चित्रपट तो विस्तृत करते जाते हैं परन्तु उनमें गहराई नहीं ला पाते। भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में भाषा की वह सूक्ष्म पकड़ नहीं है जो नागरजी में है। परन्तु वर्माजी का उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' नागरजी के 'अमृत और विष' तथा 'करवट' उपन्यासों के लिए अवश्य प्रेरक रहा होगा।



अपने विशिष्ट राजनीतिक मतवाद की प्रतिष्ठा के मोह में यशपाल के उपन्यास एकांगी हो गए हैं। यद्यपि नागरजी भी प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक रहे हैं तथापि उन्होंने अपनी विचारधारा को आरोपित करने का प्रयास नहीं किया है— संतुलित विवेचन ही उनका उद्देश्य रहा है। उन्होंने प्रगतिशीलता को भारतीय जीवन के साथ जोड़कर स्वाभाविक रूप से प्रतिष्ठित किया है— मताग्रही के रूप में नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नागरजी अपने समकालीन उपन्यासकारों के बीच अपने वैशिष्ट्य के कारण सहज ही अलग पहचाने जा सकते हैं। इस संदर्भ में जिन-जिन उपन्यासकारों का उल्लेख किया गया है वे अपने-अपने क्षेत्रों में वरेण्य हैं। यहाँ इन सभी उपन्यासकारों की क्षमता और रचना-कौशल से नागरजी की विस्तृत तुलना करना अभीष्ट नहीं है फिर भी यह बात बिना हिचक के कही जा सकती है कि इन महत्त्वपूर्ण लेखकों के बीच नागरजी निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द के अधिक निकट हैं।

## निष्कर्ष

नागरजी ने अपने उपन्यासकार के निर्माण के लिए जीवन के कटु-मधुर अनुभवों को पूँजी के रूप में सहेजा है। आजीविका हेतु विविध क्षेत्रों में किए गए कार्यों ने उपन्यासकार के अनुभव को समृद्ध किया है। विभिन्न वर्ग के व्यक्तियों के बारे में व्यापक जानकारी रखने की उनकी रुचि उनके लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। उनके कथाकार मानस ने अपने कथ्य की सजीवता के लिए एक भंगी से लेकर विशिष्ट साहित्यकार तक या वेश्या से लेकर आध्यात्मिक संत तक का सूक्ष्म अध्ययन-मनन-विश्लेषण करने में कभी संकोच का अनुभव नहीं किया है।

अनुभव की पृष्ठभूमि पर जीवन को निकट से देखने की चेष्टा ने नागरजी की प्रतिभा को विशिष्ट आभा से युक्त कर दिया है। यही कारण है कि नागरजी यथार्थ जीवन को अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से सार्थक रूप में प्रकट कर सके हैं। यथार्थ-अंकन में उनकी सजगता के कारण ही छोटा-बड़ा हर पात्र आकर्षक लगता है।

अमृतलाल नागर के उपन्यास चाहे सामाजिक हों, आंचलिक हों, ऐतिहासिक हों या सांस्कृतिक— उनकी सभी कृतियों में उपन्यासकार की सहज सामाजिक दृष्टि देखी जा सकती है। बंगाल के अकाल को भी उन्होंने केवल ऐतिहासिक आधार पर ग्रहण न करते हुए भूख की सामाजिक समस्या से जोड़ दिया है। इसी प्रकार 'सुहाग के नूपुर' में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि की अपेक्षा समाज की ज्वलंत समस्या उठाई गई है। 'पत्नी बनाम वेश्या' की इस समस्या का आकलन उनकी समाज सचेतनता का प्रमाण है। नागरजी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में भी यही दृष्टि देखी जा सकती है।

इतिहास और समाज का स्पष्ट समन्वय उनके 'करवट' उपन्यास में देखा जा सकता है। उपन्यासकार नागर का यह इतिहास प्रेम उनके समाजशास्त्रीय रूप का विशेष सहयोगी रहा है। यह नागरजी का अपना वैशिष्ट्य है।

सामाजिक उपन्यासों में भी समस्याओं के चित्रण हेतु नागरजी में वैविध्य दिखाई पड़ता है। कहीं वे भूख की समस्या को यथार्थवादी दृष्टि से देखते हैं (महाकाल) ; कहीं पुराने जमाने की दुहाई देने वाले पात्र 'सेठ बाँकेमल' की पीड़ा को व्यंग्य का जामा पहना देते हैं तो कहीं 'बूँद और समुद्र' जैसे वृहद् सामाजिक आशय वाले उपन्यास को आंचलिक स्पर्श के साथ उभारने की चेष्टा करते हैं। इसी क्रम में 'अमृत और विष' में पीढ़ीगत वैषम्य को उभारने और युवा-शक्ति को पहचानने का सार्थक प्रयास किया गया है। उपन्यासकार ने भंगी-जीवन की घृणित दशा को अपनी सामाजिक दृष्टि से देखकर उस वर्ग के प्रति लेखकीय संवेदना व्यक्त की है (नाच्यौ बहुत गोपाल)। समाज में दहेज को लेकर होनेवाली क्रूरता पर भी लेखक ने नजर दौड़ाई है और भारतीय नारी पर हो रहे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शोषण की व्यथा-कथा अपनी सहानुभूति के साथ कह दी है (अग्निगर्भा)। ये कृतियाँ यह सिद्ध करती हैं कि नागरजी की सामाजिक दृष्टि का दायरा अत्यंत व्यापक है।

उपन्यास के सिद्ध ढाँचे के प्रयोग के साथ उपन्यासकार ने कथानक संबंधी नवीन और साहसपूर्ण प्रयोग भी किए हैं। 'सेठ बाँकेमल' की कहानियों का औपन्यासिक संगुंफन इसका प्रथम प्रमाण है तो 'अमृत और विष' का दुहरा कथानक दूसरा। इसी प्रकार 'मानस का हंस' और 'नाच्यौ बहुत गोपाल' कृतियों को क्रमशः आत्मकथात्मक और डायरीपरक उपन्यास का आकार दे देना उसकी लेखकीय सामर्थ्य का सूचक है। इन प्रयोगों के बावजूद ये कृतियाँ सामान्य पाठकों के लिए आकर्षक बनी रही हैं, यह कथाकार की अपूर्व सफलता है। पात्रों को गढ़ने या भाषा को सजीव बनाने में नागरजी की अद्भुत क्षमता ने उपन्यासों को शिल्प की दृष्टि से समृद्ध किया है। यह समृद्धि ही नागरजी को शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित करने में विशेष सहायक है।

अपने समय के वरिष्ठ साहित्यकारों तथा राजनेताओं से लेकर समवयस्क समानधर्मा लेखकों से प्रेरित-प्रभावित होकर नागरजी ने अपनी प्रतिभा को सम्पन्न किया है और जीवन्तता का परिचय दिया है। प्रगतिशील लेखक संघ की सक्रियता के साथ-साथ आध्यात्मिक संत बाबा रामजी का सात्रिध्य उनकी व्यापक दृष्टि का परिचायक है। किसी भी मतवाद के प्रति हठाग्रही न होकर मानववाद की प्रतिष्ठा ही उपन्यासकार का अभीष्ट रहा है। मार्क्स की कतिपय अवधारणाओं के समर्थक होते हुए भी आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति लेखक की गहरी आस्था उसके हृदय की विशालता और स्वानुभव के प्रति निष्ठा का संकेत देती है। उनकी कृतियों में व्यक्त जिजीविषा और कर्मठ आस्था ने



किसी वाद के विवाद से परे संवाद की स्थिति को निर्मित किया है। उनके लिए मानव-पोड़ा और मानव-समस्याएँ प्रमुख हैं; उसके विकास की दिशाएँ मुख्य हैं— वाद की प्रतिष्ठा नहीं।

निष्कर्षतः प्रेमचंद परंपरा को समृद्ध एवं सुदृढ़ करने के साथ-साथ उसे गतिशीलता प्रदान करने में नागरजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने न केवल परंपरा को नवीन आयाम प्रदान किये हैं अपितु हिन्दी उपन्यास साहित्य को भी स्वस्थ सामाजिक परिप्रेक्ष्य की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है।

### संदर्भ :

१. डॉ. राम विलास शर्मा, रैल्फ फॉक्स कृत उपन्यास और लोक जीवन की भूमिका (पृष्ठ 'ज' से)
२. अमृत लाल नागर, साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ २९
३. राजेन्द्र यादव, प्रेमचन्द की विरासत, पृष्ठ १२
४. शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३१०
५. वही, पृष्ठ ३२२
६. बूँद और समुद्र, पृष्ठ १००.

# सहायक ग्रंथ सूची

## आधार ग्रंथों की सूची

अमृतलाल नागर के उपन्यास :

महाकाल (भूख)	संस्करण १९७०
राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली	
सेठ बाँकेमल	संस्करण १९६८
हिन्द पॉकेट बुक्स, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२	
वृंद और समुद्र	संस्करण १९७०
किताब महल, इलाहाबाद	
शतरंज के मोहरे	संस्करण १९८४
भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५/४७ कनाट प्लेस, नई दिल्ली-११०००१	
सुहाग के नूपुर	संस्करण १९६५
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि०, दिल्ली	
अमृत और विष	संस्करण १९८६
लोकभारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-१	
सात घूँघट वाला मुखड़ा	संस्करण १९८०
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली	
एकदा नैमिषारण्ये	संस्करण १९७२
लोकभारती प्रकाशन, १५-ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-१	
मानस का हंस	संस्करण १९७२
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	
नाच्यो बहूत गोपाल	संस्करण १९७८
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	
खंजन नयन	संस्करण १९८७
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	
बिखरे तिनके	संस्करण १९८२
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	
अग्निगर्भा	संस्करण १९८३
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	
करघट	संस्करण १९८५
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६	



## सहायक ग्रंथों की सूची (हिन्दी)

अमृतलाल नागर	: जिनके साथ जिया राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९७३
	टुकड़े-टुकड़े दास्तान राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९८६
	साहित्य और संस्कृति राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९८६
	मेरी प्रिय कहानियाँ राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	१९७०
	ये कोठेवालियाँ लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८४
अमर कोश (संस्कृत)		
डॉ. इन्द्रनाथ मदान	: हिन्दी उपन्यास : एक नयी दृष्टि राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९७५
	हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख लिपि प्रकाशन, दिल्ली	१९७३
डॉ. इन्दु प्रकाश पाण्डेय	: हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	१९७९
किशोरी लाल गोस्वामी	: तारा (उपन्यास) सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	१९२४
डॉ. कैलाश प्रकाश	: प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास हिन्दी साहित्य भंडार, दिल्ली-६	१९६२
बाबू गुलाब राय	: काव्य के रूप प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली	१९५४
गंगा प्रसाद पाण्डेय	: महाप्राण निराला लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद	१९६८
डॉ. गोपाल राय	: हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव ग्रन्थ निकेतन, पटना-६	१९६५
डॉ. चन्द्रकान्त बाँदिवडेकर	: हिन्दी उपन्यास : स्थिति और गति पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली	१९७७
	आधुनिक हिन्दी उपन्यास : सृजन और आलोचना नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	१९८५

जेनेन्द्र कुमार	: साहित्य का श्रेय और प्रेय पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली	१९५३
डॉ. देवीशंकर अवस्थी	: विवेक के रंग ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी	१९६५
डॉ. नगेन्द्र	: विचार और विश्लेषण नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९५५
नरेन्द्र कोहली	: हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	१९८९
आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी	: नया साहित्य : नये प्रश्न वाराणसी विद्या मंदिर, वाराणसी	१९६३
डॉ. पुष्पा बंसल	: अमृतलाल नागर : भारतीय उपन्यासकार प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली	१९८७
डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव	: उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९७६
पुष्प पाल सिंह	: कबीर ग्रंथावली (सटीक) अशोक प्रकाशन, दिल्ली	१९६२
प्रकाश चंद्र मिश्र	: अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य युगवाणी प्रकाशन, कानपुर	
डॉ. भगीरथ मिश्र	: काव्य शास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	१९८४
महेन्द्र चतुर्वेदी	: हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९६२
डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन	: उपन्यास : सिद्धांत और संरचना नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-६	
राजेन्द्र यादव	: प्रेमचन्द की विरासत अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली	१९७८
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	: हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरजी प्रचारिणी सभा, काशी	सं. २००९
डॉ. राम विलास शर्मा	: आस्था और सौन्दर्य किताब महल, इलाहाबाद	१९६१
डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी	: हिन्दी नवलेखन भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	१९६०
रांगेय राघव	: विषाद मठ (उपन्यास)	
डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णोय	: हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली	१९७३
डॉ. विवेकी राय	: हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद	१९८३



प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री	: स्मरण को पाठ्य बनने दो हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी	१९७७
श्याम सुन्दर दास	: साहित्यालोचन इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग	सं. २००८
डॉ. शशिभूषण सिंहल	: हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ बिनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	
डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त	: हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर अशोक प्रकाशन, दिल्ली	१९७१
डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव	: हिन्दी उपन्यास : ऐतिहासिक अध्ययन सरस्वती मन्दिर, वाराणसी	सं. २०१६
डॉ. शिव प्रसाद सिंह	: विद्यापति हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	१९५७
डॉ. सत्यपाल चुघ	: आस्था के प्रहरी इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि का विकास इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद ऐतिहासिक उपन्यास नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	१९७४
डॉ. सत्येन्द्र	: नया दौर : नया उपन्यास	
डॉ. सुदेश बत्रा	: अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त पंचशील प्रकाशन, जयपुर	१९७९
डॉ. सुषमा धवन	: हिन्दी उपन्यास राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	१९६१
डॉ. एस. एन. गणेशन	: हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	१९६२
डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	: साहित्य का साथी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा विचार और वितर्क साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद	१९५७ १९५४
डॉ. हेमराज कौशिक	: अमृतलाल नागर के उपन्यास प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली	१९८५
डॉ. त्रिभुवन सिंह	: हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी	सं. २०१८ १९७३

## सहायक ग्रंथों की सूची (अंग्रेजी)

- The Novel and the People -- Ralph Fox
- The Art of the Novel in the Creative Vision  
Ed. by H. M. Block & T. H. Salinger
- Selected Literary Criticism -- D. H. Lawrence  
Ed. by Anthony Beal
- English Literature and ideas in the twentieth century  
Dr. H. V. Rauth.
- Caste and Class of the Novel 1920-1950 ch. 11
- American Writings in the twentieth century  
by Willard Thorp.
- A Treatise on Novel -- Robert Liddell
- The making of a Literature -- R. A. Scott James
- James Drever -- A dictionary of Psychology
- Encyclopaedia Britannica -- Vol. 16
- The New English Dictionary
- The New Pictured Encyclopeadea Vol. VII
- Fernandez, Personality of a Poet by H. Read.
- The Progress of Romance -- Clorariv
- Vergilius ferm -- A dictionary of Pastoral Psychology
- Harry W. Karn & Joseph Weitz
- An Introduction to Psychology
- A Novelist on Novels -- W. L. George
- An Introduction to study of Literature -- W. H. Hudson.

### पत्र-पत्रिकाएँ

अभिरुचि (त्रैमासिक), आजकल, आलोचना, दस्तावेज, धर्मयुग, नया-जीवन, नव-जीवन (दैनिक), नीर-क्षीर (नागर विशेषांक), मनोरमा, माध्यम, माधुरी, रविवार, समीक्षा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, साहित्य सन्देश, सीमान्त प्रहरी, नेशनल हेराल्ड (अंग्रेजी दैनिक)।

(उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं के विशिष्ट अंकों का ही उपयोग किया गया है।)





## प्रेमशंकर त्रिपाठी

जन्म : नवंबर १९५४, कोलकाता में।

मूल निवासी : राजापुर गढ़वा (मगरावर)

जनपद : उत्राव (३० प्र०)

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) स्वर्णपदक प्राप्त

एवं पी-एच० डी०

(कलकत्ता विश्वविद्यालय)

वृत्ति : सुरेन्द्रनाथ सांध्य कॉलेज कोलकाता के हिन्दी विभाग में रीडर और विभागाध्यक्ष।

प्रेसीडेन्सी कॉलेज, कोलकाता के स्नातकोत्तर

हिन्दी विभाग में अंशकालीन प्राध्यापक।

कृतियाँ : मौलिक -

- हिन्दी उपन्यास और अमृतलाल नागर
- विचार-विधि (यंत्रस्थ)
- बहुआयामी निराला (यंत्रस्थ)

संपादित :

- शास्त्रैरपि शरैरपि : आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री
- विष्णुकान्त शास्त्री वृष्टिपूर्ति अभिनन्दन ग्रंथ
- महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन
- मानस अनुक्रमणिका (श्री रामचरित मानस की पंक्तियों का अकारादि क्रमानुसार संदर्भ कोश)
- जीवन पथ पर चलते-चलते (आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की कविताओं का संग्रह)
- कबीर-अनुशीलन

अन्य :

- वर्द्धमान विश्वविद्यालय में अंशकालीन प्राध्यापक के रूप में कई वर्षों तक अध्यापन।
- कलकत्ता टाइम्स (साप्ताहिक) और 'नाट्य वार्ता' (मासिक) के सम्पादक तथा उप-संपादक के रूप में अरसे तक कार्य।
- विविध पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक समीक्षाएँ तथा आलेख प्रकाशित।
- विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से सक्रिय रूप से संबद्ध।
- श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के विभिन्न दायित्वपूर्ण पदों पर कार्य।

सम्मान :

- उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सम्मान (१९९८ ई०)
- हिन्दी सेवा हेतु भारती परिषद्, उत्राव (३० प्र०) का प्रो० वासुदेव सिंह स्मृति सम्मान (१९९९ ई०)
- मानस संगम (कानपुर) का मानस संगम सम्मान (२००० ई०)

सम्पर्क :

आशीर्वाद अपार्टमेंट्स

सीए ५/१०, देशबन्धु नगर, वागुड़हाटी

कोलकाता-७०० ०५९, दूरभाष : (०३३) २५७६-२५२२





श्री बड़ामजार कुमारसभा पुस्तकालय  
कोलकाता